DGA-05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

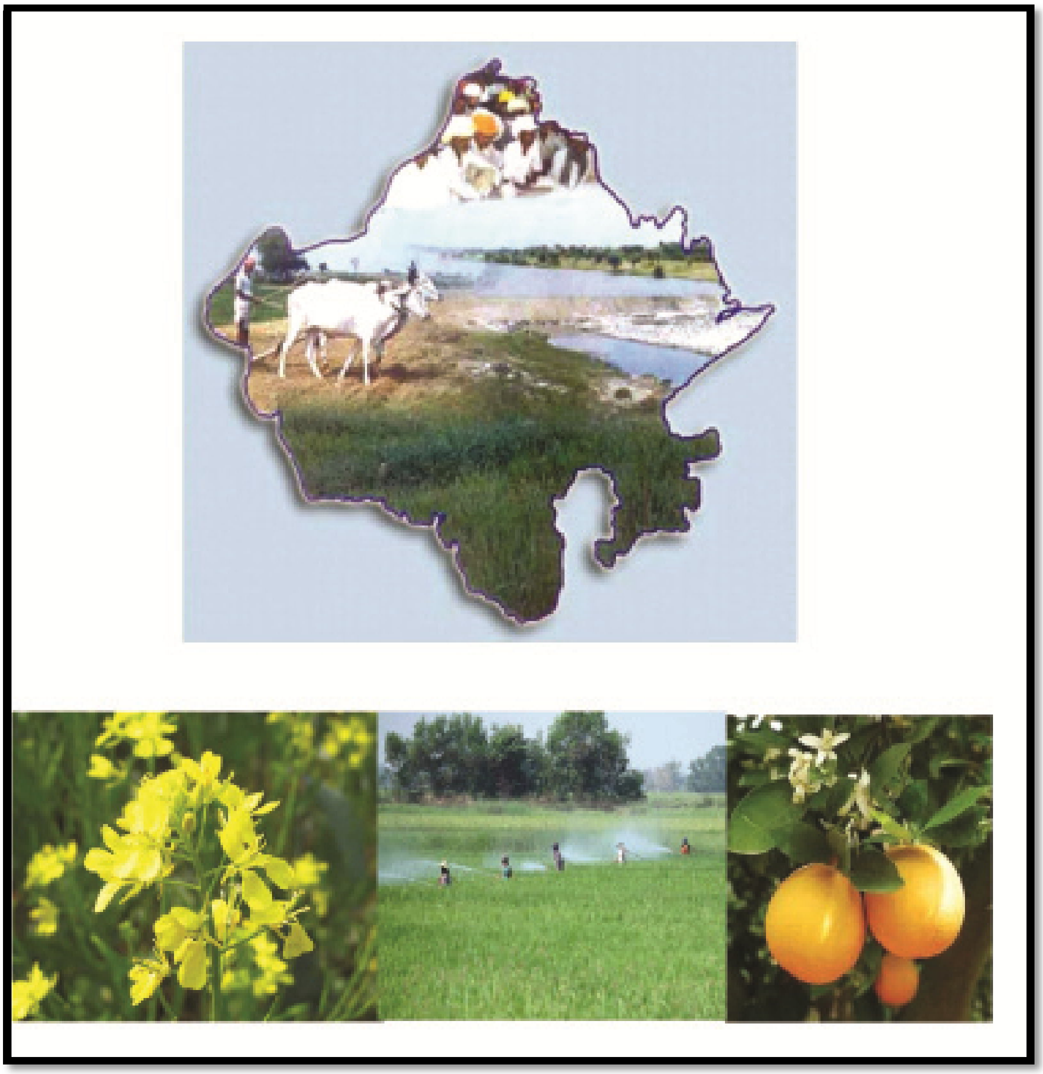

कृषि विपरण और विस्तार शिक्षा

(Agriculture Marketing & Extension Education)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) एल. आर. गुर्जर
निदेशक, संकाय विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

समन्वयक / सदस्य

समन्वयक

प्रो. (डॉ.) बी. अरुण कुमार
आचार्य राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **डॉ. पुरुषोत्तम सिंह सिनसिनवार**
सेवानिवृत्त आचार्य (मृदा विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक, कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा
2. **प्रो. (डॉ.) ए.पी. सिंह**
आचार्य (सस्य विज्ञान) इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर(छ.ग.)
3. **डॉ. एस.एस. तोमर**
आचार्य (सस्य विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक, कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा
4. **श्रीमती श्वेता गुप्ता**
गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
5. **डॉ. एन.एन. त्रिपाठी**
सह आचार्य (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र कोटा
6. **श्रीमती रश्मि मोदी**
सहायक संचालक,कृषि किसान कल्याण तथा कृषि विकास, भोपाल (म.प्र.)

सम्पादक एवं पाठ लेखक

सम्पादक

श्रीमती श्वेता गुप्ता
गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखक	इकाई सं.
डॉ. अनुरोध गोधा सहायक आचार्य(वाणिज्यिकी), वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	9
डॉ. एस.एस. तोमर आचार्य (सस्य विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक, कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा	13
डॉ. वी.पी. सिंह कार्यक्रम संयोजक, आर.ए.सी.पी., जयपुर	15
डॉ. आर.के. सिंह सह आचार्य, कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा	8
डॉ. बलदेव राम सहायक आचार्य(सस्य विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा	10
डॉ. बी.अल. ढाका विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र, बूंदी	12

डॉ. प्रशांत कुमार 7
लेक्चरर, व्यवसाय प्रबंध

डॉ. जे.पी. तेतरवाल 14
सहायक आचार्य (सस्य विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

श्रीमती रश्मि मोदी 16
सहायक संचालक,कृषि किसान कल्याण तथा कृषि विकास,
भोपाल (म.प्र.)

श्रीमती श्वेता गुप्ता 1,3,4,6
गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

श्री अविनाश सरोंजा 11
सहायक क्षेत्रीय प्रबन्धक
नेशनल फर्टिलाइजर लिमिटेड
(भारत सरकार का उपक्रम)
नीमच (म.प्र.)

श्रीमती मोनिका दुबे 2
गेस्ट फेकल्टी, प्रबंधन
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. आर. के. बागरी 5
सहायक आचार्य (सस्य विज्ञान), कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) विनय कुमार पाठक
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. (डॉ.) एल.आर. गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. (डॉ.) करण सिंह
निदेशक,
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. अनिल कुमार जैन
अतिरिक्त निदेशक,
पाठ्यसामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन: **ISBN No.:**

इस सामग्री के किसी भी अंश भी अंश को व.वि.खु.म., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व.वि.खु.म., कोटा के लिए कुलसचिव को व.वि.खु.म., कोटा द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित (.राज)

DGA-05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

कृषि विपरण और विस्तार शिक्षा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पृष्ठ स.
इकाई- 1	कृषि-विपणन : परिभाषा एवं अध्ययन-क्षेत्र	1
इकाई- 2	बाजार एवं बाजार संरचना	10
इकाई- 3	कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति	25
इकाई- 4	कृषि-उत्पादों में श्रेणीकरण, मानकीकरण एवं गुणवत्ता-नियन्त्रण	36
इकाई- 5	कृषि-उत्पादों का संग्रहण एवं भण्डारण कार्य	52
इकाई- 6	विपणन-माध्यम, प्रत्यक्ष विपणन एवं संविदा कृषि	66
इकाई- 7	कृषि विपणन व्यवस्था एवं सुधार के सरकारी प्रयास	77
इकाई- 8	कृषि उत्पादों की सहकारी विपणन व्यवस्था	95
इकाई- 9	विपणन संचार विज्ञापन एवं प्रचार	111
इकाई -10	कृषि उत्पादन साधनों का विपणन	124
इकाई- 11	कृषि-कीमतें	141
इकाई -12	प्रसार शिक्षा की मूल बातें	151
इकाई -13	कृषि एवं ग्रामीण सेवा या कार्य	163
इकाई -14	कार्यक्रम नियोजन एवं मूल्यांकन	182
इकाई -15	संचार एवं प्रसार की विधियां	201
इकाई- 16	प्रसार प्रशिक्षण	217

इकाई - 1

कृषि-विपणन : परिभाषा एवं अध्ययन-क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 कृषि-विकास रणनीति के मुख्य स्तम्भ

1.3 कृषि-विपणन की परिभाषा

1.4 कृषि- विपणन की विषय सामग्री

1.5 कृषि- विपणन अध्ययन के उद्देश्य

1.6 कृषि-उत्पादों एवं निर्मित उत्पादों के विपणन में अन्तर

1.7 कृषि-विपणन विकास

1.8 आर्थिक विकास में कृषि-विपणन की महत्ता

1.9 सारांश

1.10 अभ्यास प्रश्न

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पड़ने के पश्चात आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे:

- कृषि-विकास रणनीति के मुख्य स्तम्भ
- कृषि- विपणन की विषय सामग्री
- कृषि- विपणन अध्ययन के उद्देश्य, विकास और महत्ता
- कृषि-उत्पादों एवं निर्मित उत्पादों के विपणन में अन्तर

1.1 प्रस्तावना

देश की अर्थव्यवस्था के विकास में कृषि-विपणन का महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि-उत्पादन करना तभी सार्थक है जब उत्पादित उतपादों का सही समय एवं सही कीमत पर विक्रय हातो है। भारत की विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में कृषि-विपणन, कृषि एवं अकृषि क्षेत्रों को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी है। कृषि-विपणन में कृषि-उत्पादों को उत्पादन स्थल से उपभोक्ताओं तक तथा कृषि-क्षेत्र में उत्पादन करने के लिए आवश्यक उत्पादन-साधनों (आदान) एवं सेवाओं को उनके उत्पाद-स्थल से फार्म तक पहुँचाने की सम्पूर्ण व्यवस्था सम्मिलित होती है।

1.2 कृषि-विकास रणनीति के मुख्य स्तम्भ

विकासशील देशों में दक्ष-विपणन व्यवस्था त्वरित कृषि विकास और खाध-सुरक्षा का एक प्रमुख स्तम्भ है। सामान्यत: कृषि-विकास रणनीति के तीन मुख्य स्तम्भ होते है -

(1) कृषि-क्षेत्र में नई तकनीकी का विकास करना एवं उसे कृषकों के फार्म तक पहुँचाना।

(2) कृषकों के लिए कृषि-उतपादन में वृद्धि करने के लिए आवश्यक उत्पादक-साधनों जैसे उन्नत बीज, उर्वरक, पौध-संरक्षण के लिए रासायनिक उत्पाद, उन्नत औजार एवं फार्म मशीनें, ऋण, विधुत एवं अन्य सेवाएँ उपलब्ध कराना, एवं

(3) कृषि-उत्पादों के विपणन के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराना एवं कृषकों को उत्पाद के विक्रय से लाभप्रद कीमतें प्राप्त कराना।

स्वतन्त्रता के समय से ही कृषि-विकास के प्रथम दो स्तम्भों को विकसित करने के भरपूर प्रयास किये गये, जिससे देश में खाधान्न एवं अन्य कृषि-उत्पादों का उत्पादन 4 से 5 गुना अधिक प्राप्त होने लग गया। देश खाधान्नों की कमी की सिथति से उबरकर आत्मनिर्भर एवं वर्तमान में निर्यातक श्रेणी में आ गया। कृषि ने भी अन्य उधोगों के समान अब व्यवसाय का रूप ले लिया है, जिसके कारण कृषक भी उत्पादित उत्पादों के विपणन से अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। लाभ की यह मात्रा देश में दक्ष कृषि-विपणन व्यवस्था के होने पर निर्भर करती है।

1.3 कृषि-विपणन की परिभाषा

अमेरीकी विपणन संघ के अनुसार "विपणन व्यापारिक क्रियाओं के करने से है जिनके द्वारा वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रवाह उत्पादक से उपभोक्ता अथवा उसके उपयोगकर्ता तक होता है।"

कोटलर के अनुसार "विपणन एक मानव क्रिया है जो आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को विनिमय-प्रक्रिया द्वारा सन्तुष्ट करने को निर्देशित करती है।"

थामसन - कृषि-विपणन के अध्ययन में वे सभी कार्य एवं संस्थाएँ समिमलित होती हैं जिनके द्वारा कृषकों के फार्म पर उत्पादित खाधान्न, कच्चा माल एवं उनसे निर्मित उत्पादों का फार्म से उपभोक्ताओं तक संचालन होता है। विपणन-क्रियाओं का कृषकों, मध्यस्थों एवं उपभोक्ताओं पर होने वाले प्रभावों का अध्ययन भी कृषि-विपणन के अन्तर्गत आता है।

राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) – "कृषि-विपणन वह प्रक्रिया है जो कृषक द्वारा अपने फार्म पर विक्रय हेतु उत्पादन करने सम्बनिधत निर्णय लेने से प्रारम्भ होती है एवं इसके अन्तर्गत विपणन-ढाँचाप्रक्रिया के कार्यात्मक एवं संस्थागत सभी पहलू आते हैं जो तकनीकी एवं आर्थिक दृषिटकोण से परिपूर्ण होते हुए समिमलित किये जाते है। इसके अन्तर्गत फसल उत्पादन के पूर्व एवं फसलोत्तर प्रबन्धन की सभी क्रियाएँ-एकत्रीकरण, श्रेणीयन, संग्रहण, परिवहन एवं वितरण समिमलित होती है।"

1.4 कृषि- विपणन की विषय सामग्री

कृषि-विपणन विषय में वृहत स्तर पर कृषकों द्वारा, फार्म पर उत्पादित उत्पादों का विपणन एवं कृषकों द्वारा फार्म पर विभिन्न उत्पादों के उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन-साधनों एवं सेवाओं के क्रय से सम्बनिधत विषय-सामग्री समिमलित होती है। उत्पादित-उत्पादों के विपणन एवं उत्पादन-साधनों एवं सेवाओं के विपणन से सम्बंधित विषयों का ज्ञान कृषि-विपणन में समिमलित होता है।

उत्पाद-विपणन विषय पुराना है। सभ्यता के विकास के साथ ही इसका जन्म हुआ है। पूर्व में मानव उपलब्ध अधिशेष उत्पाद की मात्रा को दूसरे व्यकितयों के अधिशेष उत्पादों से विनिमय करके आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। अत: उत्पाद-विपणन विकसित अवस्था में नहीं था। वर्तमान में कृषि-उत्पादों के उत्पादन में तकनीकी ज्ञान के प्रचार-प्रसार से उत्पादन वृद्धि के कारण उत्पादों की अधिशेष मात्रा में कई गुना वृद्धि हुई है, जिसके कारण कृषक अधिशेष-उत्पादों के विन्यास के चिन्तन में रहते है। देश में मुद्रा का प्रसार, परिवहन एवं संचार सुविधाओं के विकास एवं उत्पादों के बाजार को विस्तृत रूप प्रदान कर दिया है। अत: वर्तमान में उत्पाद-विपणन विषय ने जटिल रूप ले लिया है और इसकी विषय-सामग्री में द्रुत गति से विस्तार हो रहा है।

कृषि-विपणन का अन्य क्षेत्र उत्पादन-साधनों एवं सेवाओं का विपणन है। इस विषय में कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए आवश्यक उत्पादन-साधनों एवं सेवाओं के विपणन से सम्बंधित ज्ञान समिमलित होता है। इस विषय का कृषि-विपणन में समावेश पिछले 4-5 दशकों में हुआ है। पूर्व में कृषक उत्पादन करने एवं उत्पादन में वृद्धि करने के लिए फार्म क्षेत्र से ही आवश्यक उत्पादन-साधनों (खाद, बीज, औजार एवं श्रम) की पूर्ति करते थे। अत: इनका विपणन शैशव अवस्था में था। हरित क्रानित के प्रादुर्भाव से कृषि में विभिन्न उत्पादन-साधनों (उर्वरक, उन्नत बीज, कीटनाशी दवाइयाँ, फार्म-औजार एवं मशीनें, डीजल तेल, विधुत, तकनीकी, श्रमिक एवं ऋण) के उपयोग में वृद्धि होने से इनके विपणन में समस्याओं ने जन्म लिया है। इस प्रकार उत्पादन-साधनों के विपणन-ज्ञान में विस्तार हुआ, कृषि-विपणन में भी उत्पादन-साधनों का विपणन-ज्ञान नवीन विषय के रूप में समिमलित किया गया है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि कृषि-विपणन विषय की विषय-सामग्री में वृहत स्तर पर उत्पादों एवं उत्पादन-साधनों का विपणन समिमलित होता है।

1.5 कृषि- विपणन अध्ययन के उद्देश्य

(अ) उत्पादक-कृषकों के विपणन-अध्ययन के उद्देश्य :

उत्पादक-कृषकों के लिए समुचित एवं सुव्यवसिथत विपणन वह है जो फार्म पर उत्पादित उत्पाद के विक्रय से यथासम्भव अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करा सके। कृषकों को फार्म से प्राप्त लाभ की राशि उत्पाद की उत्पादित मात्रा एवं कीमत पर निर्भर होती है। फार्म से प्राप्त आय की राशि कृषकों की उत्पादन नीति एवं उत्पादन क्षमता को प्रभावित करती है। एक अच्छी विपणन विधि के होनने से कृषकों को उत्पादन के विक्रय से उचित कीमत प्राप्त होती है, जिससे कृषक उत्पादों के उत्पादन बढ़ाने को प्रेरित है, जो देश को खाधान्नों के उत्पादन में आत्म-निर्भर बनाने के लिए आवश्यक होती है।

(ब) उपभोक्ताओं के विपणन-अध्ययन के उद्देश्य:

देश के उपभोक्ता उस विपणन-व्यवस्था की आकांक्षा करते है जो उन्हें आवश्यक उत्पाद-खाधान्न, तिलहन, दालें एवं अन्य उत्पादों की उचित किस्म, आवश्यक मात्रा में न्यूनतम कीमत पर उपलब्ध करा सके। उपभोक्ता सीमित आय से असीमित आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहते है। कुशल एवं दक्ष विपणन-व्यवस्था में आवश्यक उत्पादों की कीमतों का कम होना उचितत माना जाता है।

(स) विपणन-मध्यस्थों के विपणन-अध्ययन के उद्देश्य :

विपणन कार्य में लगे हुए मध्यस्थ उस विपणन व्यवस्था की आशा रखते हैं जो उनको विपणन-प्रक्रिया में किये गये विपणन कार्य एवं सेवाओं के लिए अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करा सके। विपणन-प्रक्रिया में विपणन-मध्यस्थों का होना आवश्यक है, क्योंकि देश के असंख्य उत्पादकों से उत्पादों का देश में फैले हुए उपभोक्ताओं तक संचालन विपणन-मध्यस्थों के द्वारा ही होता है। विपणन-प्रक्रिया में विपणन-मध्यस्थ तब तक रहते हैं, जब तक कि उन्हें सेवाओं की उचित कीमत प्राप्त होती रहती है। विपणन-प्रक्रिया से उचित लाभ की राशि प्राप्त नहीं होने पर विपणन-मध्यस्थ अपने व्यवसाय को छोडकर अन्य व्यवसाय करने की कोशिश करते हैं, जिससे देश की विपणन-व्यवस्था अव्यवसिथत हो जाती है, जो उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों के ही हित में नहीं होती है। कुछ विपणन-मध्यस्थ अल्पकाल में अधिकतम लाभ की अपेक्षा नहीं रखते हैं, बलिक दीर्घकाल में निरन्तर निशिचत लाभ की राशि प्राप्त करने की इच्छा रखते है।

(द) सरकार के लिए विपणन-अध्ययन के उद्देश्य:

सरकार के लिए अच्छी विपणन-व्यवस्था से तात्पर्य उस विपणन व्यवस्था से है जो उपभोक्ताओं को कम से कम कीमत पर उचित किस्म के आवश्यक मात्रा में उत्पाद उपलब्ध कराए, उत्पादकों को उत्पाद की उचित कीमत दिलाते हुए उत्पादन-वृद्धि की प्रेरणा दे तथा विपणन-मध्यस्थों को उनके द्वारा दी गई सेवाओं के लिए उचित राशि प्राप्त कराए, जिससे समाज के विभिन्न वर्ग एक साथ पनप सकें।

1.6 कृषि-उत्पादों एवं निर्मित उत्पादों के विपणन में अन्तर

कृषि-उत्पादों के निम्न विशेष गुण, कृषि- विपणन प्रक्रिया एवं निर्मित उत्पादों की विपणन क्रिया में विभिन्नता उत्पन्न करते हैं :-

(1) कृषि-उत्पादों में शीघ्र विनाशशीलता का गुण।

(2) कृषि-उत्पादों के उत्पादन के लिए नियत उतपादन मौसम का होना।

(3) कृषि-उत्पादों में अम्बारता का गुण विधमान होना।

(4) कृषि-उत्पादों के किस्मगुणों में विभिन्नता का होना।

(5) कृषि-उत्पादों की पूर्ति अनियमित एवं अनिशिचत होना।

(6) कृषि-उत्पादों में उपभोग-पूर्व प्रसंस्करण करने की आवश्यकता।

(7) कृषि-उत्पादों के उत्पादकों की संख्या की अधिकता एवं उनका पूरे देश में फैलाव।

1.7 कृषि-विपणन विकास

उन्नीसवीं शतब्दी तक कृषकों द्वारा अपने फार्म पर उन्हीं उत्पादों का उत्पादन किया जाता था, जो उनको परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए आवश्यक होते थे। कृषि में विविधिकरण विधि के अपनाने के कारण फार्म पर अनेक उत्पाद उत्पादित किए जाते थे। अत: विभिन्न उत्पादों की घरेलु आवश्यकता पूर्ण होने के उपरान्त उत्पादों की विक्रीत मात्रा बहुत कम होती थी। उत्पादों की इस अधिशेष मात्रा को कृषक दूसरे आवश्यक उत्पादों से वस्तु-विनिमय-प्रथा द्वारा प्राप्त करके जिविका यापन करते थे। उस काल में मुद्रा का प्रचलन भी नहीं था। अत: उत्पादों की कीमतें दूसरे उत्पादों की मात्रा के रूप में ही प्रकट की जाती थी।

कृषि-विपणन के विकास में सरकार की भूमिका

कृषि-विपणन को दक्ष बनाने के लिए सरकार निरन्तर प्रयत्नशील हैं। सरकार द्वारा किये गये प्रयासों को निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

(1) कृषि-विपणन विकास के लिए देश में संस्थागत ढांचे का निर्माण करना एवं उसे सुदृढ़ बनाना। इस संदर्भ में विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय की स्थापना सरकार का प्रथम कदम था। देश में कृषि-विपणन के निर्धारित उद्देश्यों की प्रापित के लिए सरकार द्वारा अनेक संस्थाएँ स्थापित की जा चुकी है।

(2) कृषि-विपणन-विकास के ढांचे में सुधार लाने के लिए आयोगों की स्थाना करना एवं प्राप्त रिपोर्ट के आधार पर विपणन-सुधार के उपाय अपनाना।

(3) कृषि-विपणन व्यवस्था से देश के उत्पादक कृषकों एवं उपभोक्ताओं को लाभ पहुंचाने के लिए देश की विपणन-व्यवस्था में आवश्यकतानुसार हस्तक्षेप करके विभिन्न वर्गों को लाभानिवत करने के लिए कदम उठाना।

कृषि-विपणन के विकास को प्रभावित करने वाले कारक :

देश के कृषि-विपणन में पिछले 50 वर्षो में अनेक परिवर्तन हुए हैं। इनमें उत्पादों की मण्डी में आवक-मात्रा में वृद्धि, नियंत्रित मणिडयों की स्थाना, विपणन की आधारभूत सुविधाओं का विकास, विपणन-सुविधाओं के विकास के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाओं को कार्यानिवत करना, कृषि-विपणन के प्रोत्साहन के लिए सरकारी एवं सहकारी क्षेत्रों में संस्थाओं की स्थापना, उत्पाद-बोर्डों का गठन, नवाचार मणिडयों की स्थापना प्रमुख है, जिनसे देश की मण्डी-व्यवस्था पूर्व की अपेक्षा दक्ष हुई है।

इन परिवर्तनों के होने में प्रमुख भूमिका निम्न कारकों की रही है -

(1) उत्पादों के उत्पादन में कृषकों की बढ़ती विशिष्टीकरण प्रवृत्ति।

(2) शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति।

(3) देश में परिवहन एवं संचार सुविधाओं का विकास।

(4) विपणन की आधारभूत सुविधाओं का विकास।

(5) कृषि-उत्पादन में वृद्धि एवं उत्पादों के विक्रीत-अधिशेष-उत्पादन।

(6) विपणन-कार्यो के करने में यन्त्रीकृत सुविधाओं का विकास।

1.8 आर्थिक विकास में कृषि-विपणन की महत्ता

निम्न तथ्य आर्थिक विकास में कृषि-विपणन के महत्व को दर्शाते हैं –

(1) उत्पाद-साधनों का अनुकूलतम उपयोग :

दक्ष विपणन-व्यवस्था देश में उपलब्ध उत्पादन-साधनों का अनुकूलतम उपयोग करने में सहायक होती है। विपणन के लिए आवश्यक सेवाएँ दक्षता से कार्य करती है तो उत्पादों की मात्रात्मक एवं गुणवत्ता में हानि होती। इससे देश में उपलब्ध उतपादों की मात्रा में वृद्धि होती है।

दूसरी ओर से सही विपणन-व्यवस्था के होने से देश में उपलब्ध उतपादन-साधनों का कृषि-क्षेत्र में सही आवंटनवितरण होने से उत्पादन में वृद्धि होती है। कृषि-उत्पादन में वृद्धि के लिए उतपादन-साधनों का सही समय, मात्रा एवं कीमत पर कृषकों को उपलब्ध होना आवश्यक है, जो देश में दक्ष-विपणन व्यवस्था से ही सम्भव है।

(2) कृषकों की आय में वृद्धि :

कृषकों की आय में वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है क्योंकि राष्ट्र के दो-तिहाई से अधिक निवासी कृषकों की श्रेणी में हैं। राष्ट्रीय आय में वृद्धिस देश में विकास कार्यो पर व्यय करने के लिए अधिक धन राशि उपलब्ध हो सकेगी।

(3) उत्पादों के बाजारों को विस्तृत बनाना :

दक्ष विपणन-व्यवस्था उत्पादों के बाजार विस्तृत बनाती है अर्थात उत्पादों का संचालन दूरी पर सिथत बाजारों तक होना संभव होता है। परिवहन एवं संचार व्यवस्था के विकसित होने से उत्पादन देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एवं एक देश से दूसरे देश को ले जाए जाते हैं। इससे उत्पादों की कुल माँग में वृद्धि होती है। इससे उत्पादकों को अच्छी कीमत की प्रापित के साथ ही सभी क्षेत्रों के उपभोक्ताओं की उत्पाद की माँग पूरी होती है। उपभोक्ता एवं उत्पादकों को संतुषिट प्राप्त होती है।

(4) अर्थव्यवस्था की आवश्यकतानुसार उत्पादों की उत्पादन-योजना बना पाना :

कृषक सामान्यत: उन उत्पादों का फार्म पर उत्पादन करते हैं, जो उनको प्रति इकाई अधिक लाभ प्राप्त कराते हैं अर्थात जिनकी बाजार में कीमत अधिक होती है। अधिक आवश्यकता वाले उत्पादों की कीमतें भी अधिक होती है। अत: उत्पादों की कीमतें, कृषकों को देश में आवश्यक उत्पादों के उत्पादन करने की मार्गदर्शक होती हैं। उचित कीमत की प्रापित, देश में उत्पादों की दक्ष विपणन-व्यवस्था पर निर्भर करती है। इससे देश में आवश्यक मात्रा में विभिन्न उत्पादों का उत्पादन होना सम्भव होता है।

(5) नए तकनीकी ज्ञान का कृषि-क्षेत्र में अधिक उपयोग करना :

नए तकनीकी ज्ञान का सभी क्षेत्रों (कृषि क्षेत्र सहित) में अधिकाधिक उपयोग उनसे प्राप्त लाभ की राशि पर निर्भर होता है। तकनीकी ज्ञान का कृषि-क्षेत्र में उपयोग करने को कृषक तभी

इच्छुक होते हैं, जब उन्हें उसके उपयोग से अधिक लाभ प्राप्त होता है। अधिक लाभ प्राप्त होने पर कृषक कृषि-क्षेत्र में अधिक पूँजी निवेश करने को तत्पर होते हैं एवं उससे पुन: उत्पादन में वृद्धि होती है। दक्ष विपणन-व्यवस्था इसमें सहायक होती है।

(6) कृषि-आधारित उद्योगों का विकास :

देश के अनेक उद्योग (वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, तेल एवं वनस्पति घी उद्योग, उत्पादों के प्रसंस्करण उद्योग, आयुर्वेदिक रसायन उद्योग, जूट के बोरे का उद्योग, कागज-उद्योग आदि) कृषि क्षेत्र पर कच्चे माल की पूर्ति के लिए पूर्णतया निर्भर हैं। इन उधोगों का विकास कृषि-क्षेत्र से इनके लिए आवश्यक कच्चे माल (कपास, गन्ना, तिलहन, औषधिय पौधे, जूट, बाँस आदि) के उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। कृषकों द्वारा इन उत्पादों के उतपादन का किया जाना, उनसे प्रापत लाभ की मात्रा पर निर्भर है। उत्पादों से प्राप्त लाभ उनकी दक्ष विपणन-व्यवस्था एवं उचित कीमत पर निर्भर करता है। अत: कृषि-आधारित उधोगों का विकास भी देश में कृषि-उत्पादों की दक्ष विपणन-व्यवस्था के होने पर निर्भर है।

(7) रोजगार में वृद्धि :

कृषि-उत्पादों की विपणन-प्रक्रिया में अनेक विपणन-कार्य जैसे एकत्रीकरण, परिवहन, संग्रहण, परिष्करण, श्रेणीचयन, पैकेजिंग, क्रय-विक्रय आदि करने होते हैं। इन कार्यों के करने में असंख्य व्यकित कार्यरत हैं। अत: उत्पादों एवं उत्पादन-साधनों की विपणन-प्रक्रिया में किये जाने वाले कार्यों से देश के लाखों व्यकितयों का विभिन्न स्तर पर रोजगार प्राप्त होता है। अत: कृषि-विपणन देश के निवासियों को रोजगार भी उपलब्ध कराता है। कृषि-विपणन क्षेत्र में रोजगार वृद्धि की विपुल संभावनाएँ व्याप्त है।

(8) राष्ट्रीय आय में वृद्धि :

विपणन-प्रक्रिया से उत्पादों में मूल्य संवर्धन होता है, जिससे क्रेता उत्पाद के लिए अधिक कीमत देते हैं। इस प्रकार देश मे उत्पादित उत्पादों के मूल्य में वृद्धि होती है, जो देश के सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं प्रति व्यकित आय में वृद्धि करते हैं। सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि से देश विकासशील राष्ट्रों की श्रेणी में आ जाता है।

(9) उपभोक्ताओं के जीवन-स्तर में सुधार लाना :

आय में वृद्धि से देश के निवासियों में व्याप्त गरीबी के स्तर में कमी आती है। उपभोक्ता अधिक मात्रा में उत्पाद उपभोग हेतु क्रय करने में सक्षम होते हैं जिससे उनका जीवन-स्तर पहले से उत्तम होता है। यह उत्तम जीवन-स्तर देश में दक्ष कृषि विपणन-व्यवस्था पर निर्भर होता है।

(10) उत्पादों में उपयोगिता का सृजन करना :

दक्ष विपणन-व्यवस्था, उत्पादों को उनके उत्पादित रूप से अधिक उपयोगी बनाने में सक्षम होती है। उत्पादों में उपयोगिता विभिन्न कार्यों के करने से सृजन होती है, जिससे उपभोक्ता उस उत्पाद की पूर्व की अपेक्षा अधिक कीमत देने को तत्पर होते है। विपणन-प्रक्रिया के विभिन्न कार्य जैसे परिवहन (स्थान उपयोगिता), संग्रहण (समय उपयोगिता), परिष्करण (रूप उपयोगिता) एवं क्रय

विक्रय (स्वामित्व उपयोगिता) उपयोगिता सृजन करते हैं। उत्पादों में उपयोगिता का सृजन विपणन-कार्यों के करने की दक्षता अर्थात दक्ष विपणन-व्यवस्था पर निर्भर है।

(11) देश की आर्थिक विकास योजनाओं की सफलता का मापदण्ड :

देश में आर्थिक विकास के लिए निर्मित योजनाओं का समयबद्ध कार्यान्वयन करने में भी कृषि-विपणन सहायक होता है। देश में सुदृढ़ कृषि-विपणन व्यवस्था के होने से राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि होती है। देश में अधिक आय प्राप्त होने से विकास योजनओं पर प्रस्तावित रूप में धन व्यय करना संभव होता है और उनसे समाज के विभिन्न वर्गो को समय पर लाभ प्राप्त होता है। कृषि-उत्पादन-साधनों की समय पर पूर्ति करने में दक्ष विपणन-व्यवस्था सहायक होती है।

(12) देश के निवासियों एवं पशुओं को भोजन एवं चारा उपलब्ध कराना:

कृषि-विपणन द्वारा देश में उपलब्ध खाधान्नों एवं अन्य कृषि उत्पादों को 100 करोड़ जनसंख्या एवं 48 करोड़ पशुओं तक पहुँचाना संभव है। उचित विपणन-व्यवस्था के अभाव में देश में आवश्यक मात्रा में खाधान्नों एवं अन्य कृषि-उत्पाद उपलब्ध होते हुए भी उपभोक्ताओं तक समय पर पहुँचाना नहीं पाते हैं, जिससे देश में भुखमरी एवं अकाल जैसी सिथति उत्पन्न हो जाती है। देश मे आर्थिक विकास की गति कमजोर पड़ जाती है।

1.9 सारांश

कृषि-विकास की प्रक्रिया में उपरोक्त तीनों स्तम्भों का उचित स्तर तक विकास एवं उनमें संवृद्धि को बनाये रखना है, जिससे कृषक उत्पादन में वृद्धि करने के लिए निरन्तर प्रयासरत रहें। कृषि भारत का प्रमुख व्यवसाय है। भारत की दो तिहाई, जनसंख्या कृषि पर परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से निर्भर है। कृषि-क्षेत्र से देश में प्राप्त सकल राष्ट्रीय उत्पाद का एक तिहाई भाग प्राप्त होता है। देश की विपणन प्रणाली को आदर्श विपणन व्यवस्था में परिवर्तित करने के लिए वर्तमान प्रणाली का अध्ययन करके उसमें व्याप्त कमियों को ज्ञात करना आवश्यक हैं.

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. "विपणन एक मानव क्रिया है जो आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को विनिमय-प्रक्रिया द्वारा सन्तुष्ट करने को निर्देशित करती है।" यह परिभाषा किसने दी?

   (अ) कोटलर (ब) थामसन

   (स) कोल्स (द) अबोट

2. निम्न में से किन विषयों का ज्ञान कृषि विपणन में सम्मिलित होता हैं?

   (अ) उत्पादित-उत्पादों के विपणन (ब) उत्पादन साधनों एवं सेवाओं के विपणन

   (स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

3. कृषि-उत्पादों के कौनसे विशेष गुण, कृषि- विपणन प्रक्रिया एवं निर्मित उत्पादों की विपणन क्रिया में विभिन्नता उत्पन्न करते हैं?

(अ) कृषि-उत्पादों में शीघ्र विनाशशीलता का गुण।

(ब) कृषि-उत्पादों के उत्पादन के लिए नियत उतपादन मौसम का होना।

(स) कृषि-उत्पादों में अम्बारता का गुण विधमान होना।

(द) उपरोक्त सभी

4. निम्न में से कौनसे तथ्य आर्थिक विकास में कृषि-विपणन के महत्व को दर्शाते हैं ?

(अ) उत्पाद-साधनों का अनुकूलतम उपयोग

(ब) कृषकों की आय में वृद्धि

(स) उत्पादों के बाजारों को विस्तृत बनाना

(द) उपरोक्त सभी

5. सामान्यत: कृषि-विकास रणनीति के कितने मुख्य स्तम्भ होते है?

(अ) एक (ब) दो

(स) तीन (द) चार

1.11 संदर्भ ग्रंथ

- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- S. S. Acharya and N. L. Agarwal. 2007. Agricultural Marketing in India. Oxford & IBH Publications, Calcutta.
- S. Subba Reddy, P. Raghu Ram, T. V. Neelakanta Sastry and I. Bhavani Devi. 2006. Agricultural Economics. Oxford & IBH Publications, Calcutta.
- K. K. Dewett. 1999. Modern Economic Theory. Oxford & IBH Publications, Calcutta.

इकाई- 2

बाजार एवं बाजार संरचना

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 बाजार के मुख्य तत्त्व अथवा अवयव

2.3 बाज़ार के आयाम

2.4 बाज़ार का वर्गीकरण

2.5 बाज़ार संरचना

2.6 बाजार से सम्बन्धित शब्द एवं उनकी व्याख्या

2.7 सारांश

2.8 अभ्सास प्रश्न

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- बाज़ार के अर्थ व महत्व को समझ सकेंगे
- बाज़ार के अवयव को समझ सकेंगे
- बाज़ार के आयामों को समझ सकेंगे
- बाज़ार के वर्गीकरण के प्रारूप को समझ सकेंगे
- बाज़ार संरचना का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे

2.1 प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी एक तिहाई जनसंख्या कृषि व्यवसाय से जुडी हुई है । इसके अतिरिक्त इसका राष्ट्रीय जी डी पी में भी 25 प्रतीशत योगदान है जिससे कृषि उत्पादों के वाणिज्यक महत्व का पता चलता है एवं बाज़ार का भी महत्व विदित होता है।

मार्केट (बाज़ार) शब्द लाटिन भाषा के 'मार्केट्स' शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ होता है, वस्तुओं के क्रय - विक्रय का स्थान। बाज़ार शब्द को अनेक अर्थशात्रियों ने परिभाषित किया है जिसमें से प्रमुख परिभाषाएं इस प्रकार हैं –

हिब्बार्ड -“ बाज़ार वह क्षेत्र है जिसके अंतर्गत कीमत निर्धारण शक्तियां कार्य करती हैं।”

चैपमन – चैपमैन के अनुसार बाज़ार शब्द का तात्पर्य उन वस्तुओं से है जिनके क्रेता व विक्रेता एक दूसरे से क्रय – विक्रय के लिए स्पर्धा में होते हैं।”

सामाजिक विज्ञानं ज्ञानकोष – बाज़ार शब्द उस शेत्र को परिभाषित करता है जिसके अन्तर्गत मांग व पूर्ति की शक्तियां एक ही मूल्य निर्धारित करती हें।

ए. पी. गुप्ता – बाज़ार का अर्थ सामाजिक संस्थान से है जो क्रेताओं व विक्रेताओं के बीच वस्तुओं का आदान - प्रदान करवाने हेतु काम करता है व सुविधाएं प्रदान करवाता है।

बाज़ार शब्द के लिए हाठ, पैंठ, संडीज़, मंडी आदि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

2.2 बाजार के मुख्य तत्त्व अथवा अवयव

बाजार के अस्तित्व के लिए कुछ तत्वों की उपस्थिति आवश्यक है। जिनकी अनुपस्थिति में किसी क्षेत्र को बाजार शब्द की परिभाषा में सम्मलित नहीं किया जा सकता।

वे तत्त्व इस प्रकार हैं –

(i) क्रेताओं और विक्रेताओं की उपस्थिति

(ii) क्रय-विक्रय के लिए वस्तु की उपस्थिति

(iii) बाज़ार के रूप में क्षेत्र का निर्धारण जो एक स्थान, शेत्र व देश भी हो सकता है

(iv) क्रेता व विक्रेता के बीच व्यापारिक सम्बन्ध

बाजार के लिए उस क्षेत्र में एक ही मूल्य का प्रचलन अथवा पूर्ण स्पर्धा की स्थिति होना आवश्यक नहीं।

2.3 बाज़ार के आयाम

किसी भी बाज़ार विशेष के अनेक आयाम होते हैं जो इस प्रकार हैं –

(i) बाज़ार का स्थान / स्थिति

(ii) बाज़ार का विस्तार अथवा शेत्र

(iii) समय सीमा

(iv) क्रय - विक्रय (transactlons) की संख्या

(v) क्रय - विक्रय की प्रकृति

(vi) वस्तुओं के क्रय – विक्रय की संख्या

(vii) स्पर्धा के स्तर

(viii) वस्तुओं की प्रकृति

(ix) विपणन की स्थिति या चरण

(x) नियंत्रण की सीमा

2.4 बाज़ार का वर्गीकरण

उपरोक्त आयामों के आधार पर किसी भी बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. **स्थान या स्थिति के आधार पर**

स्थान या स्थिति के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं -

(अ) ग्रामीण / स्थानीय बाज़ार – इस प्रकार के बाज़ार छोटे गाँवों में स्थित होते हैं तथा यहाँ अधिकांश क्रय – विक्रय वहीँ के क्रेताओं व विक्रेताओं के मध्य होता है।

(ब)प्राथमिक थोक बाज़ार – ये बाज़ार कृषि उत्पादन शेत्रों के पास ही बड़े कस्बों में स्थित होते हैं। इन बाज़ारों में अधिकांश वस्तुओं या खाद्यान्नों का विक्रय स्वयं उत्पादकों द्वारा ही किया थोक व्यापारियों को किया जाता है।

(स) माध्यमिक थोक बाज़ार – ये बाज़ार प्रमुख व्यापारिक स्थानों, बड़े कस्बों, व शहरों में रेलवे स्टेशनों के समीप लगते हैं।यहाँ क्रय –विक्रय ग्रामीण व्यापारियों व थोक व्यापारियों के बीच होता है।

(द) खुदरा बाज़ार – इन बाज़ारों में उपभोक्ता छोटे व्यापारियों से खाद्यान्न व अन्य वस्तुएँ खरीदते हैं। ये छोटे व्यापारी माध्यमिक थोक बाज़ार से उत्पाद खरीदकर इन बाज़ारों में बेचते हैं।

(य) बंदरगाहों के समीप के बाज़ार (Seaboard Market) – इन बाज़ारों में आयातित अथवा निर्यातित होने वाली वस्तुओं का क्रय विक्रय किया जाता है। अतः भारत में ये बाज़ार कलकात्ता, बम्बई, चेन्नई, कांडला आदि शहरों में बंदरगाहों के समीप स्थित हें।

(र) सीमांत बाज़ार – इन बाज़ारों में में कृषि उत्पाद अंतिम रूप से उपभोक्ता को सौपा जाता है या निर्यात के लिए संगृहीत किया जाता है। इन बाज़ारों में उत्पाद विनिमय एवं कुछ वस्तुओं का अग्रिम व्यापार भी होता है। ये बाज़ार कलकात्ता, बम्बई, चेन्नई, दिल्ली जैसे बंदरगाहों व बड़े शहरों में होते हें।

2. बाज़ार के विस्तार अथवा क्षेत्र (एरिया) के आधार पर

विस्तार अथवा क्षेत्र के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं -

(अ) ग्रामीण / स्थानीय बाज़ार – इस प्रकार के बाज़ारों में अधिकांश क्रय – विक्रय उसी गांव अथवा नकटवर्ती गाँवों के क्रेताओं व विक्रेताओं के मध्य होता है। ये ग्रामीण / स्थानीय बाज़ार शीघ्रनाशी उत्पादों जैसे - दूध, सब्जी, अण्डों के विपणन के लिए होते हें

(ब) क्षेत्रीय बाज़ार – इन बाज़ारों का क्षेत्र स्थानीय बाज़ारों की तुलना में अधिक विस्तृत होता है। इन बाज़ारों में मुख्यतः खाद्यान्नों का क्रय - विक्रय होता है।

(स) राष्ट्रीय बाज़ार – इन बाज़ारों में क्रय –विक्रय राष्ट्रीय स्तर पर देश के विभिन्न भागों से आये व्यापारियों के बीच होता है। यहाँ उन सभी उत्पादों का विपणन होता है जो लंबी अवधि तक संगृहीत किये जा सकते हें जैसे चाय, जूट आदि।

(द) अन्तर्राष्ट्रीय / विश्व बाज़ार – इन बाज़ारों में क्रय विक्रय अन्तेर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों के क्रेताओं व विक्रेताओं के मध्य होता है। क्षेत्र के संदर्भ में ये बाज़ार सबसे बड़े होते हें।

उपभोक्ता छोटे व्यापारियों से खाद्यान्न व अन्य वस्तुएँ खरीदते हैं।

3. समय के आधार पर

समय के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं –

(अ) अल्पकालीन बाज़ार – ये बाज़ार अल्पकाल के लिए ही लग पते हैं। इन बाज़ारों का सम्बन्ध शिघ्रानाशी उत्पादों जैसे सब्जी, दूध, मछली, आदि उत्पादों से होता है। इन बाज़ारों में उत्पाद का मूल्य उसकी मांग द्वारा निर्धारित होता है।

(ब) दीर्घकालीन बाज़ार – ये बाज़ार दीर्घकालीन होते हैं तथा उन वस्तुओं से सम्बंधित होते हैं जिनका संग्रहण कुछ समय तक किया जा सकता है जैसे - खाद्यान्न, तिलहन आदि। इन बाज़ारों में उत्पाद की मांग में परिवर्तन से पूर्ति में परिवर्तन करने का समय मिल जाता है। अतः उत्पाद की कीमत पर मांग की अपेक्षा पूर्ति क प्रभाव अधिक होता है।

(स) सुदीर्घकालीन बाज़ार – ये बाज़ार स्थाई (permanent) होते हैं। इन बाज़ारों में क्रय विक्रय होने वाली वस्तुएँ भी दीर्घायु (दुराब्ले) होती हैं तथा वर्षों तक संगृहीत की जा सकती हैं। जैसे – मशीन, उत्पादित वस्तु आदि।

4. क्रय विक्रय की संख्या के आधार पर

क्रय विक्रय की संख्या के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं–

(अ) थोक बाज़ार – थोक बाज़ार में उत्पाद थोक में था भहुत अधिक मात्रा में एक साथ खरीदा जाता है। वस्तुतः इन बाज़ारों में क्रय विक्रय व्यापारियों के मध्य होता है।

(ब) खुदरा बाज़ार – खुदरा बाज़ार में उपभोगता या ग्राहक अपनी आवश्यकतानुसार विक्रेता से वस्तु खरीदता है। ये विक्रेता थोक बाज़ार से खाद्यान्न आदि उत्पाद खरीदकर कम मात्र में ग्राहक को बेचता है। ये बाज़ार उपभोक्ता के निकट उसकी पहुँच में स्थित होते हैं।

5. क्रय - विक्रय की प्रकृति के आधार पर

क्रय विक्रय की प्रकृति के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं –

(अ) हाजिर बाज़ार या नकद बाज़ार – नकद बाज़ार में उत्पादों का आदान प्रदान विक्रय के तुरंत बाद नकद में होता है, इस कारन ही इसे हाजिर बाजार या नकद बाज़ार कहा जाता है।

(ब) वायदा बाज़ार – वायदा बाज़ार में वस्तु या उत्पाद का क्रय – विक्रय वर्तमान समय में होता है किन्तु उनका आदान प्रदान भविष्य में निश्चित दिनांक पर होता है। कभी- कभी इन वस्तुओं का वास्तविक आदान प्रदान नहीं होता अपितु क्रेताओं या विक्रेताओं को विक्रय से होने वाले लाभ या हानि का ही भुगतान होता है।

6. क्रय विक्रय में वस्तुओं की संख्या के आधार पर

क्रय विक्रय में वस्तुओं की संख्या के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं –

(अ) साधारण बाज़ार – ये बाज़ार सभी प्रकार के उत्पादों जैसे खाद्यान्न, तिलहन, कपास, गुड़ के क्रय – विक्रय से सम्बंधित होते है। यहाँ इन वस्तुओं का क्रय – विक्रय बड़ी मात्रा में होता है।

(ब) विशिष्ट बाज़ार – ये बाज़ार एक या दो उत्पादों के ही क्रय – विक्रय से संबंधित होते हैं विभिन्न उत्पादों के लिए पृथक बाज़ार होते हैं उदाहरणतः खाद्यान्न - मंडी, फल मंडी, सब्जी – मंडी, उन मंडी आदि ।

7. स्पर्धा के स्तर के आधार पर

स्पर्धा के स्तर के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं –

(अ) पूर्ण स्पर्धा (perfect competltlon) वाले बाज़ार – इन बाज़ारों में एक ही उत्पाद से सम्बंधित अनेक क्रेता और विक्रेता होते हैं तथा क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच आपस में पूर्णस्पर्धा (perfect competltlon) की स्थिति होती है। इन बाज़ारों में उत्पाद की कीमत सामान होना आवश्यक है। इस शर्त के कारन ही ये बाज़ार काल्पनिक होते हैं।

(ब) अपूर्ण स्पर्धा (lmperfect competltlon) वाले बाज़ार – इन बाज़ारों में क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच आपस में पूर्णस्पर्धा (perfect competltlon) की स्थिति नहीं होती है।अपितु भिन्न विक्रेताओं द्वारा उत्पाद का विक्रय विभिन्न कीमतों पर होता है जिससे उनके बीच पूर्ण स्पर्धा की स्थिति नहीं होती है। अपूर्ण स्पर्धा वाले बाज़ार निम्न प्रकार के होते हैं –

(i) एकाधिकार बाज़ार (Monopoly Market) - यह एक बाज़ार - स्थिति है जिसमें किसी उत्पाद का एक ही विक्रेता होता है फलतः वह इच्छानुसार कीमत वसूल करता है। स्पर्धा के आभाव में इन बाज़ारों में वस्तु की कीमत अन्य बाज़ारों की अपेक्षा अधिक होती है।

जब बाज़ार में एक ही क्रेता और एक ही विक्रेता होता है तो यह स्थिति द्विपक्षीय एकाधिकार (Bllateral Monopoly) कहलाती है।

(ii) द्वयाधिकार बाज़ार (Duopoly Market) – इस प्रकार के बाज़ार में किसी उत्पाद के दो ही विक्रेता होते हैं जो आपसी समझ से उत्पाद को एक ही कीमत पर बेचते हैं। किन्तु यह कीमत उत्पाद की संभवतः कीमत से अधिक होती है। दो ही विक्रेता होने के कारण इस प्रकार के बाज़ार को द्वि – क्रेताधिकार बाज़ार (Duopsony Market) भी कहा जाता है।

(iii) अल्पाधिकार बाज़ार (Ollgopoly Market) – इस प्रकार के बाज़ार में दो या दो से कुछ अधिक विक्रेता होते हैं। अतः पूर्ण स्पर्धा (Perfect Competltlon) का आभाव होता है। क्रेताओं की संख्या दो या दो से अधिक किन्तु ज्यादा न होने के कारण इस बाज़ार को अल्प – क्रेताधिकार बाज़ार (Ollgopsony Market) भी कहा जाता है।

(iv) एकाधिकरात्मक बाज़ार (Monopollstlc Market) - एकाधिकरात्मक बाज़ार में बहुत अधिक संख्या में क्रेता विक्रेता होते हैं। यहाँ बिकने वाले उत्पाद भिन्न – भिन्न किस्म, गुणवत्ता के होते हैं। यह भिन्नता उत्पाद को अलग अलग ट्रेडमार्क से बेचने से प्रकट होती है। अतः यहाँ अलग अलग ट्रेडमार्क के उत्पादों को भिन्न - भिन्न कीमतों पर बेचा जाता है।

8. वस्तुओं की प्रकृति के आधार पर

वस्तुओं की प्रकृति के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं –

(अ)उत्पाद बाज़ार – ये बाज़ार विभिन्न प्रकार के कृषि उत्पादित उत्पादों जैसे खाद्यान्न, तिलहन, कपास आदि कृषि उत्पादन साधन या कृषि सम्बंधित कच्चे माल, खाद आदि के क्रय – विक्रय से सम्बंधित होते है।

(ब) पूँजी बाज़ार – ये उत्पाद से नहीं अपितु शेयर, बोंड्स, मुद्रा आदि के क्रय – विक्रय से संबंधित बाज़ार होते हैं। उदाहरणतः मुद्रा बाज़ार व शेयर बाज़ार।

9. विपणन के चरण या अवयव के आधार पर

विपणन के चरण या अवयव के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं –

(अ) उत्पादक बाज़ार – ये बाज़ार उत्पादों के उत्पादन स्थल के समीप स्थित होते है। यहाँ पर उत्पादों को संगृहीत करके दूरस्थ स्थानों से आये व्यापारियों को बेचा जाता है

(ब) उपभोक्ता बाज़ार – ये बाज़ार उत्पादों के उपभोक्ताओं के समीप स्थित होते हैं। यहाँ उपभोक्ता आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में उत्पाद को क्रय करता है। ये बाज़ार घनी आबादी वाले क्षेत्रों में स्थित होते हैं।

10. नियंत्रण की सीमा के आधार पर

नियंत्रण की सीमा के आधार पर बाज़ार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं–

(अ) नियंत्रित बाज़ार (Regulated Market)– इन बाज़ारों में व्यापार के नियम व निर्देश किसी विधिक संस्था द्वारा निर्देशित होते है। जैसे कृषि बाज़ार कृषि उपज मंडी द्वारा नियंत्रित होते हैं। यहाँ विपणन पदध्तियाँ व व्यापारिओं के कुचाल कानून द्वारा नियंत्रित होते हैं।

(ब) अनियंत्रित बाज़ार (Unregulated Market) – ये बाज़ार व्यापारिओं द्वारा बनाये गए नियमों के अनुसार कार्य करते हैं, जिसमे कृषकों और उपभोगताओं के हितों को उपेक्षित किया जाता है। अतः विपणन लागत अधिक आती है।

(स) असंगठित / अव्यवस्थित बाज़ार (Unorganlsed Market) – इन बाजारों में व्यवस्थाओं का अभाव होता है तथा क्रेताओं व विक्रेताओं के मध्य स्वतंत्र स्पर्धा नहीं होती है। इसके आलावा केंद्रीय संगठन के नियंत्रण के आभाव में उत्पादों की विभिन्न कीमतें प्रचलित होती हैं। जैसे– गाँव व शहरों के सब्जी बाज़ार।

विभिन्न आधारों पर बाजारों के उपर्युक्त वर्गीकरण को निम्न चित्र में प्रदर्शित किया गया है -

विभिन्न आधारों पर बाजार का वर्गीकरण

1. स्थान स्थिति के आधार पर	• ग्रामीण /स्थानीय बाजार • प्राथमिक थोक बाजार • माध्यमिक थोक बाजार

	• बंदरगाहों के समीप बाजार • सीमांत बाजार
2. क्षेत्रफल के आधार पर	• स्थानीय बाजार • क्षेत्रीय बाजार • राष्र्टीय बाजार • अंतर्राष्र्टीय बाजार
3. समय के आधार पर	• अल्पकालीन बाजार • दीर्घकालीन बाजार • सुदीर्घकालीन बाजार
4. क्रय के आधार परविक्रय की संख्या –	• थोक बाजार • खुदरा बाजार
5. क्रय भाव के आधारविक्रय के स्व – पर	• नकद बाजार • वायदा बाजार
6. वस्तुओं की संख्या के आधार पर	• साधारण बाजार • विशिष्ट बाजार
7. स्पर्द्धा के आधार पर	• पूर्ण स्पर्द्धा वाले बाजार • अपूर्ण स्पर्द्धा वाले बाजार • एकाधिकार बाजार • हयाधिकार बाजार • अल्पाधिकार बाजार • एकाधिकारात्मक बाजार
8. वस्तुओं के स्वभाव के आधार पर	• उत्पाद बाजर • पूंजी बाजार
9. विपणन के चरण या अवयव के आधार पर	• उत्पादक बाजार • उपभोक्ता बाजार
10. नियंत्रण की सीमा के आधार पर	• नियंत्रित बाजार

	• अनियंत्रित बाजार

2.4 बाज़ार संरचना

बाज़ार संरचना का तात्पर्य बाज़ार की आकृति, स्वरुप व आकार से होता है । इससे बाज़ार की कार्यप्रणाली भी परिभाषित होती है। इन अवयवों में परिवर्तन करने से बाज़ार के कार्य करने की विधि पर प्रभाव पड़ता है। बाज़ार संरचना के संबन्ध में कुछ लेखकों के विचार इस प्रकार हैं–

जोर्ज एवं सिंह - बाजार-संरचना से तात्पर्य बाजार के उन संघटनात्मक अभिलक्षणों सेहै जो उत्पादों की कीमतों एवं व्यापारिक फर्मों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

स्टीफल - बाजार-संरचना से तात्पर्य बाजार के उन अभिलक्षणों से होता है जो व्यापारियों के विपणन-व्यवहार एवं उसके कारण उनके निष्पादन को प्रभावित करते हैं।

अमरचन्द एवं वरधराजन - विपणन-संस्थाओं की कार्यात्मक प्रक्रियाओं के औपचारिक संघटनात्मक स्वरूप को बाजार-संरचना कहते हैं।

बाजार-संरचना का अध्ययन बाजार के निष्पादन में पाई जाने वाली अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति को चिन्हित करके समझने में सहायक होता है।

बाजार-संरचना का वर्गीकरण:

वर्गीकृत बाजार-संरचना की विभिन्न स्थितियों में विक्रेताओं की संख्या, उत्पादों में भिन्नता एवं उत्पादकों का कीमत पर नियंत्रण की स्थिति निम्न सारणी में प्रदर्शित कि गई है -

सारणी 2- बाजार-संरचना का वर्गीकरण

क्रमांक	**बाजार-संरचना**	**विक्रेताओं की संख्या**	**उत्पादों में भिन्नता का स्तर**	**उत्पादकों का कीमतों पर नियंत्रण**
1	पूर्ण स्पर्द्धा बाजार	अधिक संख्या में	समरूप उत्पाद	नहीं होता है।
2	अपूर्ण स्पर्द्धा बाजार			
(अ)	एकाधिकार बाजार-संरचना	एक विक्रेता	उत्पादों को प्रति-स्थापित करने वाले उत्पाद बाजार में नहीं होते	कीमत पर पूर्ण नियंत्रण होता है।

			हैं।	
(ब)	द्वयाधिकार बाजार-संरचना	दो विक्रेता	समरूप उत्पाद	कीमत पर पूर्ण नियंत्रण होता है।
(स)	अल्पाधिकार बाजार-संरचना	दो से अधिक लेकिन अधिक संख्या में नहीं होते हैं	समरूप उत्पाद	कीमत पर एक सीमा तक नियंत्रण होता है।
(द)	एकाधिकार बाजार-संरचना	दो से अधिक विक्रेता होते हैं	विभेदक-उत्पाद	कीमत पर एक सीमा तक नियंत्रण होता है।

बाजार-संरचना के स्रोत व घटक

बाजार-संरचना के निम्न घटक वैयक्तिक एवं सम्मिलित रूप में बाजार में कार्यरत मध्यस्थों के व्यवहार एवं बाजार की निष्पादन क्रिया को प्रभावित करते हैं -

(I) बाजार-शक्ति का केन्द्रीकरण - बाजार-शक्ति के केन्द्रीकृत होने अथवा नहीं होने की स्थिति में बाजार-संरचना प्रभावित होती है, जिससे बाजार में कार्यरत मध्यस्थों का व्यवहार प्रभावित होता है फलतः बाजार-निष्पादन प्रभावित होती है। इसका आकलन बाज़ार में उपस्थित फर्मों की संख्या व उनके कार्यों के विस्तार से किया जा सकता है ।

(II) उत्पाद के गुणों में विभेदकता का स्तर - उत्पादों के गुणों में विभेदकता अथवा समरूपता की स्थिति में बाजार-संरचना में भिन्नता आती है। बाजार में उपलब्ध उत्पादों के गुणों में समानता होने पर कीमतों में विचलन कम होता है। इसके विपरीत उत्पादों के गुणों में विभेदकता होने पर विक्रेता कीमतें विभिन्न क्रेताओं से भिन्न-भिन्न प्राप्त करने में सक्षम होता है।

(III) बाजार में फर्मों के प्रवेश की शर्तें - बाजार में फर्मों के प्रवेश पर किसी प्रकार की (अनुज्ञा-पत्र, सरकारी, वित्त-आवश्यकता आदि) आवश्यकता या शर्त होने पर बाजार-संरचना प्रभावित होती है। फर्मों के प्रवेश पर पाबन्दी नहीं होने की स्थिति में बाजार-संरचना ही क्रेताओं एवं विक्रेताओं के हितों की रक्षा प्रदान करने वाली होती है।

(Iv) विपणन-सूचना-सेवा की उपलब्धि – बाजार सम्बंधित सूचना-सेवा एवं विपणन सम्बंधित सूचना सेवा के विकसित होने से बाजारों की बाजार-संरचना भिन्न होती है, जो क्रेताओं एवं विक्रेताओं के लिए हितकर होती है क्योंकि वे आपस में सर्व सहमति से वस्तुओं के कीमतों का निर्धारण कर सकते हैं तथा अन्य विचार कर सकते हैं।

(v) बाजारों में एकीकरण की स्थिति - बाजार में विभिन्न प्रकार के एकीकरण (उदग्र एवं क्षैतिज) होने की स्थिति में व्यापार के होने से क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य में पूर्ण प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति नहीं होती है एवं बाजार-संरचना प्रभावित होती है।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि बाजार-संरचना स्थायी धारणा नहीं है, बल्कि बाजार-संरचना में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। बाजार-संरचना में परिवर्तन क्षेत्र में उत्पादों के उत्पादन-प्रतिरूप, माँग-प्रतिरूप, विपणन-कार्यों के करने की लागत, उत्पादों के उत्पादन में तकनीकी ज्ञान में परिवर्तनों के होने से होते रहते हैं।

बाजार-संरचना को गतिशील बनाने वाले अवयव -

(1) बाजार व्यवहार(मार्केट कंडक्ट)

बाजार-संरचना, बाजार में कार्यरत विभिन्न विपणन-मध्यस्थों के व्यवहार को प्रभावित करती है।

बाजार-व्यवहार से तात्पर्य बाजार में कार्यरत विभिन्न व्यवसायियों के उत्पादों की कीमतों उनके द्वारा अपनाई गई विपणन-पद्धति एवं बाजार में हो रहे परिवर्तनों के अनुसार, व्यवसायियों द्वारा अपने उत्पादों की विपणन-नीति में सामंजस्य करने से होता है। अतः बाजार-व्यवहार में निम्न पहलू सम्मिलित होते हैं -

(I) बाजार में फर्मों की हिस्सेदारी एवं कीमतें निर्धारण की नीति।

(II) बाजार में प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी फर्म को परास्त करने की नीति।

(III) उत्पादों के गुणवत्ता में स्थिरता की नीति।

(2) बाजार निष्पादन(मार्केट परफोरमेंस)

विपणन में कार्यरत व्यवसायियों अथवा उद्योग को प्राप्त हो रहे आर्थिक परिणामों के आधार पर बाजार-निष्पादन का आकलन किया जाता है। प्रत्येक समाज, बाजार निष्पादन के नापने में विभिन्न मापदण्डों का उपयोग करता है।

जॉर्ज एवं सिंह के अनुसार - बाजार-निष्पादन से तात्पर्य उद्योग को प्राप्त हो रहे आर्थिक लाभ से है क्योंकि उद्योग में अनेक फर्में सम्मिलित होती हैं जिनका बाजार-व्यवहार भिन्न होता है।

बाजार संरचना का निष्पादन व क्षमता का मापन करने के मानदण्ड हैं जो इस् प्रकार हैं :

(अ) साधनों को उपयोग में लेने की क्षमता

(ब) एकाधिकार बाजार-संरचना या मोनोपोली की उपस्थिति

(स) व्यापारिक विस्तार व गतिविधियां

(द) बाज़ार संरचना में व्याप्त आर्थिक असमानता

(3) बाजार-स्वर (मार्केट टोन)

क्रेताओं एवं विक्रेताओं द्वारा प्रचलित कीमतों की या इससे संबंधित अभिवृत्ति (व्यवहार) बाजार में दर्शाने को बाजार स्वर कहते हैं। बाजार-स्वर की अभिभूति में विभिन्न शब्द जैसे शान्त, मजबूत, प्रसन्नमुद्रा, स्थिर, कीमतों की दृढ़ता, तन्त्रिकीय, उदास, मन्द, कीमतों में गिरावट, अनिश्चित, अनियमित, अनिश्चयी का प्रयोग किया जाता है। यह शब्द बाजार के विषय में जानकारी एक शब्द में वर्णित करते हैं, जिससे व्यापार में संलग्न व्यक्ति व्यापार की स्थिति को आंकने में सफल होते हैं।

(4) बाजार-खण्डन (मार्केट सेग्मेंटेशन)

उत्पादों के निर्माता/विक्रेता विभिन्न आधारों के अनुसार उपभोक्ताओं की संतुष्टि हेतु बाजार-खण्डन करके अपने निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं। बाजार-खण्डन, विभिन्न वर्ग के उपभोक्ताओं के लिए भिन्न- भिन्न किस्म एवं गुणों वाले उत्पादों के निर्माण की विपणन-प्रक्रिया एवं विपणन हेतु कार्यक्रम बनाने की विधि है । बाजार-खण्डन वह क्रिया/विधि या रणनीति है जिसमें विभिन्न आधारों पर बाजार को विभिन्न खण्डों में विभक्त करके, उनके अनुसार भिन्न खंड के लिए भिन्न उत्पाद प्रदान करके सम्पूर्ण बाजार को अपनी अधीन करके बाजार पर प्रभुत्व स्थापित किया जाता है।

बाजार-खण्डन विधि उपभेक्ता के अनुकूल दर्शन है, जिसके अपनाने से निम्न लाभ प्राप्त होते हैं -

(I) विपणन में कार्यरत व्यक्ति खण्डों में उपस्थित विपणन के सर्वोत्तम अवसर का चुनाव सुगमता से कर पाते हैं।

(II) विपणन में कार्यरत व्यक्ति द्वारा बाजार से विभिन्न खण्डों में उपभोक्ताओं की माँग के अनुरूप वस्तु व अन्य विपणन-कार्यक्रम आसानी एवं दक्षता से बनाते एवं कार्यान्वित करते हैं।

(III) विपणन में कार्यरत व्यक्ति द्वारा बाजार-खण्डन के उपभोक्ताओं की माँग के अनुरूप उत्पादों में बारीकी तौर पर तालमेल बिठाने के लिए परिवर्तन कर सकता है एवं उसके लिए विपणन-संचार-सेवा काम में ले सकता है।

(Iv) विपणन में कार्यरत व्यक्ति अपने उत्पादों के प्रबल प्रतिस्पर्धकों की शक्ति एवं कमजोरी का आकलन कर सकता है एवं उपलब्ध उत्पादन-साधनों का उपभोक्ताओं की माँग पूर्ति के लिये अधिक लाभप्रद विधि से उपयोग कर सकता है।

(v) बाजार-खण्डन से विपणन में प्रयुक्त उपलब्ध-साधनों का दक्षतापूर्ण उपयोग करना सम्भव होता है क्योंकि निर्माता का विपणन के उद्देश्य, उपभोक्ता की मांग एवं लक्ष्क्षित बाजार पर सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित रहता है।

बाजार-खण्डन के आधार:

सामान्यतः बाजार-खण्डन के लिए निम्न आधारों का उपयोग किया जाता है -

(I) उपभोक्ता की आय।

(ll) उपभोक्ता की सम्पत्ति एवं साधन-सम्पन्नता जैसे - धनवान, गरीब, अति गरीब वर्ग।

(lll) उपभोक्ताओं का सामाजिक स्तर अथवा व्यवसाय

(lv) उपभोक्ताओं की उम्र जैसे - बच्चे, वयस्क, वृद्ध आदि।

(v) उपभोक्ताओं द्वारा उत्पाद की क्रय की जाने वाली मात्रा जैसे कम मात्रा में क्रय करने वाले उपभोक्ता, अधिक मात्रा में एक-साथ क्रय करने वाले उपभोक्ता।

(vi) उपभोक्ताओं के भौगोलिक प्रवास क्षेत्र जैसे - राज्य, जिला, शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र।

(v ii) उपभोक्ताओं द्वारा उत्पादों के क्रय करने के विशिष्ट समय जैसे दशहरे एवं दीपावली के त्यौहारों पर, स्कूल की छुट्टियों में, स्कूल में प्रवेश प्रारम्भ के समय, ग्रीष्मकाल, शीतकाल आदि।

(vlll) वस्तुओं का वितरण माध्यम।

(lx) उपभोक्ताओं द्वारा किसी ब्राण्ड या कंपनी के उत्पादों को दी जाने वाली प्राथमिकता।

(x) उपभोक्ताओं को दी जाने वाली सुविधा जैसे - घर पर उत्पाद उपलब्ध कराने की सुविधा, उधार में उत्पाद उपलब्ध कराने की सुविधा, भुगतान कीमत को किश्तों में देने की सुविधा, आदि।

अतः हम निष्कर्ष निकल सकते हैं की सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए एवं गतिमय पर्यावरण शक्तियों के अनुरूप बनने के लिए बाज़ार को सदैव गतिमय रहना चाहिए।

एक जड बाज़ार संरचना आर्थिक, भौतिक, तकनीकी कारकों के कारण अप्रचलित हो जाती है। अतः बाज़ार संरचना को निम्न परिवर्तनों के साथ ताल मिलाना चाहिए।

1. उत्पादकता स्वरुपसंस्थागत कारकों से किसी भी देश का उत्पादकता ,वित्तीय ,प्रौद्योगिक - बाज़ार संरचना को भी इन कारकों के ,स्वरुप गतिशील रहता है अनुरूप अपना स्वरुप बदलना चाहिए
2. माँग का स्वरुप- वस्तु का स्वरुप व गुणवत्ता बाज़ार की मांग के अनुरूप बदलता है इसलिए उपभोगता के बदलते हुए व्यव्हार के अनुसार बाज़ार संरचना को भी अपने स्वरुप मं परिवर्तन लाना चाहिए
3. लागत व वितरण सम्बंधित कार्यकलाप - वितरण सम्बंधित कार्यकलापों जैसे भण्डारण, वस्तुओं का परिवहन वित पोषण, बाज़ार सम्बंधित सूचनाओं का निस्तारण का बाज़ार संरचना पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है क्रय, विक्रय व सब्सिडी से सम्बंधित सरकारी नीतियों भी बाज़ार निष्पादन को प्रभावित करती हैं बाज़ार संरचना को सरकारी नीतियों एवं लगत के अनुरूप बदलते रहना चाहिए
4. उद्योग में तकनीकी परिवर्तन – तकनीकी परिवर्तनों के प्रभाव से व्यापार के विस्तार, उद्योगों की संख्या व उनकी वित्तीय आव्श्यक्तओं में परिवर्तन आता है इसी के अनुसार बार संरचना में भी परिवर्तन आवश्यक है

2.5 बाजार से सम्बन्धित शब्द एवं उनकी व्याख्या

(1) स्वतंत्र बाजार

स्वतंत्र बाजार वे हैं, जिनमें उत्पादों के विपणन के निर्णय क्रेता एवं विक्रेता सीधे रूप में लेते हैं। इन बाजारों सरकार का क्रेताओं एवं विक्रेताओं के द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं होता है।

(2) काला बाजार

काला बाजार वे हैं जिनमें उत्पादों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होते हुए भी विक्रेता उत्पादों का भण्डारण करके या स्टॉक सूचित नहीं करकेउनकी कृत्रिम कमी उत्पन्न करता है तथा उत्पादों को निश्चित कीमत से अधिक कीमत पर बेचता है।

(3) क्रेताओं का बाजार

वे बाजार जिनमें उत्पाद की उपलब्धता, उपभोक्ताओं की माँग से बहुत अधिक मात्रा में होती है और क्रेता उत्पाद को मनचाही कीमत पर खरीदने में सक्षम होते हैं, इन्हें क्रेताओं का बाजार कहते हैं। इन बाजारों में क्रेता सर्वोपरि स्थिति में होते हैं, जिससे विक्रेता कम कीमत पर भी उत्पाद को विक्रय करने के लिए विवश होते हैं।

(4) विक्रेता-बाजार

वे बाजार जिनमें उत्पाद की उपलब्धता, उपभोक्ताओं की माँग से बहुत कम मात्रा में होती है तथा उत्पादों के विक्रेता अपने उत्पादों को क्रेताओं को अधिक कीमत पर विक्रय करने में सक्षम होते हैं। इन बाजारों में विक्रेता सर्वोपरि स्थिति में होते हैं।

(5) उत्पादक संघ

जब बाजार में किसी उत्पाद के उत्पादक आपस में समझौता करके अपना संघ बना लेते हैं और वे उस उत्पाद की उत्पादित की जाने वाली मात्रा एवं उसकी कीमत को आपसी समझौते द्वारा नियंत्रित करते हैं तो उस उत्पाद के विक्रय में होने वाली प्रक्रिया को उत्पादक-संघ प्रक्रिया कहते हैं। इन उतपादों का उत्पादन या उपलब्धता सीमित मात्र में होती हैउदाहरण - पैट्रोलियम-उत्पादक संघ (ओपेक), सीमेन्ट-उत्पादक संघ आदि।

(6) वस्तु-विनिमय प्रथा

आदान-प्रदान (विनिमय) प्रणाली मुद्रा के प्रचलन के साथ ही समाप्त हो गई इसमें एक उत्पाद के बदले दूसरा उत्पाद प्राप्त किया जाता था। इस प्रणाली में उत्पाद की कीमत मुद्रा (रूपये) में प्रकट नहीं की जाती है। उत्पाद की कीमत दूसरे उत्पादों की मात्रा के रूप में प्रकट की जाती है।

(7) ट्रेडमार्क

उत्पाद पर लगाया जाने वाला चिन्ह है जो ट्रेडमार्क्स एवं ट्रेडमार्क्स अधिनियम ;ज्तंकम डंतो ंदक ज्तंकम डंतो ।बजद्ध के अन्तर्गत पंजीकृत उत्पाद पर वैधानिक शब्द के रूप में उपयोगित होता है। यह मार्क प्राप्त उत्पाद को वैधानिक सुरक्षा प्रदान करता है। इसकी पहचान के लिए संवेष्टन में उपयोगित आवरण पर अंग्रेजी के श्®श् शब्द को गोले के रूप में दर्शाया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि यह उत्पाद का मार्क पंजीकृत है, जिसे अन्य व्यवसायी उपयोग में नहीं ले सकते हैं।

(8) मार्का (ब्रांड)एवं मार्का अंकित करना(ब्रांडिंग)

एक नाम, चिन्ह, सूत्र अथवा आकृति, जो एक फर्म/व्यवसायी अपने उत्पाद को दूसरे प्रतिस्पर्द्धा वाली फर्म अथवा उत्पादक से भिन्नता प्रदर्शित करने के लिये उपयोग करता है। ब्राण्डिंग/मार्का अंकित करना एक प्रक्रिया है, जिसमें विक्रेता बाज़ार मेंउपलब्ध कराये जाने वाले उत्पाद या उत्पादों के समूह को विशेष नाम देता है तथा उसी नाम से विपणन करता है।

2.6 सारांश

बाज़ार शब्द वस्तुओं के क्रय विक्रय के स्थान एवं उत्पाद को एक निश्चित कीमत पर उपभोगता को उप्लाभ्दा करने से सम्बंधित है।

इसका वर्गीकरण स्थान स्थिति के आधार पर क्षेत्रफल के आधार परसमय के आधार पर क्रय – विक्रय की संख्या के आधार पर क्रय – विक्रय के स्वभाव के आधार पर
वस्तुओं की संख्या के आधार पर स्पर्द्धा के आधार पर वस्तुओं के स्वभाव के आधार पर विपणन के चरण या अवयव के आधार पर एवं नियंत्रण की सीमा के आधार पर किया जा सकता है।

बाज़ार संरचना का तात्पर्य बाज़ार की आकृति, स्वरुप व आकार से होता है। बाज़ार संरचना पूर्ण स्पर्द्धा बाजार , अपूर्ण स्पर्द्धा बाजार, एकाधिकार बाजार-संरचना, द्वयाधिकार बाजार-संरचना एवं अल्पाधिकार बाजार-संरचना व एकाधिकारात्मक बाजार-संरचना के रूप में हो सकती है।किन्तु सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति के लिए एवं गतिमय पर्यावरण शक्तियों के अनुरूप बनने के लिए बाज़ार को सदैव गतिमय रहना चाहिए। बाजार-संरचना को गतिशील बनाने वाले अवयव हैं बाजार व्यवहार बाजार निष्पादन बाजार स्वर व बाजार खंडन

2.7 अभ्सास प्रश्न

1. निम्न में से क्या एक बंदरगाह बाजार है

   (अ) कांडला (ब) वाराणसी

   (स) कोयम्बटूर (द) दिल्ली

2. निम्न में से किस प्रकार के बाजार में क्रय विक्रय तो वर्तमान में होता है, किन्तु आदान – प्रदान भविष्य में होता है।

   (अ) थोक बाजार (ब) वायदा बाजार

   (स) खुदरा बाजार (द) सीमांत बाजार

3. निम्न में से किस प्रकार के बाजार में विपणन के नियम व्यापारियों द्वारा बनाए जाते हैं।

(अ) नियंत्रित बाजार (ब) थोक बाजार

(स) अनियंत्रित बाजार (द) विशिष्ट बाजार

4. निम्न में से किसने बाजार संरचना को विपणन संस्थाओं की कार्यात्मक प्रक्रियाओं का औपचारिक संघटनात्मक स्वरूप बताया है?

(अ) जोर्ज एवं सिंह (ब) स्टीफल

(स) अमरचंद एवं वरघराजन (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

5. संतोषजनक बाज़ार निष्पादन के लिये बाज़ार संरचना को निम्न में से किन परिवर्तनों के साथ ताल मिलाना चाहिए ?

(अ) उत्पादकता स्वरुप (ब) माँग का स्वरुप

(स) लगत व वितरण सम्बंधित कार्यकलाप (द) उपरोक्त सभी

2.8 संदर्भ ग्रन्थ

- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- S. S. Acharya and N. L. Agarwal. 2007. Agrlcultural Marketlng in India. Oxford & IBH Publlcatlons, Calcutta.
- S. Subba Reddy, P. Raghu Ram, T. V. Neelakanta Sastry and I. Bhavani DevI. 2006. Agrlcultural Economlcs. Oxford & IBH Publlcatlons, Calcutta.
- K. K. Dewett. 1999. Modern Economic Theory. Oxford & IBH Publlcatlons, Calcutta.

इकाई - 3

कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 बाजार की शक्तियाँ

3.3 कीमत निर्धारण का सिद्धांत

3.4 कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति

3.5 कृषि-उत्पाद, कृषि-उत्पादन एवं कृषि-उत्पादों की उत्पादक-फर्मो एवं कृषकों की विशेषताएँ

3.6 भारत में खाद्यानों की माँग एवं पूर्ति का आकलन

3.7 सारांश

3.8 अभ्यास प्रश्न

3.9 संदर्भ ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस अध्याय से आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे:-

- कृषि-उत्पादों की कीमतों की निर्धारक शकितयाँ
- कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति
- कृषि-उत्पादों की संतुलन-कीमत ज्ञान करने की विधि
- भारत में खाद्यानों की माँग एवं पूर्ति का आकलन, आदि

3.1 प्रस्तावना

उत्पादों के क्रय-विक्रय के लिए कीमतों का निर्धारण करना आवश्यक है। कीमतों का निर्धारण मणिडयों में होता है और निर्धारित कीमतों पर उत्पादों का क्रय-विक्रय क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य होता है। कृषि-उत्पादों की निर्धारित कीमतें उत्पादक-कृषकों को फार्म से प्राप्त उत्पादन से प्राप्त आय एवं उपभोक्ताओं को सीमित आय से उचित जीवन-निर्वाह स्तर प्राप्त कराने की घोतक होती है।

3.2 बाजार की शक्तियाँ

3.2.1 माँग

उत्पाद की वह मात्रा जिसे उपभोक्ता दी हुई कीमतों पर विशिष्ट समय एवं बाजार में क्रय करने के लिए तत्पर होते हैं, उत्पाद की माँग कहलाती है। उत्पाद की माँग उपभोक्ताओं की संख्या, उपभोक्ताओं

की आय, उत्पाद की कीमत, सम्बंधित उत्पाद की कीमतों, मौसम, उपभोक्ताओं की उत्पाद के प्रति रूचि पर मुख्यत:, निर्भर करती है।

माँग का नियम

माँग के नियम के अनुसार अन्य कारकों के समान स्तर पर रहते हुये, किसी उत्पाद की कीमत के कम होने पर उसकी माँग की मात्रा में वृद्धि तथा कीमत में वृद्धि होने पर उस उत्पाद की माँग में कमी होती है। अत: उत्पाद की कीमत एवं माँग में सामान्यत: विलोम (ऋणात्मक) सम्बन्ध होता है।

माँग की संकल्पनाएँ

माँग की निम्न तीन संकल्पनाएँ होती है -

(अ) प्रभावशाली माँग: उपभोक्ताओं द्वारा क्रय कने की वह इचिछत मात्रा, जिसको क्रय करने की शकित उनके पास होती है, वह उस उत्पाद की प्रभावशाली माँग कहलाती है।

(ब) व्युत्पन्न माँग: कुछ उत्पादों की बाजार में उपभोक्ताओं की ओर से प्रत्यक्ष माँग नहीं होती है, बलिक उनकी माँग उन उत्पादों के उपयोग से उत्पन्न होने वाले उत्पादों की आवश्यकता के कारण उत्पन्न होती है। उत्पाद की इस प्रकार की माँग को व्युत्पन्न माँग कहते हैं। उदाहरण : उर्वरक की माँग, सीमेन्ट की माँग, कीटनाशी दवाइयों की माँग आदि।

(स) आरक्षित माँग: उत्पाद की वह मात्रा जो बाजार में प्रचलित कीमत पर विक्रेता विक्रय करना नहीं चाहता है बलिक उस मात्रा को अपने पास ही आरक्षित रूप में रखना पसन्द करता है। उत्पाद की इस माँग को आरक्षित माँग कहते हैं।

माँग चक्र

उपभोक्ताओं द्वारा क्रय की गई उत्पाद की मात्रा एवं उसकी कीमतों के संबंधको ग्राफ पर दर्शाने से जो वक्ररेखा बनती है, वह उस उत्पाद का माँग-वक्र कहलाता है।

माँग की कीमत-लोच :

किसी उत्पाद की कीमत में परिवर्तन से उपभोक्ता की उस उत्पाद की माँग की मात्रा में जो अनुक्रिया होती है, उसे उस उत्पाद की माँग की कीमत-लोच से सम्बोधित किया जाता है। उत्पादों की माँग की मात्रा के समानुपातिकप्रतिशत परिवर्तन एवं उनकी कीमतों के समानुपातिक प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात को माँग की कीमत-लोच कहते हैं। सूत्र के अनुसार-

$$\text{माँग की कीमत–लोच} = \frac{\text{उत्पाद की माँग की मात्रा में हुआ समानुपातिक / प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{उत्पाद की कीमत में हुआ समानुपातिक / प्रतिशत परिवर्तन}}$$

3.2.2 पूर्ति

कीमत निर्धारण की द्वितीय प्रमुख शकित, उत्पाद की पूर्ति है। उत्पाद की वह मात्रा जो निर्धारित कीमत पर विशिष्ट समय एवं बाजार में विक्रय हेतु उपलब्ध होती है, वह उस उत्पाद की पूर्ति कहलाती है।

पूर्ति का नियम

उत्पाद की पूर्ति और कीमत के संबंधके विवरण को पूर्ति का नियम कहते है। पूर्ति के नियम के अनुसार, अन्य कारकों के समान रहते हुये, उत्पाद की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी पूर्ति की मात्रा बढ़ जाती है तथा कीमत के कम होने पर पूर्ति की मात्रा कम हो जाती है। अत: उत्पाद की कीमत एवं पूर्ति में सामान्य: धनात्मक सम्बंधपाया जाता है।

पूर्ति-वक्र

विक्रेताओं द्वारा उत्पाद की पूर्ति की मात्रा और उत्पाद की कीमतों के सम्बंधको ग्राफ की सहायता से दर्शाने पर जो वक्ररेखा बनती है वह उस उत्पाद का पूर्ति वक्र कहलाता है। पूर्ति-वक्र का ढाल (उध्र्वगामी) धनात्मक अर्थात बायें से दाहिनी ओर नीचे से ऊपर की ओर होता है। इससे तात्पर्य है कि कीमत के बढ़ने से उत्पाद की पूर्ति की मात्रा में वृद्धि और कीमत के कम होने पर उत्पाद की पूर्ति की मात्रा में कमी होती है। पूर्ति-वक्र विभिन्न कीमतों पर उत्पाद की उपलब्ध मात्रा का धोतक होता है।

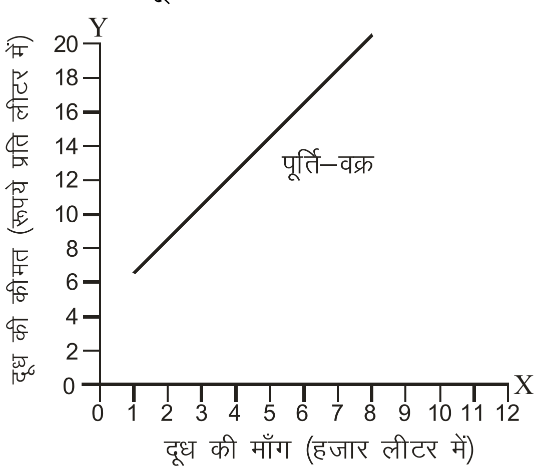

पूर्ति की कीमत-लोच

उत्पादों की पूर्ति के समानुपातिकप्रतिशत परिवर्तन एवं उनकी कीमतों के समानुपातिकप्रतिशत परिवर्तन के अनुपात को पूर्ति की कीमत-लोच कहते हैं। सूत्र के अनुसार -

$$\text{पूति की कीमत–लोच} = \frac{\text{उत्पाद की पूर्ति की मात्रा में हुआ समानुपातिक / प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{उत्पाद की कीमत में हुआ समानुपातिक / प्रतिशत परिवर्तन}}$$

3.3 कीमत निर्धारण का सिद्धांत

उत्पादों की कीमत-निर्धारण के लिए समय-समय पर विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। इन सिद्धान्तों में उत्पादन-लागत का सिद्धान्त, श्रम का सिद्धान्त, सीमान्त उपयोगिता का सिद्धान्त एवं प्रो. मार्शल का सिद्धान्त प्रमुख हैं। इनमें से प्रो. मार्शल द्वारा प्रतिपादित कीमत-निर्धारण का सिद्धानत सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। प्रो. मार्शल द्वारा प्रतिपादित कीमत-निर्धारण का सिद्धान्त, मांग एवं पूर्ति की शकितयों पर आधारित होने के कारण, माँग और पूर्ति का सिद्धान्त कहलाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार उत्पाद की कीमतें, माँग एवं पूर्ति नामक शकितयों पर समान रूप से निर्भर होती है। माँग पर सीमान्त उपयोगिता एवं पूर्ति पर उत्पाद की उत्पादन लागत का प्रभाव आता है। प्रो. मार्शल के इस सिद्धान्त को कीमत-निर्धारण के आधुनिक सिद्धान्त भी कहते है। यह सिद्धान्त वैज्ञानिक विधि से पूर्ण है। इस सिद्धान्त को समझने में निम्न मान्यताएँ होती है -

(अ) कीमत निर्धारण में सरकार का किसी प्राकर का हस्तक्षेप नहीं होता है।

(ब) कीमत निर्धारण में किसी भी इकाई का एकाधिकार नहीं होता है।

प्रो. मार्शल द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न उत्पादों की कीमतें उनकी माँग एवं पूर्ति नाम शकितयों के पारस्परिक प्रभाव अथवा दोनों शकितयों के साम्यावस्था (संतुलन) बिन्दु पर निर्धारित होती है। उत्पाद की माँग के आधार पर अधिकतम कीमत नियत होती है और उपभोक्ता (क्रेता) अधिकतम कीमत से कम कीमत पर उत्पाद की इचिछत मात्रा प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इसके विपरीत, उत्पाद के विक्रेता, उत्पाद की उत्पादन-लागत के आधार पर उत्पादों के विक्रय की न्यूनतम कीमत नियत करते हैं। विक्रेता उत्पादों के विक्रय में न्यूनतम नियत कीमत से अधिक कीमत प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। उत्पाद की कीमत इन्हीं दोनों सीमाओं - अधिकतम एवं न्यूनतम कीमतों - के मध्य निर्धारित होती है। क्रेताओं का उत्पाद के क्रय करने के लिए अधिक उत्सुक होने पर उत्पाद की कीमत अधिकतम कीमत के समीप एवं विक्रेताओं द्वारा उत्पाद को विक्रय करने के लिए अधिक उत्सुकता दिखाने पर कीमतें न्यूनतम कीमत के समीप निर्धारित होती हैं। इस प्रकार क्रेताओं एवं विक्रेताओं की प्रतिस्पद्र्धा से उत्पादों की कीमतों में उतार-चढ़ाव होता रहता है। अन्त में कीमतें माँग एवं पूर्ति के सन्तुलन (साम्यवस्था) बिन्दु अर्थात दोनों के समान स्तर पर होने पर निर्धारित होती है। माँग एवं पूति के सन्तुलन स्तर पर होने वाली कीमत उत्पाद की सन्तुलन-कीमत अथवा साम्यावस्था-कीमत कहलाती है।

कीमत-निर्धारण के मार्शल द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की स्पष्टता के लिए माँग एवं पूर्ति अनुसूची तथा माँग एवं पूर्ति वक्र का अध्ययन आवश्यक है, जो पूर्व पृष्ठों पर दिया गया है। सारणी में मण्डी में विभिन्न कीमतों पर गेहूँ उत्पाद की माँग एवं पूर्ति की मात्रा प्रदर्शित करती है।

मण्डी में गेहूँ की कीमत (रूपये प्रति किवंटल)	**गेहूँ की माँग (लाख किवंटल में)**	**गेहूँ की पूर्ति (लाख किवंटल में)**
850	2000	3500
825	2250	3250
800	2500	3000
775	2750	2750 सन्तुलन सिथति
750	3000	2500
725	3250	2250
700	3500	2000

स्पष्ट है कि मण्डी में गेहूँ की कीमत 775 रूपये प्रति किवंटल होने पर माँग एवं पूर्ति की मात्रा में साम्यावस्था होती है। अत: कीमत-निर्धारण के प्रो. मार्शल द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के अनुसार प्रतिस्पद्र्धा की अवस्था में मण्डी में गेहूँ की कीमत रूपये 775 प्रति किवंटल होने की सिथति में आये सभी क्रेताओं की माँग पूरी हो जाती है। मण्डी में गेहूँ की कीमत रूपये 775 प्रति किवंटल के अतिरिक्त अन्य सभी कीमतों पर सन्तुलन स्थापित नहीं हो पाता है। सन्तुलन कीमत से ऊपर कीमत होने पर, गेहूँ की माँग की मात्रा कम होती जाती है, लेकिन गेहूँ की पूर्ति की मात्रा बढ़ती जाती है। इसके विपरीत गेहूँ की मण्डी में कीमत रूपये 775 प्रति किवंटल से कम होने पर माँग की मात्रा में वृद्धि होती है, लेकिन पूर्ति की मात्रा कम होती जाती है। अत: मण्डी में गेहूँ की कीमत, संन्तुलन कीमत से ऊपर अथवा नीचे होने की दोनो ही अवस्थाओं में सन्तुलन स्तर बिगड़ जाता है। माँग एवं पूर्ति की मात्रा में सन्तुलन बिगड़ जाने पर मण्डी में आये सभी क्रेताओं की आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं हो पाती हैं एवं विक्रेताओं द्वारा विक्रय करने हेतु लायी गई गेहूँ की पूर्ण मात्रा विक्रय नहीं हो पाती है। फलस्वरूप कीमतों में पुन: वृद्धि अथवा कमी होनी प्रारम्भ हो जाती है, जो कीमतों में सन्तुलन स्थापित होने तक होती रहती है। माँग एवं पूर्ति के सन्तुलन स्तर पर आकर कीमतें पुन: सिथर हो जाती है। माँग एवं पूर्ति के आधार पर गेहूँ की सन्तुलित कीमत निर्धारण के सिद्धान्त को निम्न में दर्शाया गया है।

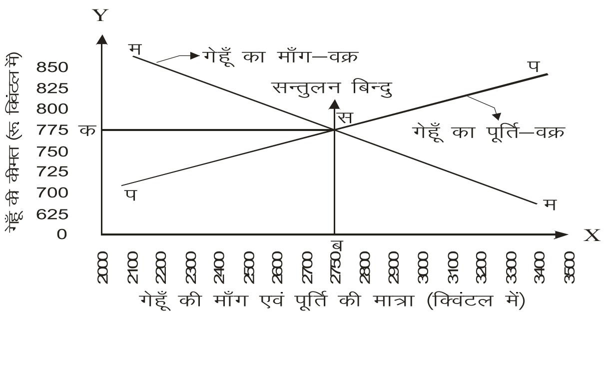

चित्र में माँग-वक्र (म म) पूर्तिवक्र (प प) के स बिन्दू पर काटता है अर्थात स बिन्दु माँग एवं पूर्ति का सन्तुलन बिन्दु है। यह सन्तुलन 'क' कीमत स्तर (रूपये 775 प्रति किवंटल) पर होता है। इस कीमत पर गेहूँ अ ब मात्रा (2750 किवंटल) का क्रय-विक्रय होता है। मण्डी में गेहूँ की कीमत, सन्तुलन-कीमत 'क' से ऊपर अथवा नीचे होने पर माँग एवं पूर्ति का सन्तुलन स्तर बिगड जाता है।

गेहूँ की कीमत 775 रूपये प्रति किवंटल अर्थात 'क' कीमत स्तर से कम होने पर बाजार में गेहूँ की माँग में वृद्धि होती है, लेकिन पूर्ति कम हो जाती है। उपयुक्त चित्र में 775 रूपये प्रति किवंटल अर्थात 'क' कीमत स्तर से कम कीमत होने पर गेहूँ की माँग अब मात्रा (3000 किवंटल) तथा पूर्ति अब मात्रा (2500 किवंटल) ही होती है। इस कीमत पर गेहूँ की माँग, पूर्ति की अपेक्षा अधिक होती है। सभी उपभोक्ताओं को इस कीमत पर आवश्यक मात्रा में गेहूँ उपलब्ध नहीं होता है। अत: उपभोक्ताओं को इस कीमत पर आवश्यक मात्रा में गेहूँ उपलब्ध नहीं होता है। अत: उपभोक्ता अपनी आवश्यकता को पूरी करने के लिए गेहूँ की कीमत अधिक देने को तैयार होते हैं, जिससे गेहूँ की कीमत में वृद्धि होनी शुरू होती है। कीमत में यह वृद्धि तब तक होती रहती है जब तक माँग एवं पूर्ति की मात्रा में सन्तुलन स्थापित नहीं हो जाता है अर्थात सभी उपभोक्ताओं को आवश्यक मात्रा में गेहूँ उपलब्ध नहीं हो जाता है। इसके विपरीत गेहूँ की कीमत 775 रूपये प्रति किवंटल अर्थात क स्तर से ऊपर बढ़ने पर गेहूँ की कुल माँग की मात्रा कम हो जाती है और पूर्ति की मात्रा विक्रय नहीं हो पाती है। बढ़ी हुई कीमत पर सभी विक्रेता गेहूँ विक्रय करना चाहते हैं। प्रतिस्पद्र्धा के कारण विक्रेता कीमत कम करते है और कीमत उस स्तर तक गिरती है जब तक कि सभी विक्रेताओं द्वारा लाया गया गेहूँ विक्रय नहीं हो जाता है। अत: स्पष्ट है कि गेहूँ की कीमत 'क' स्तर से ऊपर तथा नीचे होने की दोनों ही अवस्थाओं में माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन स्थापित नहीं हो पाता है।

3.4 कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति

कृषि-उत्पादों की माँग

कृषि-क्षेत्रों से उत्पादित होने वाले उत्पाद अनेक समूहों में वर्गीकृत किये जाते है जैसे - खाधान्न, तिलहन, दलहन, रेशे वाले उत्पाद, मसाला फसलें, औषधीय पौधे, सबिजयाँ, फल, पुष्प आदि। कृषि-क्षेत्र में उत्पादित विभिन्न उत्पाद मानव एवं पशुओं की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में उपयोग लिए जाते हैं और उपयोग से विभिन्न स्तर पर सन्तोष प्राप्त होता है। विभिन्न कृषि-उत्पादों के मुख्य उपयोगों में खाने के रूप में (खाधान्न, तिलहन, दलहन, फल, सबिजयाँ, दूध एवं दूध से बने उत्पाद, मांस, अडे, शक्कर), वस्त्र के रूप में (कपास, ऊन, रेशम, चमड़ा), पशुओं के चारे एवं दाने के रूप में (खाधान्नों का भूसा एवं उपोत्पाद, खली), औषधियों के रूप में (अश्वगन्धा, इसबगोल, सफेद मूसली), मसालों के रूप में (मिर्च, जीरा, धनिया, सौंप, लोंग, इलायची), सबिजयाँ एवं फलों के रूप मे, सुगनिधत उतपाद के रूप में, सजावट के रूप में (पुष्प), लेखन सामग्री के रूप में (बाँस एवं पेड़ों के तने), शकितवर्धक के रूप में (दूध, अण्डे, औषधिय पौधे), नशीले उत्पादों (तम्बाकू, चाय, काफी, अफीम), लकड़ी का सामान (फर्नीचर, खिलौने) आदि बहुरूप में उपयोग होने से इनकी माँग निरन्तर होती है।

कृषि-उत्पादों के माँगकर्ताओं (उपभोक्ताओं) को निम्न चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है -

(1) देश-विदेश के उपभोक्ता :

कृषि-उत्पाद मानव जीवन की प्रमुख आवश्यकता की श्रेणी में आते हैं। मानव जीवन के प्रारम्भ से ही विभिन्न कृषि-उत्पादों का विभिन्न मात्रा में आवश्यकताओं की पूर्ति करने में उपभोक्ता उपयोग करते हैं। देश-विदेश के उपभोक्ताओं की कृषि-उत्पादों की माँग, उनकी उपयोग-आदतें, क्षेत्र की जलवायु, रहन-सहन का स्तर, उपभोक्ताओं की आय, उत्पादों की प्रचलित कीमतों के ऊपर निर्भर करती है। वर्तमान में देश के 1085 मिलियन मानव अपने भोजन की पूर्ति के लिए कृषि-क्षेत्र से उत्पादित विभिन्न-उत्पादों की माँग करते है।

(2) पशुपालकों द्वारा पशुओं को खिलाने हेतु :

देश के उपभोक्ता अपनी प्रत्यक्ष आवश्यकता की पूर्ति के अतिरिक्त कृषि-उत्पादों की माँग, देश के 48 करोड़ से अधिक पशुओं के भोजन की आवश्यकता की पूति के लिए करते है। पशु-पालक कृषि जिन्सों के अतिरिक्त कृषि क्षेत्र में उत्पादित उपोत्पाद का भी उपयोग करते है।

(3) व्यापारियों द्वारा :

कृषि-उत्पादों के उपभोक्ता की तृतीय श्रेणी में व्यपारी हैं जो कृषि-उत्पादों की बाजार में माँग एवं पूर्ति हेतु निरन्तर क्रय-विक्रय करते हैं। यह वर्ग कृषि-उत्पादों की माँग, इनके क्रय-विक्रय से लाभ कमाने की आकांक्षा से करता है। कृषि-उत्पादों के व्यापार में देश के लगभग 10 मिलियन से अधिक व्यकित कार्यरत है।

(4) निर्माता वर्ग :

कृषि-उत्पादों की माँग करने वाला चतुर्थ वर्ग निर्माता या संसाधन में कार्यरत व्यकित हैं। यह वर्ग कृषि-क्षेत्र में उत्पादित विभिन्न उत्पादों को कच्चे माल के रूप में परिष्करण इकाइयोंकारखानों को सतत कार्यानिवत करने के लिए विभिन्न कृषि-उत्पादों की माँग करते हैं। उदाहरण के लिए आटा मिल (गेहूँ), चावल मिल (धान), शक्कर मिल (गन्ना), कपड़ा उद्योग (कपास), तेल मिल (तिलहन), डेयरी उद्योग (दूध), कागज मिल (बाँस), औषध उद्योग, दाल एवं बेसन मिल (चना), फल एवं सब्जी परिष्करण उद्योग (फल एवं सबिजयाँ) आदि।

3.5 कृषि-उत्पाद, कृषि-उत्पादन एवं कृषि-उत्पादों की उत्पादक-फर्मो एवं कृषकों की विशेषताएँ

कृषि-उत्पादों, कृषि-उत्पादन एवं कृषि-उत्पादों के उत्पादनकार्ताओं की अपनी कुछ विशेषताओं के कारण, उनकी माँग एवं पूर्ति अन्य उत्पादों से भिन्न रूप में होती है।

कृषि-उत्पादों की विशेषताएँ -

(1) अधिकांश कृषि-उत्पादों, उत्पादित रूप में उपभोक्तओं द्वारा उपयोगित नहीं किये जाकर, विभिन्न स्तर के परिष्करण करने के उपरान्त ही उपयोग में प्रयुक्त होते है।

(2) अनेक कृषि-उत्पाद अम्बार वाले होते है जिसके कारण उन्हें संगृहीता एवं परिवहन करने में स्थान की अधिक आवश्यकता होती है।

(3) कृषि-उत्पाद शीघ्रनाशी उत्पादों की श्रेणी के होते हैं। अत: इनकी एक समय में उपभोक्ता माँग की मात्रा कम होती है एवं उपभोक्ताओं को उत्पादों को शीघ्र उपयोग करना होता है।

(4) फार्म से प्राप्त उत्पाद विभिन्न श्रेणी के होते है। अत: कृषि उत्पादों की गुणवत्ता में विभिन्नता विधमान होती है।

(5) कृषि उत्पादों का विभिन्न उत्पाद-समूह में उपयोग हेतु प्रतिस्थापन्न संभव होता है जैसे खाधान्न समूह में गेहूँ के स्थान पर जौ अथवा मक्का का उपयोग। विभिन्न प्रतिस्थापन्न होने वाले उत्पादों की माँग एवं पूर्ति में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है।

(6) कृषि-उत्पादों के रंग, गुण, स्वाद एवं पोषण तत्वों की मात्रा में विभिन्नता पाई जाती है, जिससे विभिन्न क्षेत्रों के उपभोक्ताओं की माँग में विभिन्नता होती है।

(7) अधिकांश कृषि-उत्पादों की माँग की लोच प्राय: बेलोचदर होती है।

(8) कृषि-उत्पादों की पूर्ति अनिशिचत एवं अनियमित होती है क्योंकि इनका उत्पादन प्रकृति की अनुकूलताप्रतिकूलता से प्रभावित होता है।

कृषि-उत्पादन की विशेषताएँ -

(1) कृषि-उत्पादन मौसम की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता पर निर्भर होने के कारण प्रतिवर्ष प्राप्त उत्पादन की मात्रा में भिन्नता होती है, जिससे उनकी पूर्ति प्रतिवर्ष समान नहीं होती है।

(2) कृषि-उत्पादन वर्ष में एक निशिचत समय (मौसम) में ही प्राप्त होता है। अत: उत्पादन मौसम में पूर्ति की अधिकता एवं अन्य किसी मौसम में पूर्ति कम होती है।

(3) कृषि-उत्पादनएक जैविक क्रिया है, इसके उतपादन में निशिचत समय लगता है। अत: कृषि-उत्पादन में आवश्यकतानुसार वृद्धि या कमी करना संभव नहीं है।

(4) भौगालिक कारणों से कृषि-उत्पादों का विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादन का केन्द्रीकरण पाया जाता है। इसके कारण विभिन्न क्षेत्रों में उत्पादों का अधिशेष या कम मात्रा में पाया जाना एक सामान्य प्रक्रिया है। सभी क्षेत्रों में कृषि-उत्पदों की पूर्ति समान नहीं होती है।

(5) कृषि-उत्पाद संयुक्त रूप में उत्पादित होते हैं। एक उत्पाद की पूर्ति के बढ़ने से उपोत्पाद की पूर्ति भी बढ़ जाती है जैसे गेहूँ के उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ भूसा के उत्पादन में वृद्धि होना।

(6) कृषि-उत्पादन असंख्य कृषकों के (लघु जोत से दीर्घ जोत कृषकों के) फार्म पर होता है। अत: इनकी पूर्ति का सही आकलन का कार्य करना कठिन होता है।

कृषि-उत्पादों की उत्पादक फर्मों/कृषकों की विशेषताएँ -

(1) कृषि-उत्पादकों की संख्या की अधिकता का होना, जिससे पूर्ति का सही आकलन कठिन होता है।

(2) कृषि-उत्पादकों का देश के सभी राज्योंक्षेत्रों में पाया जाना।

(3) कृषि-उत्पादों के उत्पादकों द्वारा कृषि को व्यवसाय के साथ-साथ जीविकोपार्जन के रूप में लेना।

(4) कृषि-उत्पादों के उत्पादकों द्वारा कृषि-उत्पादन में विविधीकृत कृषि को अपनाने को प्राथमिकता देना।

(5) कृषि-उत्पादों के उत्पादक, फार्म पर वाणिजियक फसलों की अपेक्षा खाधान्न फसलों को अपनाने को प्राथमिकता देते हैं।

(6) कृषि-उत्पादों के उत्पादक-कृषकों द्वारा फार्म पर कृषि में पूँजी निवेश कम करना, जिससे उत्पादन-लागत का अधिक होना।

(7) कृषकों द्वारा कृषि मे उन्नत ज्ञान को निम्न स्तर पर अपनाना, जिससे उत्पादों की उत्पादकता का स्तर कम होना।

3.6 भारत में खाद्यानों की माँग एवं पूर्ति का आकलन

खाध-समस्या के आकलन के लिए देश में खाधान्नों की माँग एवं उनकी पूर्ति का अध्ययन करना आवश्यक होता है क्योंकि इनके आकलन के आधार पर खाधान्नों एवं अन्य कृषि उत्पादों की पूर्ति बढ़ानें से सम्बनिधत नीति का निर्धारण एवं निर्धारित नीतियों के कार्यान्वयन के फलस्वरूप भावी काल में सामंजस्य स्थापित करने में सहायता मिलती है। खाधान्न एवं अन्य कृषि-उत्पाद जीवन की आवश्यकता के उत्पादों की श्रेणी में आते हैं; साथ ही कृषि-उत्पादों के क्रय पर उपभोक्ता आय का अधिकांश भाग व्यय करते है। अत: खाधान्नों का उत्पादन (पूर्ति) माँग के अनुरूप होना आवश्यक है।

खाधान्नों की भावी माँग के आकलन से तात्पर्य देश के निवासियों के लिए भोजन की आवश्यक मात्रा, पशुओं के लिए दाने की आवश्यकता एवं आगामी मौसमवर्ष में फार्म पर फसलों की बुवाई के लिए बीज की आवश्यक मात्रा के समिमलित योग से है। देश में भावी काल में खाधान्नों की माँग की मात्रा निम्न कारणों पर निर्भर करती है -

(1) देश में जनसंख्या की वृद्धि दर।

(2) देश में राष्ट्रीय आयप्रति व्यकित आय की वृद्धि दर एवं व्यकितयों की आय का बँटवारा।

(3) प्रतिस्थापन्न किये जाने वाले खाधान्नों की उपलबिध एवं उनकी कीमतें।

खाधान्नों की पूर्ति से तात्पर्य खाधान्नों की देश में आन्तरिक उत्पादन की मात्रा एवं आयातित खाधान्नों की समिमलित मात्रा से होता है। देश मे उत्पादित होने वाले खाधान्नों की भावी काल में मात्रा निम्न कारकों पर निर्भर होती है -

(1) खाधान्नों के अन्तर्गत क्षेत्रफल।

(2) उन्नत एवं अधिक उपज देने वाली किस्मों के अन्तर्गत क्षेत्रफल।

(3) सिंचित क्षेत्रफल में वृद्धि।

(4) बहुसफसलीय शस्य क्षेत्र में वृद्धि।

(5) उर्वरकों के उपभोग स्तर में वृद्धि।

3.7 सारांश

उत्पादों की माँग एवं पूर्ति को बाजार-शकितयाँ कहते हैं, जो विभिन्न समय एवं स्थान पर उत्पादों की कीमतों को प्रभावित करती हैं। इन दो प्रमुख शकितयों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी उत्पादों की कीमतों को प्रभावित करते हैं जैसे सरकार की नीति, दूसरे देशों में उत्पाद की माँग, आयात-निर्यात सिथति, असामाजिक तत्वों द्वारा उत्पादों के संग्रहण एवं क्रय-विक्रय में अपनाई गई कार्यविधि, प्रतिस्थापित करने वाले उत्पादों की कीमतें आदि। वैयकितक उत्पाद या उत्पाद-समूहों की सामूहिक माँग एवं पूर्ति की मात्रा के कारण भी कीमतों में परिवर्तन आते हैं।

3.8 अभ्यास प्रश्न

1. माँग की संकल्पनाएँ कौनसी है?

   (अ) प्रभावशाली माँग (ब) व्युत्पन्न माँग

   (स) आरक्षित माँग (द) उपरोक्त सभी

2. उत्पाद की वह मात्रा जिसे उपभोक्ता दी हुई कीमतों पर विशिष्ट समय एवं बाजार में क्रय करने के लिए तत्पर होते हैं, उत्पाद की ………………. कहलाती है।

   (अ) माँग (ब) पूर्ती

   (स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

3. उत्पाद की वह मात्रा जो निर्धारित कीमत पर विशिष्ट समय एवं बाजार में विक्रय हेतु उपलब्ध होती है, वह उस उत्पाद की .... कहलाती है।

   (अ) माँग (ब) पूर्ती

   (स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

4. देश में भावी काल में खाधान्नों की माँग की मात्रा कौनसे निम्न कारणों पर निर्भर करती है ?

   (अ) देश में जनसंख्या की वृद्धि दर

   (ब) देश में राष्ट्रीय आयप्रति व्यकित आय की वृद्धि दर एवं व्यकितयों की आय का बँटवारा

   (स) प्रतिस्थापन्न किये जाने वाले खाधान्नों की उपलबिध एवं उनकी कीमतें

   (द) उपरोक्त सभी

5. उत्पाद की कीमत दोनों सीमाओं (अधिकतम एवं न्यूनतम कीमतों) के ………….. निर्धारित होती है।

   (अ) ऊपर (ब) नीचे

   (स) मध्य (द) इनमें से कोई नहीं

3.9 संदर्भ ग्रंथ

- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
- S. S. Acharya and N. L. Agarwal. 2007. Agricultural Marketing in India. Oxford & IBH Publications, Calcutta.
- S. Subba Reddy, P. Raghu Ram, T. V. Neelakanta Sastry and I. Bhavani Devi. 2006. Agricultural Economics. Oxford & IBH Publications, Calcutta.
- K. K. Dewett. 1999. Modern Economic Theory.

इकाई – 4

कृषि-उत्पादों में श्रेणीकरण, मानकीकरण एवं गुणवत्ता-नियन्त्रण

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 श्रेणीकरण एवं मानकीकरण से तात्पर्य

4.3 श्रेणीकरण एवं मानकीकरण के लाभ

4.4 कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करने के उद्देश्य

4.5 कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण के प्रकार

4.6 कृषि-उत्पादों के श्रेणी-निर्देश

4.7 कृषि-उत्पादों में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करने के लिए अधिनियम

4.8 भारत में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण की प्रगति

4.9 उत्पादक एवं प्रसंस्करणकर्ता के स्तर पर श्रेणीकरण करने में परेशानियॉं

4.10 कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण को लोकप्रिय बनाना

4.11 निरीक्षण (Inspection)

4.12 उत्पादों पर ब्रान्ड मार्क लगाना

4.13 निर्मित-उत्पादों पर लगने वाला ISI मार्क

4.14 उपभोक्ता–संरक्षण

4.15 खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम, 2006

4.16 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए कृषि-उत्पादों का मानकीकरण

1.17 सारांश

4.18 अभ्यास प्रश्न

4.19 संदर्भ ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पड़ने के पश्चात आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे:

- श्रेणीकरण एवं मानकीकरण के लाभ
- कृषि दों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करने के उद्देश्यत्पाद-

- कृषि केउत्पाद-श्रेणीकरण एवं मानकीकरण के प्रकार
- कृषि गुणक सामान्यदों में श्रेणीकरण के लिए आवश्यउत्पा-
- कृषिदों में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करने के लिए अधिनिउत्पा-

4.1 प्रस्तावना

विपणन-प्रक्रिया का तृतीय विपणन-कार्य उत्पादों का श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करके उनकी गुणवत्ता को नियंत्रित करना है। यह विपणन-कार्य, कृषि उत्पादों को गतिशील बनाने में सहायक होता है। उत्पादों का श्रेणीकरण, उत्पाद के उत्पादकों, निर्माताओं एवं व्यापारियों द्वारा किया जाता है। श्रेणीकरण एवं मानकीकरण कार्य का उत्पादों के विपणन में महत्वपूर्ण स्थान होता है क्योंकि इसके माध्यम से उत्पादों के विक्रय हेतु सुदृढ़ आधार तैयार किया जा सकता है।

4.2 श्रेणीकरण एवं मानकीकरण से तात्पर्य

श्रेणीकरण (श्रेणीचयन) से तात्पर्य उत्पादों को विभिन्न गुणों के आधार पर तैयार किए गए मानकों के अनुसार विभिनन श्रेणियों में विभक्त करने से होता है। श्रेणीकरण करने से विभिन्न समूहों में विभाजित उत्पाद में समान गुणवत्ता वाले उत्पाद होते हैं। श्रेणीकरण करने के लिए सर्वप्रथम उत्पादों के चयनित गुण के आधार पर मानक (Standards) तैयार किए जाते हैं। तत्पश्चात् निर्धारित मानकों के अनुसार उत्पादों का श्रेणीकरण अथवा उनको विभिन्न श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। इस विधि से उत्पादों का श्रेणीकरण करने से सभी उत्पादक एवं विक्रेता सभी समय में एक ही मानक का उपयोग करते हैं। इससे समय एवं स्थान के आधार पर उत्पाद की श्रेणी में विभिन्नता नहीं होती है।

मानकीकरण से तात्पर्य श्रेणीकरण करने के लिए आधारभूत सीमाएं निर्धारित करने से होता है। मानकीकरण करने से सभी व्यक्ति, सभी स्थानों एवं सभी समय में उत्पाद की निर्धारित श्रेणी में समान गुणों वाले उत्पाद से लगाते हैं। इससे क्रेताओं एवं विक्रेताओं में उत्पाद के गुणों में विभिन्नता सम्बन्धित किसी प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न नहीं होती है।

4.3 श्रेणीकरण एवं मानकीकरण के लाभ

कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करके विक्रय करने से समाज के विभिन्न वर्गो – उत्पादकों, उपभोक्ताओं एवं विपणन-मध्यस्थों को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं-

(i) कृषि-उत्पादों को श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करके विक्रय करने से उत्पादक-कृषकों को उत्पाद के विक्रय से अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त होता है। यह अतिरिक्त लाभ विभिन्न श्रेणी के उत्पादों में कीमत विभिन्नता के कारण उत्पन्न होता है। अच्छी किस्म के उत्पाद की कीमत अधिक निर्धारित की जाती है। उच्च आय-वर्ग के उपभोक्ता अच्छी किस्म के उत्पाद अधिक कीमत पर क्रय करने तो तत्पर होते हैं।

(ii) विभिन्न आय-वर्ग के उपभोक्ता बाजार में विभिन्न श्रेणी के उत्पादों की मॉग करते हैं। कृषि-उत्पादों का श्रेणीकरण करके विक्रय करने से सभी आय-वर्ग के उपभोक्ताओं की माँग सुगमता से पूरी हो जाती है।

(iii) उत्पादों का श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करके विक्रय करने से उत्पादों का मण्डी में ढेर लगाने या क्रेताओं को नमूना दिखाने की आवश्यकता नहीं होती है। उत्पादों या विक्रय श्रेणी के अनुसार किया जाना सम्भव होता है, इससे उत्पादों के विक्रय पर होने वाली विपणन-लागत में कमी आती है।

(iv) अच्छी किस्म के उत्पादों की अधिक कीमत प्रापत होने से उत्पादकों को फार्म पर उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद उत्पन्न करने की प्रेरणा मिलती है।

(v) श्रेणीकरण करके उत्पाद को विक्रय करने से उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार होता है, क्योंकि उत्पाद के ढेर से खराब किस्म के उत्पाद पृथक कर लिए जाते हैं। इससे शेष उत्पाद के स्वत: जीवन (Self Life) में वृद्धि होती है।

(vi) श्रेणीकरण करके उत्पादों को विक्रय करने से, मण्डी में क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मध्य उत्पादों के नमूने के अनुसार नहीं होने की दलीलों के आधार पर होने वाले विवाद उत्पन्न नहीं होते हैं।

(vii) कृषि-उत्पादों में श्रेणीकरण को अपनाने से उत्पादों की विभिनन किस्मों की कीमतों सम्बन्धित सूचना का प्रसारण करना आसान होता है।

(viii) उत्पादों का श्रेणीकरण करने से भण्डारगृहों में भण्डारण में आसानी होती है। भण्डारगृह से प्राप्त रसीद में उत्पाद की श्रेणी के लिखे होने से उत्पाद का मूल्यांकन का कार्य सरल एवं सही होता है। इससे निर्धारित ऋण-राशि प्रापत करना एवं बैंकों को ऋण-स्वीकृति में सरलता होती है।

(ix) उतपादों को श्रेणीकरण के आधार पर विभिन्न कृषकों द्वारा लाए गए उत्पाद को मिश्रित करके लघु स्तर के अनेक समूहों के स्थान पर एक या दो समूहों में विभाजित कर लिया जाता है। इससे परिवहन-साधन से परिवहन करने एवं भण्डारगृह में भण्डारण करने की लागत कम आती है।

(x) श्रेणीकरण करने से क्रेताओं (उपभोक्ताओं) में सदैव अच्छी श्रेणी 'अ' या 'ब' श्रेणी के उत्पादों के उपभोग करने की जागरूकता उत्पन्न होती है।

4.4 कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करने के उद्देश्य

कृषि-उत्पादों का श्रेणीकरण एवं मानकीकरण वर्तमान में निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है-

(1) निर्यात के लिए :

उत्पादों के निर्यात की मात्रा में निरन्तर वृद्धि करने के लिए निर्यात किए जाने वाले उत्पादों के गुणों में एकरूपता बनाये रखना आवश्यक है। देश से निर्यात किए जाने वाले कृषि- उत्पादों का भारत सरकार के कृषि विपणन-सलाहकार द्वारा निर्धारित श्रेणी-निर्देशों के अनुसार श्रेणीचयन करना अनिवार्य

है। श्रेणीचयन के बिना कृषि-उत्पादों के निर्यात पर पूर्ण निषेध होता है। देश में कृषि-उत्पादों के निर्यात के लिए श्रेणीचयन सर्वप्रथम पटसन में वर्ष 1942 में शुरू किया गया था।

(2) आन्तरिक व्यापार एवं उपभोग के लिए :

इसके अन्तर्गत भी कृषि-उत्पादों का श्रेणीचयन भारत सरकार के कृषि विपणन सलाहकार द्वारा निर्धारित श्रेणी-निर्देशों के अनुसार किया जाता है। आन्तरिक व्यापार एवं उपभोग के लिए निर्धारित श्रेणीचयन के मानक, निर्यात के लिए निर्धारित मानक से भिन्न होते हैं। भारत में आन्तरिक व्यापार एवं उपभोग के लिए सर्वप्रथम घी में वर्ष 1938 में श्रेणीचयन शुरू किया गया था।

4.5 कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण के प्रकार

कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है –

(1) अधिदेश श्रेणीकरण(fixed/Mendatory Grading) :

इस विधि के अन्तर्गत उत्पादों का श्रेणीचयन करने के इच्छुक व्यक्ति को भारत सरकार के कृषि-विपणन सलाहकार द्वारा निर्धारित श्रेणी-निर्देश के अनुसार उत्पादों को श्रेणीकृत करना होता है। उत्पादों को विभिन्न श्रेणियों में इच्छानुसार विभक्त करने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं होती है। श्रेणीचयन करने वाली संस्था को भारत सरकार के विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय द्वारा पारित नियमों एवं उप-नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है।

(2) अनुज्ञात या परिवर्तित श्रेणीकरण(Permissive/Variable Grading) :

श्रेणीचयन की इस विधि के अन्तर्गत कृषकों, व्यापारियों एवं श्रेणीचयन करने के इच्छुक अन्य व्यक्तियों को इच्छानुसार उत्पादों को श्रेणियों में विभक्त करने की स्वतन्त्रता होती है। अत: विभिन्न संस्थाएँ उत्पादों को भिन्न-भिन्न प्रकार से श्रेणियों में वर्गीकृत करती हैं। इसके कारण अमुक श्रेणी के उत्पादों की किस्म में विभिन्न स्थानों एवं समयों पर अन्तर पाया जाता है। अनुज्ञात या परिवर्तित श्रेणीचयन में यदि उत्पादों के श्रेणीकरण करने में दृष्टिगत आधार (ऑख से देखकर या चखकर) काम में लिया जाता है तो इसे दृष्टिगत श्रेणीचयन (Visual Grading) तथा श्रेणीकरण का आधार नाप, तोल का पैमाना होता है, तो विधि को यान्त्रिक श्रेणीचयन (Mechanized Grading) कहते हैं।

(3) **केन्द्रीकृत एवं विकेन्द्रीकृत श्रेणीकरण (Centralised and Decentralized Grading) :**

केन्द्रीकृत श्रेणीकरण उन उत्पादों में अपनाया जाता है जिनके निरीक्षण एवं जॉच हेतु प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है और पंजीकृत करने वाले व्यक्ति को उत्पाद की जॉच के लिए प्रयोगशाला स्थापित करनी होती है अथवा सरकार द्वारा स्थापित एगमार्क प्रयोगशालाओ में उत्पाद की जॉच करवानी होती है। केन्द्रीकृत श्रेणीकरण में भारत सरकार के विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय, श्रेणीकृत उत्पादों की जॉच करके उनकी किस्म के स्तर को बनाये रखता है। केन्द्रीकृत श्रेणीकरण साधारणतया विस्तृत जॉच की आवश्यकता वाले उत्पादों – घी, तेल, शहद, आदि में अपनाया जाता है।

विकेन्द्रीकृत श्रेणीकरण उन कृषि-उत्पादों में अपनाया जाता है जिनके श्रेणीकरण करने में विस्तृत जॉच हेतु प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं होती है, जैसे – अण्डे, फल, सब्जियॉं, अनाज, दालें। इस प्रकार का श्रेणीकरण राज्य के कृषि विपणन विभाग की देख-रेख में एवं भारत सरकार के विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय के निर्देशानुसार किया जाता है।

(4) **उत्पादक-स्तर पर श्रेणीकरण (Grading at Producer's Level) :**

राज्य स्तर के विपणन निदेशालय द्वारा उत्पादकों को विपणन के पूर्व कृषि-उत्पादों को उत्पादकों के स्तर (उनके गॉंव अथवा मण्डी में) पर श्रेणीकरण के लिए भी सुविधा उपलब्ध करवाते हैं, जिससे उत्पादक-कृषकों को अपने उत्पाद की सही कीमत प्राप्त हो सके। इसके लिए अनेक नियन्त्रित मण्डियों में श्रेणीकरण इकाइयॉं स्थापित की गई हैं।

4.6 कृषि-उत्पादों के श्रेणी-निर्देश

कृषि-उत्पादों में श्रेणीकरण के लिए आवश्यक सामान्य गुण –

(i) उत्पाद के दाने उस किस्म के होने चाहिए जिसे श्रेणीकरण करना चाहते हैं, जैसे गेहूँ के श्रेणीकरण में Triticum Vulgare के दाने।

(ii) दानों का आकार, रंग, शक्ल समान होनी चाहिए।

(iii) दाने पके हुए ठोस, स्वच्छ, पूर्ण एवं घुनरहित होने चाहिए।

(iv) दाने में किसी प्रकार की अशुद्धता, अप्रिय बदबू, बदरंगता एवं अन्य उत्पादों के दानों का अपमिश्रण नहीं होना चाहिए।

(v) दाने विक्रय करने की स्थिति में होने चाहिए।

(vi) दानों में नमी की प्रतिशतता निर्धारित स्तर से अधिक नहीं होनी चाहिए जैसे गेहूँ में 10 प्रतिशत, दलहन फसलों में 12 से 14 प्रतिशत।

कृषि-उत्पादों (खाद्यान्न, तिलहन, मसाला वाले उत्पादों) में उपरोक्त सामान्य गुण विद्यमान होने पर, उनके विशिष्ट गुणों के आधार पर निर्धारित श्रेणियों में श्रेणीकृत किया जाता है।

I. गेहूँ एवं दलहनी फसलों (मूँग, मोठ, अरहर, उड़द, मसूर एवं मटर) के श्रेणी-निर्देश

श्रेणी-निर्देश	भार के रूप में अधिकतम सहनशीलता-सीमा की प्रतिशतता						
	विदेशी पदार्थ	अन्य खाद्यान्न मिश्रण	अन्य गेहूँ	क्षतियुक्त अनाज/ दलहन	कम क्षतियुक्त अनाज/ दलहन	अपरिपक्व, सिकुड़े हुए एवं खण्डित दाने	घुनग्रसित दाने
गेहूँ							
i	1.0	1.6	5.0	1.0	2.0	2.0	1.0
ii	1.0	3.0	15.0	2.0	4.0	4.0	3.0

iii	1.0	6.0	20.0	4.0	6.0	10.0	6.0
iv	1.0	8.0	20.0	5.0	10.0	10.0	10.0

दलहनी फसलें (मूँग, मोठ, अरहर, मसूर एवं मटर)

विशिष्ट श्रेणी	1.0	1.6	5.0	1.0	2.0	2.0	1.0
अच्छी श्रेणी	1.0	3.0	15.0	2.0	4.0	4.0	3.0
उत्तम श्रेणी	1.0	6.0	20.0	4.0	6.0	10.0	6.0
सामान्य श्रेणी	1.0	8.0	20.0	5.0	10.0	10.0	10.0

टिप्पणी - विदेशी पदार्थ में 0.25 प्रतिशत से अधिक खनिज पदार्थ एवं 0.10 प्रतिशत से अधिक पशुओं से प्राप्त अशुद्धियॉं नहीं होनी चाहिए।

देशी घी के श्रेणीकरण के श्रेणी-निर्देश

क्रमांक	विशिष्ट गुण	श्रेणी-निर्देश	
		विशिष्ट श्रेणी	सामान्य श्रेणी
1.	बोडिन टेस्ट (Baudouin Test)	ऋणात्मक	ऋणात्मक
2.	40ºC पर बी.आर. पाठांक	40-43	40-43
3.	आर.एम. पाठांक	28 से कम नहीं	28 से कम नहीं
4.	पोलन्सकी पाठांक	1-2	1-2
5.	नमी की प्रतिशतता	0.3 प्रतिशत से अधिक नहीं	0.3 प्रतिशत से अधिक नहीं
6.	स्वतंत्र वसा अम्ल की प्रतिशतता	1.4 प्रतिशत से अधिक नहीं	3.0 प्रतिशत से अधिक नहीं

अण्डों का श्रेणीकरण करने के श्रेणी-निर्देश

श्रेणी	एगमार्क लेबल का रंग	मुर्गी के अण्डे का न्यूनतम भार (ग्राम)	सामान्य गुण
विशिष्ट	सफेद	56	1. अण्डे किसी भी विधि द्वारा परिरक्षा किये

'ए'	लाल	49	हुए नहीं होने चाहिए। 2. अण्डे धब्बे एवं दाग-रहित होने चाहिए। 3. अण्डों का योग मध्य में होना चाहिए। 4. अण्डे ठोस होने चाहिए। 5. अण्डे पारदर्शी होने चाहिए। 6. अण्डे में हवा का घेरा 3/8" से कम होना चाहिए।
'बी'	नीला	42	
'सी'	पीला	35	

II. फलों को श्रेणीकरण करने के श्रेणी-निर्देश

(अ) सन्तरे

श्रेणी	एगमार्क लेबल का रंग	न्यूनतम आकार (इंच में)	सामान्य गुण
विशिष्ट	सफेद	3.50	1. सन्तरे अच्छे पके हुए होने चाहिए जिससे वे परिवहन में खराब न होने पाएँ। 2. सन्तरों का रंग किस्म के अनुसार होना चाहिए, लेकिन हरा रंग नहीं होने चाहिए। 3. सन्तरों के ऊपर झुर्रियाँ पड़ी हुई नहीं होनी चाहिए। 4. सन्तरे कटाव, कीड़े व बीमारी लगे हुए नहीं होने चाहिए। 5. सन्तरों के वर्गीकरण में 10 प्रतिशत तक उस श्रेणी से नीचे की श्रेणी के सन्तरे होने की छूट होती है।
I	लाल	3.00	
II	नीला	2.75	
III	पीला	2.50	
IV	हरा	2.25	

(आ) सेव

श्रेणी	एगमार्क लेबल का रंग	फल की परिमाप (व्यास) इंच में	सामान्य गुण
1. सुपर विशिष्ट	सफेद	3.0	1. फल पके हुए एवं ठोस होने चाहिए। 2. फल दाग रहित, क्षतिग्रस्ता रहित एवं बनावट में कृत्रिमता रहित होने चाहिए।
2. फैन्सी श्रेणी I	लाल	2.75	
3. फैन्सी श्रेणी II	नीला	2.50	
4. फैन्सी श्रेणी III	पीला	2.25	

4.7 कृषि-उत्पादों में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण करने के लिए अधिनियम

कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण के लिए भारत सरकार ने सर्वप्रथम कृषि-उपज (श्रेणीकरण एवं चिह्नांकन) अधिनियम, 1937 [The Agricultural Produce (Grading And Marking) Act, 1937] पारित किया। शुरू में 19 कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण के लिए श्रेणियॉ निर्धारित की गई थी। वर्ष 1943 में उपर्युक्त अधिनियम में संशोधन किया गया, जिससे अन्य कृषि-उत्पाद भी इसमें सम्मिलित किए जा सकें। वर्तमान में 184 कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण के लिए श्रेणी-निर्देश बनाये जा चुके हैं।

एगमार्क (AGMARK)

भारत सरकार के कृषि विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय के अनुसार श्रेणीकृत उत्पादों के बक्सों, टोकरियों, टीन अथवा ड्रमों पर एगमार्क (AGMARK) लेबल अंकित किया जाता है। एगमार्क लेबल के रंग विशिष्ट श्रेणी के उत्पादों के लिए सफेद, 'ए' श्रेणी के लिए लाल, 'बी' श्रेणी के लिए नीला, 'सी' श्रेणी के लिए पीला एवं 'डीद्ध श्रेणी के लिए हरे रंग का होता है।

प्रत्येक एगमार्क लेबल पर उत्पाद के ढेर की संख्या (Lot Number), पैकिंग-तिथि एवं मान्यता समापन तिथि (Expiry Date) अंकित की जाती है। पैकेट पर व्यापारिक ब्राण्ड नाम भी अंकित किया जा सकता है।

4.8 भारत में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण की प्रगति

भारत में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण वर्तमान में निम्न स्तर पर किया जाता है –

(i) कृषि-उत्पादों के विदेशों में निर्यात हेतु अधिदेश श्रेणीकरण,

(ii) देश में व्यापार हेतु अनुज्ञात श्रेणीकरण, एवं

(iii) उत्पादक स्तर पर मण्डी में विपणन हेतु श्रेणीकरण

उपभोक्ताओं द्वारा श्रेणीचयन किए गए कृषि-उत्पादों को क्रय में प्राथमिकता नहीं देना

उपभोक्ता क्रय करते समय श्रेणीचयन किए गए उत्पादों को निम्न कारणों से प्राथमिकता नहीं देते हैं, इसके कारण श्रेणीकरण किए गए उत्पादों का उपभोक्ताओं में प्रचलन बहुत कम हुआ है –

(i) निर्धारित श्रेणी-निर्देशों को उपभोक्ता समझ नहीं पाते हैं।

(ii) एगमार्क लेबल उत्पाद पर अंकित नहीं करके, उत्पाद के आवरण पर अंकित किया जाता है जिससे उपभोक्ता को उत्पाद के निर्धारित श्रेणी के अनुसार होने का विश्वास नहीं होता है।

(iii) उपभोग के उत्पादों पर 'सी' अथवा 'डी' श्रेणी का एगमार्क लेबल अंकित होने से उपभोक्ताओं में मानसिक धारणा बन जाती है कि उत्पाद उपभोग के लिए उत्तम नहीं है।

(iv) कृषि-उत्पादों में विनाशशीलता के गुण के होने से, श्रेणीचयन के उपरान्त जॉच के समय उत्पाद निर्धारित स्तर के अनुसार नहीं पाए जाते हैं, जिससे उपभोक्ताओं को श्रेणीचयन में पूर्ण विश्वास नहीं होता है।

(v) अनेक कृषि-उत्पादों पर, जिनका संवेष्टन-रहित ही विक्रय होता है, श्रेणीकरण का विवरण देना सम्भव नहीं होता है, जैसे – मांस।

(vi) साधारणतया उत्पादों के श्रेणीचयन के लिए श्रेणी-निर्देश थोक एवं खुदरा विक्रेताओं के उपयोग के लिए ही निर्धारित किए जाते हैं। ये श्रेणी-निर्देश उपभोक्ताओं की आवश्यकता के अनुसार नहीं बनाये जाते हैं।

(vii) ग्रामीण एवं शहर से दूरस्थ स्थानों पर एगमार्क श्रेणीकृत उत्पादों का उपलब्ध नहीं होना।

(viii) एगमार्क श्रेणीकृत उत्पादों की कीमतों के अधिक होने की धारणा।

(ix) एगमार्क श्रेणीकृत कृषि-उत्पादों का प्रचार-प्रसार कम होना।

4.9 उत्पादक एवं प्रसंस्करणकर्ता के स्तर पर श्रेणीकरण करने में परेशानियाँ

विक्रेता (उत्पादक एवं परिस्करणकर्ता) भी कृषि-उत्पादों को एगमार्क युक्त श्रेणीकरण करने में इच्छुक नहीं होते हैं। इसके अपनाने में उत्पादक-स्तर पर होने वाली परेशानियाँ निम्न हैं –

(i) उत्पादित कृषि-उत्पाद गुणों में समान नहीं होते हैं। उनके गुणों में बहुत सी विभिन्नता होती है, जिससे श्रेणीचयन विधि में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।

(ii) विभिन्न वर्ग के उपभोक्ता, कृषि-उत्पादों में विभिन्न गुण चाहते हैं। कुछ उपभोक्ता उनमें पकने के गुण देखते हैं, जबकि दूसरे स्वाद, पौष्टिकता अथवा बाहरी बनावट एवं संवेष्टन देखते हैं। अत: सभी उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने वाली एक श्रेणी के अनुसार उत्पादों का श्रेणीकरण करने का कार्य कठिन होता है।

(iii) विभिन्न कृषि-उत्पादों के श्रेणीचयन के लिए विभिन्न आधार प्रयुक्त किये जाते हैं, जैसे – रासायनिक जॉच, भौतिक गुण, संवेदक आदि। संवेदक (Sensory) मापदण्डों के आधार पर श्रेणीचयन में उत्पादों के गुणों में बहुत भिन्नता पाई जाती है जिससे श्रेणीचयन करने के निर्धारित उद्देश्य प्राप्त नहीं होते हैं।

(iv) कृषि-उत्पाद विनाशशील श्रेणी के होते हैं। अत: श्रेणीचयन करने के उपरान्त विक्रय-समय में उनके गुणों का ह्रास होता है, जिससे उत्पादों में विपणन के समय एवं श्रेणीचयन करने के समय के गुणों में समानता नहीं पाई जाती है।

(v) श्रेणीचयन के लिए निर्धारित न्यूनतम व उच्चतम स्तर में बहुत अन्तर होता है, जिसके कारण ही एक श्रेणी के उत्पाद के गुणों में अन्तर पाया जाता है।

(vi) उत्पाद की श्रेणी एवं कीमत में उचित सम्बन्ध का अभाव होता है, जिसके कारण श्रेणीचयनकर्ताओं को अनेक समय उत्पादों की अच्छी श्रेणी से अधिक कीमत प्राप्त नहीं होती है।

4.10 कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण को लोकप्रिय बनाना

उपभोक्ता एवं उत्पादक/ प्रसंस्करणकर्ता स्तर पर कृषि-उत्पादों के श्रेणीकरण में उपरोक्त परेशानियों के होते हुए भी, इससे समाज के विभिन्न वर्गों को प्राप्त हो रहे लाभ के कारण, कृषि-उत्पादों

में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण को लोकप्रिय बनायाजाना आवश्यक है। इससे उत्पादों के विपणन में सुगमता के साथ उपभोक्ताओं को उत्तम किस्म के उत्पादों की प्राप्ति एवं उत्पादक-कृषकों एवं प्रसंस्करणकर्ताओं को अतिरिक्त लाभ प्राप्त होना सुनिश्चित है।

कृषि-उत्पादों में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण का विकास

कृषि-उत्पादों में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण को बढ़ावा देने के लिए निम्न सुझाव प्रेषित हैं –

(i) उपभोक्ताओं को श्रेणीकृत उत्पादों पर लगे एगमार्क लेबल के गुणों के विषय में जानकारी देकर।

(ii) उत्पादकों को श्रेणीकृत करके उत्पादों के विक्रय करने से प्राप्त होने वाले लाभ के विषय में शिक्षित करके।

(iii) उत्पादों के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण में उत्पादक, उपभोक्ता एवं विक्रेता को होने वाली समस्याओं को हल करने के उपाय अपनाकर।

(iv) मानव-जीवन के लिए अति आवश्यक उत्पादों जिनमें अपमिश्रण की सम्भावना अधिक होती है, उनके अनिवार्य रूप में श्रेणीकरण एवं मानकीकरण अपनाने का कानूनन प्रावधान करके।

4.11 निरीक्षण (Inspection)

उत्पादकों एवं विक्रेताओं द्वारा उत्पादों के किए गए श्रेणीकरण में उपभोक्ताओं का विश्वास बनाए रखने के लिए श्रेणीकृत उत्पादों का निरन्तर निरीक्षण करना आवश्यक है अन्यथा उत्पादक अथवा विक्रेता अधिक लाभ कमाने की इच्छा के कारण निम्न श्रेणी के उत्पादों को श्रेणीकृत करके उच्च श्रेणी के उत्पाद में मिश्रित कर सकते हैं। इस प्रक्रिया के कारण उपभोक्ताओं का श्रेणीकृत उत्पादों से विश्वास उठने की आशंका बन जाती है। उपभोक्ताओं की यह आशंका उत्पाद के घरेलू बाजार एवं निर्यात-व्यापार को हानि पहुँचा सकती है। अत: इस भ्रान्ति के निवारण के लिए सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षणकर्ता, श्रेणीकृत उत्पाद का नमूना विभिन्न स्थानों से लेकर प्रयोगशाला में जॉच हेतु भिजवाते हैं। प्रयोगशाला से आए जॉच-परिणाम के आधार पर विक्रेता पर आवश्यकता होने पर कार्यवाही की जाती है। उत्पादों के नमूने निरीक्षणकर्ता उत्पाद के परिस्करण किए जाने वाले स्थान, विक्रेता के गोदाम, बाजार में विक्रेताओं के व्यापार-स्थल एवं निर्यात से पूर्व बन्दरगाह से लेते हैं।

प्रयोगशाला-जॉच में उत्पादों को निर्धारित श्रेणियों के अनुसार नहीं पाये जाने की अवस्था में निरीक्षक, श्रेणीचयनकर्ता का श्रेणीचयन करने का प्रमाण-पत्र रद्द कर देने की सिफारिश कृषि-विपणन सलाहकार, भारत सरकार को कर देता है। प्रमाण पत्र रद्द होने पर श्रेणीचयनकर्ता को शेष बचे हुए एगमार्क लेबल एवं श्रेणीचयन सम्बन्धित सामग्री, कृषि-विपणन सलाहकार को वापस लौटाने होते हैं। निरीक्षक उत्पाद की किस्म में सन्देह होने पर उत्पाद के नमूने जॉच के लिए केन्द्रीय प्रयोगशाला में भिजवाता है। केन्द्रीय प्रयोगशाला से प्राप्त जॉच का परिणाम श्रेणीचयन करने वाले व्यापारी/उत्पादक को मान्य होता है।

उत्पादों का निरन्तर निरीक्षण होने से उपभोक्ताओं का उत्पाद की श्रेणी में विश्वास बना रहता है एवं उत्पादक/विक्रेता निम्न श्रेणी के उत्पादों को श्रेणीकरण करने अपमिश्रण करने का साहस अनुज्ञापत्र

निरस्त होने के भय से नहीं कर पाते हैं। इससे उत्पादों की गुणवत्ता नियंत्रित (Quality Control) रहती है। देश के विभिन्न राज्यों एवं केन्द्र-शासित प्रदेशों में मार्च, 2004 में 1045 श्रेणीचयन प्रयोगशालाएँ स्वीकृत स्तर पर कार्यरत थी। इनमें से 108 राज्य-स्तरीय, 4 सहकारी स्तर, 67 निजी क्षेत्र की वाणिज्यिक एवं 866 संवेष्टनकर्ताओं की प्रयोगशालाएँ थी। राज्यवार सर्वाधिक श्रेणीचयन प्रयोगशालाएँ राजस्थान, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, महाराष्ट्र एवं पंजाब राज्यमें कार्यरत हैं।

4.12 उत्पादों पर ब्रान्ड मार्क लगाना (Branding)

विपणन-प्रक्रिया में विक्रेताओं द्वारा उत्पाद को एक संक्षिप्त नाम दिया जाता है, जिसके आधार पर इसे बाजार में उपलब्ध प्रतिस्पर्धात्मक अन्य विक्रेताओं के उत्पाद से पहचान किया जा सके। उत्पाद का यह संक्षिप्त ब्रान्ड नाम विभिन्न आधार पर दिया जाता है। जैसे निर्माता (टाटा, बिरला), क्षेत्रीय प्रसिद्ध स्थान (ताजमहल, लाल किला), स्थानीय महत्व का नाम (श्याम, सालासर, गणगौर) आदि। अत: ब्रान्ड एक नाम, चिह्न, शब्द है जो उत्पादों पर अंकित करके प्रतिस्पर्धा में उपलब्ध अन्य उत्पादों से पृथक पहचान बनाता है, जिससे क्रेता उस नाम से पूर्ण परिचित होकर, उसके क्रय को प्राथमिकता देते हैं। उत्पादों के ब्रान्ड नाम से विक्रय में आसानी के साथ ब्रान्ड नाम की लोकप्रियता होने पर कम्पनी द्वारा भावी काल में उत्पादित दूसरे उत्पाद भी बाजार में सुगमता से विक्रय हो जाते हैं।

उत्पादों पर ब्रान्ड नाम अंकित करने की विधि को ब्रांडिंग कहते हैं। उत्पादों का ब्रान्डिंग करना, उत्पाद के निर्माताओं एवं विक्रेताओं की व्यापार-वृद्धि में लाभदायक होता है। उपभोक्ताओं को उत्पाद पर ब्रान्डिंग यह विश्वास दिलाता है कि उन्हें प्राप्त उत्पाद अच्छी एवं मानक किस्म का है। निर्माता को उत्पाद के व्यापार में वृद्धि करने एवं भावी काल में उस उत्पाद एवं निर्माता द्वारा उत्पादित अन्य उत्पादों के व्यापार बढ़ाने में भी ब्रान्डिंग लाभप्रद होता है।

ब्रान्ड नाम के आधार पर उत्पादों के प्रचार-प्रसार में सुविधा होती है। जैसे अमूल दुग्ध पाउडर एवं मक्खन, हीमा मटर, किसान ब्रान्ड के फलों एवं सब्जियों के प्रसंस्करित उत्पाद, मारूती कार, गोदरेज साबुन एवं पाउडर, लाल इमली एवं रेमन्ड ब्रान्ड गर्म कपड़ा आदि। ब्रान्ड नाम को वैधानिक सुरक्षा भी प्रदान कराई जाती है, जिससे उस ब्रान्ड के उत्पाद का पंजीकरण करवा दिया जाता है। इसके होने पर दूसरे निर्माता उस ब्रान्ड नाम से उत्पाद बाजार में विक्रय नहीं कर सकते हैं।

4.13 निर्मित-उत्पादों पर लगने वाला ISI मार्क

विदेशों में उत्पादों के निर्यात के स्तर को बनाये रखने एवं देश के उपभोक्ताओं को अच्छे गुणों एवं किस्म के निर्मित उत्पादों को उपलब्ध कराने के लिए वर्ष 1947 में देश में भारतीय मानक संस्था की स्थापना की गई थी। यह संस्था विभिन्न उत्पादों के गुणों और किस्में का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करके उनके लिए मानक तैयार करती है और निर्धारित मानक के अनुसार उत्पादों के निर्मित होने पर मानकीकरण का प्रमाण-पत्र प्रदान करती है, जो उपभोक्ताओं में उत्पाद के गुणों के प्रति विश्वास उत्पन्न करता है।

भारतीय मानक संस्था के कार्य

भारतीय मानक संस्था के प्रमुख कार्य निम्न हैं –

(i) विभिन्न निर्मित-उत्पादों के लिए मानक तैयार करना।

(ii) विभिन्न उत्पादों के उत्पादन एवं संसाधन में कम लागत वाली विधि का आविष्कार करना एवं उसका निर्माताओं को उपयोग करने के लिए सुझाव देना।

(iii) निर्मित उत्पादों का प्रयोगशाला में जॉच करके उनपर मानक का प्रमाण अंकित करना।

(iv) विदेशों से आयातित उत्पादों के स्थान पर स्वदेशी उत्पादों के उपयोग के सफल परीक्षण द्वारा उपभोक्ताओं में विश्वास उत्पन्न करना एवं देश में आयातित वस्तुओं की मात्रा कम करना।

(v) मानक निर्धारित करने वाले विदेशी संगठनों से सम्पर्क स्थापित करना एवं उनके मानकों एवं भारतीय मानक संस्था द्वारा निर्धारित मानकों में समन्वय स्थापित करना।

(vi) मानक-निर्धारण के लिए कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना।

(vii) मानक संस्था द्वारा निर्दिष्ट एवं स्वीकृत मानकों वाले उत्पादों की समय-समय पर विशेषज्ञों द्वारा जॉच करना एवं निर्धारित मानक के अनुसार उत्पाद के नहीं होने पर मानकीकरण का अनुज्ञा-पत्र रद्द करना।

भारतीय मानक-संस्था का कार्य-संचालन

भारतीय मानक संस्था, नौ परिषदों के माध्यम से उपर्युक्त कार्य सम्पन्न करती है। ये परिषदें कृषि तथा खाद्यान्न –उत्पादन, रसायन, सिविल इंजीनियरी, उपभोक्ता तथा चिकित्सा उपकरण, इलेक्ट्रो-तकनीकी, मैकेनिकल इंजीनियर तथा संवेष्टन आदि विषयों से सम्बन्धित वस्तुओं के लिए मानक तैयार करने के कार्य की देखभाल करती हैं। मानक संस्था का कार्य तकनीकी समितियों, उप-समितियों तथा पैनल के द्वारा होता है। मानकीकृत वस्तुओं पर ISI का मार्का अंकित किया जाता है। केन्द्र सरकार, राज्य सरकार एवं स्थानीय संस्थाऐं उपभोक्ता वस्तुओं को क्रय करने में मानक संस्था द्वारा प्रमाणित वस्तुओं को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि इन वस्तुओं की बनावट, इनमें विभिन्न अवयवों की मात्रा आदि भारतीय मानक संस्था द्वारा निर्मित मानक के अनुसार होती है। भारतीय मानक संस्था ने अब तक 1500 से अधिक मानक तैयार किए हैं जिनमें से 90 प्रतिशत से अधिक मानक विभिन्न संस्थाओं ने अपना लिए हैं। भारतीय मानक संस्था ने मानक प्रमाणीकरण हेतु 8000 अनुज्ञा-पत्र जारी किए हैं।

एक अप्रेल, 1987 से इस संस्था का नाम भारतीय मानक संस्था (Indian Standards Institution) के स्थान पर भारतीय मानक ब्यूरो (Bureau of Indian Standards) कर दिया गया है, जिससे इसके कार्यक्षेत्र में पहले की अपेक्षा विस्तार हुआ है। यह भारतीय मानक ब्यूरो कानून, 1986 द्वारा स्थापित किया गया है।

खाद्य-पदार्थों पर लगाए जाने वाले अन्य चिन्ह/मार्क

(I) इको मार्क (ECO MARK)

भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने फरवरी 1991 में पर्यावरण मित्र उत्पादों को चिन्हित करने की इको मार्क योजना प्रारम्भ की है।

(II) एफ.पी.ओ. मार्क (F.P.O. MARK)

एफ.पी.ओ. का पूरा नाम फ्रूट प्रोडक्ट्स आर्डर (Fruits Products Order) है। फल एवं सब्जियों के परिष्कृत उत्पादों पर एफ.पी.ओ. (F.P.O.) चिह्न अंकित करने की योजना खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार ने प्रारम्भ की है। यह मार्क फलों एवं सब्जियों के परिष्कृत उत्पादों की गुणवत्ता एवं उनके साफ-सुधरी स्थिति में उत्पादन होने की प्रक्रिया को दर्शाता है।

(III) शाकाहारी एवं मांसाहारी खाद्य उत्पाद्व का चिह्न/मार्क

भारत सरकार ने खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1955 (Prevention of Food Adulteration Act, 1955) में 20 जून, 2002 को संशोधन करके खाद्य पदार्थों के पैकेट पर मांसाहारी अथवा शाकाहारी होने से सम्बन्धित चिह्न दर्शाना अनिवार्य कर दिया है।

(IV) हासेप (HACCP)

हासेप HACCP का अर्थ Hazard Analysis and Critical Control Point है।

4.14 उपभोक्ता–संरक्षण (Consumer Protection)

देश में उपभोक्ता आन्दोलन का जन्म 1960 के दशक में हुआ है इस आन्दोलन का उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना तथा उन्हें अपने कर्त्तव्य तथा अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना है। उपभोक्ता आन्दोलन को सुदृढ़ बनाने के लिए विभिन्न संगठन तथा स्वैच्छिक संस्थाएँ इस क्षेत्र में प्रभावी कार्य कर रही हैं। उनमें से प्रमुख संस्थाएँ निम्न हैं –

(i) Consumer Guidance Society of India, Mumbai, Established in 1966.
(ii) Consumer Council, Vishakhapatnam, Established in 1970.
(iii) Consumer Education and Research Centre, Ahmedabad.
(iv) Consumer Action Forum, Kolkata.
(v) Karnataka Consumers Service Society, Bangalore.
(vi) ग्राहक पंचायत – मुम्बई एवं पुणे।

उपभोक्ताओं को सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करने हेतु सरकार ने निम्न अधिनियम पारित किए हैं –

(i) The Prevention of Food Adulteration Act, 1954.
(ii) The Standards of Weights and Measures Act, 1976.
(iii) The Prevention of Black Marketing and Maintenance of Supply Act.
(iv) The Packaged Commodities (Regulation) Order, 1975.
(v) Drugs and Magic Remedies (Objectionable Advertisement) Act.
(vi) The Indian Sale of Goods Act, 1930.
(vii) The Trade and Merchandise Marking Act, 1958.
(viii) The Drugs and Cosmetic Act, 1940.

(ix) The Agricultural Produce (Grading and Marking) Act, 1937.

(x) The Emblem and Names (Prevention of Improper Use) Act, 1950.

(xi) The Consumer Protection Act, 1986.

(xii) The Indian Standards Institution (Certification Marks) Act, 1952.

(xiii) The Bureau of Indian Standards Act, 1986.

(xiv) The Essential Commodities Act, 1955.

(xv) The Fruit Products Order, 1955.

(xvi) The Sugar Control Order, 1956.

(xvii) The Export (Quality Control and Inspection) Act, 1963.

(xviii) The Vegetable Oil Product (Control) Order, 1967.

(xix) The Monopolies and Restrictive Trade Practices Act, 1969.

(xx) The Meat Food Products Order, 1973.

(xxi) The Cold Storage Order, 1964 & 1980.

(xxii) The Milk and Milk Products Order, 1992.

4.15 खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम् 2006

खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम सरकार द्वारा अगस्त, 2006 में पारित किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य वर्तमान में खाद्य सम्बन्धित विभिन्न अधिनियमों को सम्मिलित करते हुए एक कानून बनाना, भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक आथोरिटी की स्थापना करना जो खाद्य उत्पादों के निर्माण, संग्रहण, वितरण, विक्रय, आयात को नियंत्रित करने एवं मानव-उपभोग के लिए सुरक्षित एवं सम्पूर्ण खाद्य उपलब्ध कराना है। अधिनियम के खण्ड 97 के अनुसार सरकार द्वारा खाद्य सुरक्षा से सम्बन्धित पूर्व में पारित निम्न अधिनियम/आदेश, इस अधिनियम के लागू होने से निरस्त हो जायेंगे –

(i) खाद्य अपमिश्रण उन्मूलन अधिनियम, 1954

(ii) फल उत्पाद आदेश, 1955

(iii) मांस खाद्य उत्पाद्द आदेश, 1973

(iv) वानस्पतिक तेल उत्पाद (नियन्9णऋ आदेश, 1998

(v) दूध एवं दुग्ध उत्पाद आदेश, 1992

(vi) आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत खाद्य उत्पाद से सम्बन्धित अन्य आदेश।

4.16 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए कृषि-उत्पादों का मानकीकरण

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषि-उत्पादों का मानकीकरण करना भी व्यापार के बढ़ाने के लिए आवश्यक है। वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कृषि-उत्पादों के मानकीकरण करने का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय मानकीकरण संस्था (International Organization for Standardization – ISO) एवं कोडक्स अलीमेन्टेरियस आयोग (Codex Alimentarious Commission – CAC) कर रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय मानकीकरण संस्था की स्थापना 25 फरवरी, 1947 को विभिन्न उत्पादों के मानक निर्धारित करने एवं उन्हें विश्व-व्यापार में उत्पादों के विनिमय को बढ़ावा देने हेतु की गई थी।

4.17 सारांश

श्रेणीकरण (श्रेणीचयन) से तात्पर्य उत्पादों को विभिन्न गुणों के आधार पर तैयार किए गए मानकों के अनुसार विभिनन श्रेणियों में विभक्त करने से होता है। मानकीकरण से तात्पर्य श्रेणीकरण करने के लिए आधारभूत सीमाएं निर्धारित करने से होता है। मानकीकरण करने से सभी व्यक्ति, सभी स्थानों एवं सभी समय में उत्पाद की निर्धारित श्रेणी में समान गुणों वाले उत्पाद से लगाते हैं। इससे क्रेताओं एवं विक्रेताओं में उत्पाद के गुणों में विभिन्नता सम्बन्धित किसी प्रकार की भ्रान्ति उत्पन्न नहीं होती है।

4.18 अभ्यास प्रश्न

1. खाद्य सुरक्षा एवं मानक अधिनियम सरकार द्वारा कब पारित किया गया ?

   (अ) 2006 (ब) 2000

   (स) 1995 (द) 1990

2. उपभोक्ताओं को सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करने हेतु सरकार ने कौनसे अधिनियम पारित किए हैं ?

   (अ) The Prevention of Food Adulteration Act, 1954.

   (ब) The Standards of Weights and Measures Act, 1976.

   (स) The Prevention of Black Marketing and Maintenance of Supply Act.

   (द) उपरोक्त सभी

3. उत्पादों को विभिन्न गुणों के आधार पर तैयार किए गए मानकों के अनुसार विभिनन श्रेणियों में विभक्त करने को क्या कहते हैं ?

   (अ) श्रेणीकरण (श्रेणीचयन) (ब) माननीकरण

   (स) दोनों (द) इनमें से कोई नही

4. उत्पादक एवं प्रसंस्करणकर्ता के स्तर पर श्रेणीकरण करने में क्या परेशानियॉं आती हैं ?
5. श्रेणीकरण एवं मानकीकरण के क्या लाभ हैं ?

4.19 संदर्भ ग्रंथ

- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- S. S. Acharya and N. L. Agarwal. 2007. Agricultural Marketing in India. Oxford & IBH Publications, Calcutta.

- S. Subba Reddy, P. Raghu Ram, T. V. Neelakanta Sastry and I. Bhavani Devi. 2006. Agricultural Economics. Oxford & IBH Publications, Calcutta.
- K. K. Dewett. 1999. Modern Economic Theory. Oxford & IBH Publications, Calcutta.

इकाई - 5

कृषि-उत्पादों का संग्रहण एवं भण्डारण कार्य

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5 .2 कृषि-उत्पादों के संग्रहण

5.3 ग्रामीण क्षेत्रों में गोदाम निर्माण के उद्देश्य

5.4 कृषि-उत्पादों का भण्डारण

5.5 भण्डार गृह निर्मित करने/संचालन के लिए अनुज्ञापत्र

5.6 भण्डारगृहों में उपलब्ध सुविधाओं का कृषकों द्वारा उपयोग नहीं करने के कारण

5.7 कृषि उत्पादों की संग्रहण एवं भण्डारण लागत ज्ञात करना

5.8 खाद्यान्नों की संग्रहण एवं भण्डारण-लागत को कम करने की विधियाँ

5.9 केन्द्रीय भण्डारगृह निगम

5.10 राज्य-भण्डारगृह निगम

5.11 शीत-संग्रहण

5.12 सारांश

5.13 अभ्यास प्रश्न

5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

कृषि-उत्पादों का संग्रहण एवं भण्डारण से आप क्या समझते है ? कृषि-उत्पादों के संग्रहण में प्रमुख जोखिम। भारत में खाद्यान्नों का संग्रहण का तरीका। ग्रामीण क्षेत्रों में गोदाम निर्माण के उद्देश्य एवं संग्रहण-सुविधा। भण्डारगृह की कार्य प्रणाली, कार्य एवं वर्गीकरण की जानकारी। भण्डार गृह निर्मित करने या संचालन के लिए अनुज्ञापत्र की जानकारी। भण्डारगृहों में उपलब्ध संग्रहण सुविधाओं का कृषकों द्वारा उपयोग नहीं करने के प्रमुख कारण। कृषि-उत्पादों की संग्रहण एंव भण्डारण-लागत ज्ञात करना एवं खाद्यान्नों की संग्रहण एवं भण्डारण-लागत को कम करने की विधियाँ। केन्द्रीय भण्डारगृह निगम, राज्य-भण्डारगृह निगम व शीत-संग्रहण की विस्तत जानकारी।

5.1 प्रस्तावना

संग्रहण एवं भण्डारण विपणन-प्रक्रिया के प्रमुख भौतिक कार्य है। संग्रहण कार्य का मुख्य उद्देश्य उत्पादों की अधिशेष-पूर्ति की मात्रा को उत्पादन-काल से उपभोग-काल तक सुरक्षित रखना है। संगहण-

कार्य से उत्पादों में समय-उपयोगिता का सृजन होता है। संग्रहण कार्य द्वाराउतपादों की विपण-व्यवस्था को वर्षभर सतत कार्यरत रखना सम्भव होता है, जिससे बाजार विस्तृत होकर उत्पादों की उपलब्धि निरन्तर बनी रहती है। इसकी आवश्यकता कृषि-क्षेत्र के उत्पादों में सर्वाधिक होती है। प्रथम तो कृषि-उत्पादों का उत्पादन अनियमित एवं मौसम विशेषमें होता है एवं उनकी पूर्ति वर्ष भर करने के लिए संग्रहण अवश्यम्भावी क्रिया है। द्वितीय कृषि-उत्पादों में उत्पादन के उपरान्त उपयोग काल तक जैविक क्रिया होती रहती है। इसके कारण उनकी स्वत: जीवन में होने वाली हानि से रक्षा करने के लिए भी उचित विधि से संग्रहण करना आवश्यक होता है।

कृषि-क्षेत्र में सर्वाधिक उत्पादित होने वाले उत्पाद खाद्यान्न हैं। इनकी 50 से 60 प्रतिशत मात्रा कृषकों द्वारा उपभोग, बीज, पशुओं को खिलाने, विभिन्न कार्यो के लिए दस्तकारों एवं श्रमिकों को भुगतान करने के उद्देश्य से संगृहीत करके घर पर रखी जाती है एवं शेष मात्रा बाजार में विक्रीत की जाती है। कृषक द्वारा घर पर एवं व्यापारियों द्वारा अपने गोदामों में संग्रहण किए अनाज में कीड़ो, चूहों, नमी, तापक्रम, कवक से खाद्यान्नों की गुणवत्ता एवं पौष्टिकता में गिरावट आती है। इस प्रकार संग्रहण-काल में प्रतिव'’र लाखों टन खाद्यान्नों की हानि होती है। सर्वेक्षणें के अनुसार खाद्यान्नों में कटाई के उपरान्त उनके उपयोग-काल तक संग्रहण में कुल हानि 8 से 10 प्रतिशत तक होती है। इस मात्रात्मक एवं गुणवत्ता हानि को, जो मूल्य के रूप में करोड़ों रूपए की होती है, संग्रहण-काल में उचित उपाय अपनाकर बचाया जा सकता है।

5.2 कृषि-उत्पादों के संग्रहण

कृषि-उत्पादों के संग्रहण की आवश्यकता क्यों :- विपणन-प्रक्रिया में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों के उद्देश्यों की पूर्ति के अतिरिक्त, अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी कृषि-उत्पादों का संग्रहण करना होता है। कृषि-उत्पादों का संग्रहण करना निम्न कारणों से भी आवश्यक है -

- कृषि - उत्पादों का उत्पादन मौसम-विशेष में होता है लेकिन उनकी माँग वर्ष भर निरन्तर बनी रहती है। अत: उपभोक्ताओं की निरन्तर उत्पन्न होने वाली माँग की पूर्ति के लिए कृषि-उत्पादों का संग्रहण करना आवश्यक होता है, जैसे - आलू, खाद्यान्न, दालें, तिलहन।
- अनेक कृषि - उत्पादों की माँग का विशेष मौसम अथवा समय होता है। मौसम विशेष में अत्यधिक मांग की पूर्ति के लिए कृषि-उत्पदों को उतपादन-काल से उनकी माँग उत्पन्न होने के समय तक संग्रहण करना होता है। जैसे - ऊन।
- उत्पादों की किस्म में सुधार करने के लिए भी कृषि-उतपादों का संग्रहण करना आवश्यक होता है, जैसे - पनीर, चावल, तम्बाकू, आचार।
- कच्चे फलों को पकाने एवं उपभोग योग्य बनाने के लिए अनेक कृषि-उत्पादों का संग्रहण करना आवश्यक होता है। जैसे - केले, आम।

- विपणन-कार्यों जैसे -परिवहन, संवेष्टन, परिष्करण (प्रोसेसिंग), तुलाई, क्रय-विक्रय आदि करने के लिए कृषि-उत्पादों का संग्रहण करना होता है, क्योंकि प्रत्येक विपणन-कार्य को करने में समय लगता है।
- उत्पादन-मौसम में कृषि-उत्पादों की अधिक पूर्ति के कारण कीमतों में गिरावट से होने वाली हानि को कम करने के लिए भी संग्रहण करना आवश्यक है। उत्पादन-मौसम के कुछ समय उपरान्त विक्रय करने से उत्पादकों को कृषि-उत्पादों की अधिक कीमत प्राप्त होती है।
- वर्तमान में अनेक उत्पादों का उत्पादन भविष्य में उत्पन्न होने वाली माँग के आधार पर किया जाता है। अत: उपभोक्ताओं की मांग उत्पन्न होने के काल तक ऐसे कृषि-उत्पादों का संग्रहण करना आवश्यक है जैसे - औषधिय पौधे।
- कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति में समन्वय स्थापित करने के लिए भी संग्रहण करना आवश्यक है।

कृषि-उत्पादों के संग्रहण में जोखिम :- कृषि-उत्पादों के संग्रहण काल में होने वाली जोखिम को तीन वर्ग में विभाजित किया जाता है -

(अ) **उत्पादों की मात्रात्मक कमी से हानि :-** संग्रहणकाल में उत्पाद की मात्रा में कमी होने से संग्रहणकर्ता को भारी राशि में हानि होती है। कृषि-उत्पादों में मात्रात्मक हानि चूहों, कीडे-मकोडे, बीमारियो, पशु-पक्षी, चोरी, आग एवं अन्य प्राकृतिक विपदाओं के कारण होती है। संग्रहण के समय उत्पाद में अधिक नमी के होने से भी उत्पाद की मात्रा में कमी होने से हानि होती है।

(ब) **उत्पादों की गुणात्मक गिरावट से हानि :-** संग्रहणकर्ता को दूसरी मुख्य हानि संग्रहण-काल में उत्पाद की गुणवत्ता में कमी होने से होती है। कृषि-उतपादों में गुणात्मक हानि उनके अन्दर जैविक एवं रासायनिक क्रियाओं के होने, कीडे-मकोडे के आक्रमण, वातावरण में अधिक नमी एवं तापक्रम के होने आदि कारणों से होती है। इनके होने से उत्पादों के रंग में खराबी (मीर्च, खनिया), अम्लता उत्पन्न होना (मक्खन), अधिक पकावट होना (फल एवं सब्जी), खुशबु की समाप्ति (धनिया, जीरा), अनाज के दाने आटे में बदलना (गेहू जौ), तेल की मात्रा में कमी होना (तिलहन उत्पाद) आदि से हानि होती है।

(स) **उत्पाद की कीमतों में गिरावट से हानि :-** उत्पादों का संग्रहण कीमतों के बढ़ने की आशा में कृषक एवं व्यापारी वर्ग करता है। अनेक समय कीमतें बढ़ने के स्थान पर गिर जाती है। इससे संग्रहणकर्ता को दोहरे स्तर की हानि होती है। प्रथम तो कीमतों में कमी से एवं द्वितीय संग्रहण-लागत के भुगतान के कारण होती है।

भारत में खाद्यान्नों का संग्रहण :- भारत में खाद्यान्नों का संग्रहण आदिकाल से किया जाता रहा है। कृषक उत्पादित खाद्यान्नों का एक भाग (60-70 प्रतिशत) अपने यहाँ मिट्टी एवं गोबर से लिपे हुए कच्चे खड्डों एवं घरों में ढेर के रूप में करते थे। व्यापारी खाद्यान्नों का संग्रहण घरों या आसपास के क्षेत्र में

कमरे किराये पर लेकर उनमें ढेर के रूप में अथवा जूट की बोरियों में भरकर करते थे। खाद्यान्नों के संग्रहण की इन विधियों (भूमि के अन्दर खड्डे में अथवा भूमि के ऊपर कमरों में) में खाद्यान्नों की काफी मात्रा का नुकसान नमी, तापक्रम, चूहों, कीडे-मकोड़ों एवं पशु-पक्षियों के कारण होता था। संग्रहण के ये सभी गृह एवं सुविधाएँ वैज्ञानिक आधार पर नहीं बने होते थे। साथ ही इनमें कीटनाशक दवाई का छिड़काव करना भी सम्भव नहीं होता था। अत: संग्रहण सुविधाओं में सुधार करने क आवश्यकता सभी स्तर पर महसूस की गई, जिसके कारण घरेलु स्तर के संग्रहण-साधनों एवं वाणिज्यिक स्तर पर संग्रहण-सुविधाओं में सुधार प्रयास किए गए;

संग्रहण-सुविधाओं के लघु स्तर (घरेलु उपयोग) पर अनेक सुधारे हुए ढाँचों का विकास किया गया है, जिनमें पी.ए.यू. कोठी, पूसा कोठी, हापुड़ टेका मुख्य हैं। इन साधनों की संग्रहण क्षमता 3 से 5 क्विंटल होती है। इसी प्रकार वाणिज्यिक स्तर (वृहत स्तर) पर संग्रहण के लिए वैज्ञानिक आधार पर संग्रहणगृहों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। इनमें से मुख्य निम्न है -

- कुरसी की ऊँचाई तक ढकी हुई अथवा केप-संग्रहण - इसमें भूमि पर पक्का आंगन (प्लेटफार्म) बनाकर उसमें 14’’ की ऊँचाई तक पक्के सीमेन्ट-कंक्रीट के खम्भे निर्मित किए जाते हैं। निर्मित प्लेटफार्म पर अनाज की बोरियों को संग्रहीत किया जाता है एवं उन्हें त्रिपाल लगार पूरी तरह ढक दिया जाता है। इसकी लगत बहुत कम आती है एव अल्प समय में संग्रहण् सुविध तैयार हो जाती है।
- साइलो :- यह भूमि के ऊपर कोठीनुमा ढाँचा होता है, जिसमें खाद्यान्नों को यान्त्रिक साधनों से ऊप उठाया जाता है एवं साइलो में भरा जाता है। खाद्यान्नों की निकासी के लिए साइलों में नीचे छोटे दरवाजे होते हैं। इनकी संग्रहण क्षमता 25,000 टन तक होती है। पंजाब राज्य की मण्डियों एवं देश के अन्य क्षेत्रों में भारतीय खाद्य निगम ने खाद्यान्नों के संग्रहण के लिए साइलों निर्मित किए है।
- भण्डार-गृह :- भण्डार-गृह वैज्ञानिक विधि के भूमि पर निर्मित विशिष्टसंग्रहणगृह हैं, जिनमें उत्पादों के संग्रहण में होने वाली हानि से रक्षा करने के लिए सभी सुविधाएँ होती है।

ग्रामीण-क्षेत्रों में संग्रहण-सुविधा :-संग्रहण एवं भण्डारण की विभिन्न क्षेत्रों-शहरों, कस्बों एवं ग्रामीण क्षेत्रों मे उपलब्ध सुविधाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों, पहाड़ी क्षेत्रों, आदिवासी बहुल क्षेत्रों एवं रेगिस्तानी क्षेत्रों में इन सुविधाओं की उपलब्धि का स्तर बहुत कम है। इन क्षेत्रों में कृषकों को उतपादित-उत्पादों को खुले स्थानों अथवा घरों में संग्रहण करना होता है, जिससे इनमें मात्रात्मक एवं गुणात्मक हानि अधिक होती है। संग्रहण-सुविधा के अभाव में कृषक उत्पादों को फसल की कटाई के उपरान्त कम कीमतों पर मजबूरन विक्रय करते हैं। अत: ग्रामीण क्षेत्रों में गोदामें का निर्माण करना आवश्क है।

5.6 ग्रामीण क्षेत्रों में गोदाम निर्माण के उद्देश्य

ग्रामीण क्षेत्रों में गोदामों का निर्माण करने के प्रमुख उद्देश्य निम्न है -

- कृषि-उत्पादों, प्रसंस्करित कृषि-उत्पादों, उपभोक्ता वस्तुओं के संग्रहण करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों की भण्डारण-आवश्यकता को पूरा करने के लिए आवश्यक सुविधाओं सहित वैज्ञानिक भण्डारण क्षमता का सृजन करना।
- कृषकों द्वारा फसल की कटाई के उपरान्त उत्पादित उत्पादों को संग्रहण सुविध के अभाव में मजबूरन विक्रय प्रथा को ....
- घरों में कृषि-उत्पादों को संग्रहण करने में होने वाली मात्रात्मक एवं गुणवत्ता हानि में कमी करना एवं संगृहीत खाद्यान्नों के गुणवत्ता के स्तर को बनाए रखना।
- उत्पादन-मौसम में सरकारी, सहकारी एवं निगमों द्वारा निर्मित गोदामों में संग्रहण आवश्यकता में कमी करना।
- उत्पादन-मौसम में परिवहन साधनों की आवश्यकता को नियंत्रित करना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डारगृहों का निर्माण करके रोजगार उपलब्धि में वृद्धि करना।
- ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डारगृहों का निर्माण करके देश में कृषि-विपणन की आधारभूत सुविधाओं को सशक्त करना।
- प्रतिभूति वित्तीय एवं विपणन ऋण सुविधा उपलब्ध कराना जिससे फसल की कटाई के उपरान्त कम कीमतों पर खाद्यान्नों को विक्रय करने की प्रवृत्ति में कमी करना।
- उर्वरकों एवं अन्य उत्पादन-साधनों को ग्रामीण गोदामों में संगृहीत करके आवश्यकता के समय कृषकों को उपलब्ध कराके उत्पादन वृद्धि में सहयोग करना।
- भारतीय खाद्य निगम द्वारा गाँवों में खाद्यान्नों की जाने वाली खरीद प्रणाली सरल बनाना।

5.7 कृषि-उत्पादों का भण्डारण

भण्डारगृह-प्रणाली :-

भण्डार से तात्पर्य वैज्ञानिक विधि से निर्मित संग्रहण के स्थान से है, जिनमें उत्पादों के संग्रहण-काल में मात्रात्मक एवं गुणात्मक श्रेणी के नुकसानों से रक्षा की सुविधा उपलब्ध होती है। इन भण्डारगृहों में चूहों, कीड़े-मकोड़ों, नमी, तापक्रम, चोरी एवं पशु-पक्षी से उत्पाद को सुरक्षित रखा जाता है। भण्डारगृहों में उत्पाद की संग्रहण-काल में सुरक्षा के अतिरिक्त अन्य सुविधाएँ भी संग्रहकर्ताओं को उपलब्ध होती है। इनमें संगृहीत उत्पाद की प्रतिभूति के आधार पर बैंक से ऋण सुविधा भी उपलब्ध होती है।

भण्डारगृह के कार्य :-

- कृषकों, व्यपारियों, उपभोक्ताओं एवं अन्य व्यक्तियों को उत्पादों के संग्रहण की सुविधा उपलब्ध करवाना।
- आग, चोरी एवं अन्य कारणों से होने वाल नुकसानों से संग्रहणकर्ता की रक्षा करना।

- वैज्ञानिक विधि से उत्पादों का संग्रहण करना, जिससे संग्रहण-काल में उत्पादों की गुणवत्ता एवं मात्रा नष्ट नहीं होने पाए।
- खाद्यान्नों की पूर्ति की अधिकता एवं अन्य कारणों से कीमतों में होने वाली गिरावट को कम करना।
- भण्डारगृह स्वामी, भण्डारगृहों में उत्पाद संगृहीत करने वाले कृषकों एवं व्यापारियों को उतपाद कीबाजार में प्रचलित कीमतों की सूचना-सुविधा भी प्रदान करते है। इससे संग्रहणकर्ताओं को उत्पाद के विक्रय का निर्णय लेने में सहायता मिलती है।
- उत्पादों के संग्रहणकर्ताओं को जमा किए गए उत्पाद की कीमत की 50 से 75 प्रतिशत राशि ऋण के रूप में वाणिज्यिक बैंकों से कम ब्याज दर पर उपलब्ध करवाना।

भण्डारगृहों का वर्गीकरण :- भण्डार-गृहों को निम्न दो आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है -

(अ) संगृहीत किए जाने वाले उत्पादों के अनुसार **:-** संगृहीत किए जाने वाले उत्पादों के अनुसार भण्डारगृह तीन प्रकार के होते है -

- साधारण भण्डारगृह - यह भण्डारगृह, खाद्यान्नों, तिलहन, उर्वरक आदि ठोस उत्पादों के भण्डारण के लिए होते हैं क्योंकि इनकी बनावट में कोई विशिष्टता नहीं होती है।
- विशिष्ट उत्पादों के भण्डारगृह - यह भण्डारगृह विशिष्ट उत्पादों जैसे कपास, ऊन, तरल पदार्थ, पैट्रोलियम आदि उत्पादों के भण्डारण के लिए बनाए जाते हैं। इन भण्डारगृहों की बनावट उत्पाद की आवश्यकता के अनुसार भिन्न होती है।
- प्रशीतनयुक्त भण्डारगृह - यह भण्डारगृह शीघ्रनाशी उत्पादों जैसे फल, पुष्प, अण्डे, मांस आदि के संग्रहण के लिए होते हैं। प्रशीतनयुक्त भण्डारगृहों में तापक्रम नियन्त्रण की व्यवस्था होती है। साधारण प्रशीतनयुक्त भण्डारगृहों का तापक्रम 30 से 50° F या इससे कम रखा जाता है, जिससे अधिक तापक्रम में उतपाद खराब नहीं हों।

(ब) स्वामित्व के अनुसार **:-** स्वामित्व के अनुसार भण्डारगृह 5 प्रकार के होते है -

- व्यक्तिगत भण्डारगृह - थोक व्यापारी, आढ़तिया, परि’कर्ता एवं अन्य व्यक्ति उत्पादों के संग्रहण के लिए भण्डारगृह निर्माण करवाते हैं और स्वयं के अथवा कृषकों एवं छोटे व्यपारियों के यहाँ से विक्रय के लिए आए हुए उत्पादों को संगृहीत करते है। भण्डारगृह के स्थान उपलब्धस होने पर वे अन्य व्यक्तियों को किराये पर भी संग्रहण सुविध उपलब्ध करवाते हैं।
- सरकारी भण्डारगृह - इन भण्डारगृहों पर सहकारी समितियों का स्वामित्व होता है। सहकारी भण्डारगृहों में संग्रहण के लिए सहकारी समितियों के सदस्यों के उत्पादों को प्राथमिकता दी जाती है।

- सरकारी भण्डारगृह - इन भण्डारगृहों पर स्वामित्व सरकार का होता है जिनमें उत्पादक, व्यापारी एवं उपभोक्ता निर्धारित शुल्क भुगतान करके उत्पादों को संगृहीत कर सकते है।
- घरेलु भण्डारगृह - यह उपभोक्ताओं के स्वयं के स्वामित्व के भण्डारगृह होते है जिनमें घरेलु वस्तुओं का संग्रहण किया जाता है।
- अनुबद्ध भण्डारगृह - अनुबद्ध भण्डारगृह, विदेशों से आयातित वस्तुओं को शुल्क भुगतान के समय तक के लिए सुरक्षित रूप से संगृहीत किये जाने के लिए हवाई अड्डों एवं बन्दरगाहों के समीप निर्मित किये जाते हैं। वस्तुओं के आयात करने वाले को संग्रहणकाल के लिए इन भण्डारगृहों के स्वामित्व को किराया देना होता है।

5.8 भण्डार गृह निर्मित करने/संचालन के लिए अनुज्ञापत्र

कृषि उपज (विकास एवं भण्डारण व्यवस्था) निगम अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति, संस्था, कम्पनी को उत्पादों के संग्रहण हेतु भण्डारगृह निर्मित करने के लिए अनुज्ञापत्र लेना अनिवार्य है। भण्डारगृह निर्मित करने के लिए लाइसेन्स लेने वाले व्यक्ति/संस्था/कम्पनी को राज्य भण्डारगृह निगम को प्रार्थना-पत्र देना होता है, जिसमें भण्डारगृह स्थापित करने का स्थान, क्षमता, वित्तीय स्थिति आदि का विवरण देना अनिवार्य है। भण्डारगृह स्थापित करने की आवश्यक फीस भी जमा करानी होती है। लाइसेन्स प्राप्त होने के पश्चात् ही भण्डारगृह के स्वामी, कृषकों, व्यापारियों एवं अन्य संस्थाओं से भण्डारण के लिए उत्पादों को जमा कर सकते है।

भण्डारगृहों की कार्य-प्रणाली :-

केन्द्रीय एवं राज्य भण्डारगृहों में कृषक, व्यापारी, सरकार एवं कम्पनियाँ अपने उत्पादों को संग्रहण कर सकते है। भण्डारगृहों में संग्रहण-सुविध उपलब्ध कराने में कृषकों को प्राथमिकता दी जाती है एवं संग्रहण-लागत में रियायत भी दी जाती है। इन भण्डारगृहों में सभी प्रकार के खाद्यान्नों, तिलहन, कपास, चीनी, उर्वरक आदि उत्पादों के संग्रहण की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। भण्डारगृहों के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए प्रत्येक भण्डारगृह के लिए सलाहकार समिति होती है, जिसमें विभिन्न संस्थाओं जैसे सहकारी समिति, बैंक, व्यापारियों, कृषकों एवं सरकार के प्रतिनिधि होते है। भण्डारगृहों के प्रबन्ध के लिए प्रशिक्षित एवं प्राविधिक व्यक्ति कार्यरत होते है। प्रत्येक भण्डारगृह में प्रबन्धक, सहायक एवं प्राविधिक सहायक कार्यरत होते है। प्राविधिक सहायक का मुख्य कार्य खाद्यान्नों एवं संगृहीत उत्पादों को बीमारियों एवं कीड़ों-मकोडों, कवक, आदि से रक्षा करने के लिए रसायनों का समय-समय पर उपयोग करना है।

भण्डारगृह में संग्रहण के लिए आए खाद्यान्नों एवं अन्य कृषि-उत्पादों की सर्वप्रथम नमी, बीमारियों एवं कीड़ो से ग्रसित होने की जाँच की जाती है। उत्पाद के संग्रहण योग्य पाए जाने पर, उन्हें अच्छी, उचित एवं औसत श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। उत्पाद के औसत श्रेणी से नीचे होने पर

भण्डारण के लिए अनुपयुक्त बताकर संग्रहण करने के लिए इन्कार कर दिया जाता है। विभिन्न व्यक्तियों के उत्पादों को संग्रहण के लिए भण्डारगृह में पृथक-पृथक रखा जाता है।

भण्डारगृह प्रबन्धक द्वारा संगृहीत उत्पाद की पूर्ण विवरण सहित संग्रहणकर्ता को रसीद दी जाती है। उत्पाद का स्वामी, भण्डारगृह से प्राप्त रसीद को राष्ट्रीयकृत बैंक में गिरवी रखकर ऋण प्राप्त करके वित्त आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है। उत्पादों के संग्रहणकर्ता को भण्डारगृह में उत्पादों के संग्रहण के लिए उत्पाद की किस्म, उत्पाद की मात्रा एवं उपयोग-समय के आधार पर निर्धारित दर से संग्रहण-लागत देनी होती है।

5.6 भण्डारगृहों में उपलब्ध सुविधाओं का कृषकों द्वारा उपयोग नहीं करने के कारण

वर्तमान में उपलब्ध भण्डारगृह क्षमता का सर्वाधिक उपयोग सरकार एवं सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाएँ जैसे - भारतीय खाद्य निगम, भातीय उर्वरक निगम एवं रा’ट्रीय बीज निगम करते हैं। कृषक वर्ग उपलब्ध राज्य भण्डारगृहों की क्षमता का 2 प्रतिशत से भी कम उपयोग करते है। इसके प्रमुख कारण निम्न हैं -

- कृषकों को भण्डारगृहों द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं का ज्ञान न होना।
- अनेक मण्डियों एवं गाँवों में भण्डारगृह सुविधा उपलब्ध नहीं होना, जिससे कृषकों को शहर के भण्डारगृहों तक खाद्यान्न ले जाने में अधिक परिवहन लागत देनी होती है।
- खाद्यान्नों को भण्डारगृहों में जमा कराने एवं वापस लेने में होने वाली असुविधाएँ।
- भण्डारगृहों में सभी उत्पदों के लिए समुचित संग्रहण-सुविधा का अभाव होना।
- भण्डारगृहों से प्राप्त रसीद के आधार पर ऋण प्राप्ति की सुविधा राष्ट्रीकृत बैंकों तक ही सीमित होना। अनेक स्थानों पर राष्ट्रीकृत बैंकों की शाखाओं के नहीं होने से कृषकों को ऋण-प्राप्ति में परेशानी होती है।
- भण्डारगृहों में उत्पादों की संग्रहण-लागत का अधिक होना।
- लघु जोत कृषकों के यहाँ उत्पादों की विक्रेय-अधिशेष की मात्रा संग्रहण के लिए नहीं होना।
- भण्डारगृहों से संगृहीत उत्पादों को पुन: प्राप्त करने के लिए कृषकों के पास आवश्यक वित्त-राशि का नहीं होना, जिससे बैंकों से भण्डारगृह से प्राप्त रसीद को पुन: प्राप्त करने में होने वाली परेशानी।

5.7 कृषि उत्पादों की संग्रहण एवं भण्डारण लागत ज्ञात करना

संग्रहण एवं भण्डारण-लागत का ज्ञान कृषकों एवं अन्य संग्रहण सेवा के उपयोगकर्ताओं एवं भण्डार-व्यवस्था संचालन के लिए आवश्यक होती है। संग्रहण सुविधा के उपयोगकर्ता, संग्रहण लागत के आधार पर उत्पादों में संग्रहण क्रिया के करने पर प्राप्त लाभ का आंकलन एवं भण्डारगृह स्वामी

भण्डारगृह के संचालन से प्राप्त लाभ की राशि, दूसरे व्यक्ति/संस्था द्वारा उत्पादों की संग्रहण लागत दर को नियत करने एवं उन्हें संसाधन करने के निर्णय लेने में सहायक होती है।

(अ) **संग्रहण सुविधा के उपयोगकर्ता के लिए :-**संग्रहण सुविधा के उपयोगकर्ता द्वारा संग्रहण-लागत ज्ञात करने में निम्न लागत मद सम्मिलित करने होते है -

- भण्डारगृह-स्वामी को देय संग्रहण-लागत राशि।
- उत्पादन/व्यवस्था स्थल से संग्र्रहण स्थल तक की परिवहन लागत।
- संगृहीत उत्पादों के मूल्य राशि पर संग्रहण समय का ब्याज एवं ऋण प्राप्ति में हुई व्यय की राशि।
- संगृहीत समय में उत्पादों के सूखने, खराब होने, संकुचन आदि के कारण उत्पाद की मात्रा एवं गुणों में हुए नुकसान की राशि।
- संगृहीत उत्पाद एवं ताजा उत्पाद की कीमत में अन्तर की राशि।
- संगृहीत समय में कीमतों में गिरावट होने से होने वाली हानि की राशि अथवा उसके लिए देय बीमा राशि अथवा अन्य लागत।

(ब) **भण्डारण-व्यवस्थापक के लिए** :- भण्डारण-व्यवस्था के संचालक को होने वाली भण्डारण-लागत दो प्रकार की होती है -

- स्थायी-लागत :- इसमें भण्डारगृह के निर्माण एवं मशीनों पर हुए पुंजी-निवेश की राशि का ब्याज, मूल्य ह्रास, टूट-फूट, मरम्मत की देय राशि, स्शायी कार्यकर्ताओं की वेतन-राशि, बीमा किश्त, सरकार को दिए जाने वाले कर, विद्युत व्यय सम्मिलित होती है।
- परिवर्तनशील-लागत :- इसमें निरन्तर होने वाली लागतें जैसे - आकस्मिक श्रमिकों का वेतन, उपयोग के कारण होने वाले मूल्य ह्रास की राशि, कीटनाशी दवाइयों की लागत, कार्यशील पूंजी का ब्याज, विद्युत एवं पानी की लागत एवं आकस्मिक व्यय सम्मिलित होते है।

5.9 खाद्यान्नों की संग्रहण एवं भण्डारण-लागत को कम करने की विधियाँ

सामान्यतया खाद्यान्नों एवं अन्य कृषि-उत्पादों की संग्रहण लागत अधिक आती है, जिसे कम करना आवश्यक है। निम्न विधियों को अपनाकर खाद्यान्नों की संग्रहण एवं भण्डारण-लागत को कम किया जा सकता है -

- उत्पादों के संग्रहण एवं भण्डारण-काल में होने वाली मात्रा एवं गुणवत्ता ह्रास में कमी करके-कीटाणुनाशक दवाईयों के उपयोग, तापक्रम में होने वाले परिर्वनों को कम करके तथा आर्द्रता नियन्त्रण द्वारा उत्पादों की मात्रा एवं गुणों में होने वाली क्षति को कम किया जा सकता है। भारतीय खाद्यान्न संग्रहण प्रबन्धन एवं असुन्धान संस्था, हापुड़

(उत्तर प्रदेश) निरन्तर अनुसन्धान द्वारा संग्रहण विधियों में सुधार ला रही है, ताकि खाद्यान्नों के संग्रहण काल में उत्पाद की मात्रा एवं गुणों में होने वाली हानि से क्षति कम से कम हो।

- शिक्षा के प्रसार संगृहीत एवं ताजा उत्पादों की कीमतों में पाया जाने वाला अन्तर कम से कम हो।
- श्रमिकों की कार्य-कुशलता में वृद्धि करके संग्रहण लागत का कम करना।
- संग्रहण काल में उत्पादों की कीमतों में होने वाली गिरावअ से होने वाली हानि को संरक्षण-विधि द्वारा कम करना।
- भण्डारगृहों में खाद्यान्नों के संग्रहण के लिए प्रेरित करने के लिए कृषकों को संग्रहण-शुल्क मे विशेष छूट देना।
- भण्डारगृहों की सुविधा मण्डियों एवं गाँवों में भी उपलब्ध करवाना, जिससे उत्पादन-स्थान से भण्डारगृह तक उत्पादों को पहुँचाने में होने वाली परिवहन लागत में कमी आये।

5.9 केन्द्रीय भण्डारगृह निगम

केन्द्रीय भण्डारण निगम की स्थापना कृषि-उपज (विकास एवं भण्डारण व्यवस्था) निगम अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत वैधानिक संस्था के रूप में 2 मार्च, 1957 को हुई थी। पुन: इसकी स्थापना 18 मार्च, 1962 को नए अधिनियम भण्डारण निगम अधिनियम, 1962 के अन्तर्गत की गई। केन्द्रीय भण्डारण निगम के प्रमुख कार्य निम्न हैं -

- भारत के प्रमुख शहरों में संग्रहण के लिए गोदामों एवं भण्डारगृहों का निर्माण करना।
- व्यक्तियों, सहकारी एंव अन्य संस्थाओं की सहायता से कृषि-उत्पादों, उर्वरकों एवं अन्य घोषित वस्तुओं के संग्रहण के लिए भण्डारगृहों को संचालित करना।
- कृषि-उत्पादों, उर्वरकों एवं अन्य घोषित वस्तुओं के क्रय, विक्रय, संग्रहण एवं विपणन कार्य करने के लिए सरकार के प्रतिनिधि के रूप में काम करना।
- कृषि-उत्पादों, उर्वरकों एवं अन्य घोषित वस्तुओं के परिवहन के लिए सुविधा उपलब्ध करवाना।
- राज्य भण्डारण निगमों को हिस्सा पूंजी राशि उपलब्ध करवाना।
- भण्डारण निगम अधिनियम, 1962 के अनुसार अन्य कार्य करना।

सामान्य भण्डारण सुविधा के साथ-साथ केन्द्रीय भण्डारगृह अनेक स्थानों पर विशिष्ट प्रकार की संग्रहण एवं भण्डारण सुविधा भी उपलब्ध करा रहे हैं। इनमें से प्रमुख सुविधाएँ निम्न हैं -

- शीत-संग्रहण सुविधा।
- वातानुकूल भण्डारगृह सुविधा।

- वातावरण से नमी सोखने एवं भंगुर एवं अन्य उत्पादों जिनके संग्रहण के लिए विशिष्टप्रकार की सुविधायुक्त भण्डारण व्यवस्था की आवश्यकता हो, उसे उपलब्ध करवाना।
- सीमा शुल्क भुगतान से अनुबन्धित भण्डारणगृहों का संचालन करना एवं आयातित उत्पादों तथा निर्यात किए जाने वाले उत्पादों के लिए आयात-निर्यात करने के समय तक आवश्यक सुविधा उपलब्ध करवाना।

5.10 राज्य-भण्डारगृह निगम

विभिन्न राज्यों में राज्य भण्डारगृह निगमों की स्थापना सरकार द्वारा पारित कृषि उपज (विकास एवं भण्डारण व्यवस्था) निगम अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत की गई। वर्तमान में सभी राज्यों में राज्य स्तरीय भण्डारणगृह निगमों की स्थापना हो चुकी है। राज्य भण्डारणगृह निगम, केन्द्रीय भण्डारगृह निगम की सहयोगी सस्थाएँ हैं। राज्य भण्डारगृह निगमों की अधिकृत पँूजी 2 करोड़ रूपए से अधिक नहीं होती है। अधिकृत पूंजी में से 50 प्रतिशत पूंजी के शेयर केन्द्रीय भण्डारगृह निगम क्रय करता है। राज्य भण्डारगृह निगम, राज्य में विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानों पर भण्डारगृहों का निर्माण करते हैं, जिनमें कृषकों, व्यापारियों एवं सरकारी संस्थाओं को आवश्यक संग्रहण सुविधा उपलब्ध कराते हैं।

5.11 शीत-संग्रहण

शीत-संग्रहण से तात्पर्य

शीघ्र-विनाशशील कृषि-उत्पादों के भण्डारण के लिए शीत-संग्रहणगृहों की आवश्यकता होती है। शीत-संग्रहणगृह से तात्पर्य प्रशीतनयुक्त कक्ष से है, जिसमें शीघ्रनाशी उत्पादों के संग्रहण काल में तापक्रम नियंत्रित रखा जाता है। इससे फल, सब्जियाँ, दूध, अण्डे, मांस, मत्स्य, पुष्प आदि उत्पादों की मात्रा एवं गुणवत्ता में हानि नहीं होती है एवं उत्पाद उपभोग के लिए उपयुक्त बने रहते हैं। शीत संग्रहगृह में तापमान - 1.1°C से 10°C (30-50°F) के मध्य रखा जाता है। कुछ उत्पादों को 1.1°C से कम तापक्रम पर जमी हुई स्थिति में रखा जाता है। इस तापक्रम वाले कक्षों को फ्रीजर संग्रहगृह कहते हैं। शीत-संग्रहणगृह, शीघनाशी कृषि-उत्पादों की गुणवत्ता को सुरक्षित रखने के अतिरिक्त सम्बन्धित मौसम में हुए अधिशेष-उत्पादन को उपभोक्ताओं की आवश्यकता की माँग को पूरा करने के लिए पूर्ति की निरन्तरता बनाए रखते हैं।

शीत-संग्रहणगृह आदेश :-

शीत-संग्रहणगृह बनाने एवं उनके संचालन के लिए भरत सरकार ने आवश्यक उत्पाद अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत शीत-संग्रहणगृह आदेश, 1964 पारित किया। इस आदेश में वर्ष 1980 में संशोधन किया गया। शीत-संग्रहणगृह आदेश के अनुसार भारत में शीत-संग्रहणगृह स्थापित किए गए। आदेश के अनुसार शीत-संग्रहणगृह स्थापित करने के लिए विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय से अनुज्ञापत्र प्राप्त करना होता है। देश में शीत-संग्रहणगृह अधिनियम, 1980 को वर्ष 1997 में निरस्त कर दिया गया,

जिससे निजी क्षेत्र में अधिकधिक शीत-संगहणगृहों का निर्माण करके देश में शीत-संग्रहण क्षमता में वृद्धि की जा सके।

शीघ्रनाशी कृषि-उत्पादों के लिए शीत-श्रृंखला से तात्पर्य:-

शीत- श्रृंखला वह विधि है जिसमें शीघ्र खराब होने वाले कृषि-उत्पादों को कटाई या उत्पादन के उपरान्त खेत से लेकर उपभोक्ता तक पहुंचने तक ऐसे तापक्रम में रखना कि खाद्य उत्पाद की संरचना व गुणवत्ता अपरिवर्तित रहे। शीत-श्रृंखला व्यवस्था एक नई आविष्कार विधि है जिसमें शीघ्र विनाशशील उत्पादों का तापक्रम एवं सापेक्ष नमी को निश्चित स्तर तक बनाए रखा जाता है। तापक्रम एवं नमी को अनुकूलतम स्तर तक बनाए रखकर उत्पादों क स्वत: आयु में वृद्धि होती है, क्योंकि उस तापक्रम के स्तर पर कीटाणुओं, एन्जाइम्स एवं अन्य सूक्ष्म जीवों द्वारा होने वाली क्रियाएँ शिथिल हो जाती हैं और उत्पादों की किस्म अच्छी एवं ताजा बनी रहती हे।

शीत-श्रृंखला विधि में की जाने वाली क्रियायें **:-** शीत-श्रृंखला विधि में निम्न क्रियाएँ सम्पन्न की जाती है -

- पूर्व-ठण्डीकरण सुविधाएँ - यह सुविधाएँ उत्पाद के उत्पादन-स्थल (फार्म) पर उपलब्ध कराई जाती हैं जिससे उत्पाद के उत्पादन के बाद उसका तापक्रम नहीं बढ़ने पावे।
- प्रशीतन युक्त परिवहन-साधन द्वारा उत्पाद को मुख्य भण्डारगृहों तक पहुँचाना।
- उत्पाद का शीत-संग्रहणगृह में संग्रह करना।
- प्रशीतन युक्त परिवहन-साधनों से उत्पाद को वितरण बिन्दु के शीत संग्रहणगृह तक पहुंचाना।
- वितरण बिन्दु के शीत-संग्रहणगृहों से प्रशीतनयुक्त प्रदर्शन-बिक्री-केन्द्रों तक उत्पादन को पहुंचाना।
- उपभोक्ताओं द्वारा उत्पाद को क्रय किए जाने के पश्चात उनको उपभोक्ताअें द्वारा भावी समय में उपयोग करने के समय तक प्रशीतन यन्त्रों में सुरक्षित रखना।

5.14 सारांश

संग्रहण एवं भण्डारण विपणन-प्रक्रिया के प्रमुख भौतिक कार्य है। संग्रहण कार्य का मुख्य उद्देश्य उत्पादों की अधिशेष-पूर्ति की मात्रा को उत्पादन-काल से उपभोग-काल तक सुरक्षित रखना है। संगहण-कार्य से उत्पादों में समय-उपयोगिता का सृजन होता है। संग्रहण कार्य द्वारा उत्पादों की विपण-व्यवस्था को वर्षभर सतत कार्यरत रखना सम्भव होता है, जिससे बाजार विस्तृत होकर उत्पादों की उपलब्धि निरन्तर बनी रहती है। संग्रहण-काल में प्रतिवर्ष लाखों टन खाद्यान्नों की हानि होती है। सर्वेक्षणें के अनुसार खाद्यान्नों में कटाई के उपरान्त उनके उपयोग-काल तक संग्रहण में कुल हानि 8 से 10 प्रतिशत तक होती है। इस मात्रात्मक एवं गुणवत्ता हानि को, जो मूल्य के रूप में करोड़ों रूपए की होती है, संग्रहण-काल में उचित उपाय अपनाकर बचाया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों, पहाड़ी क्षेत्रों, आदिवासी बहुल क्षेत्रों एवं रेगिस्तानी क्षेत्रों में इन सुविधाओं की उपलब्धि का स्तर बहुत कम है। इन क्षेत्रों में कृषकों को उत्पादित-उत्पादों को खुले स्थानों अथवा घरों में संग्रहण करना होता है, जिससे इनमें मात्रात्मक एवं गुणात्मक हानि अधिक होती है। संग्रहण-सुविधा के अभाव में कृषक उत्पादों को फसल की कटाई के उपरान्त कम कीमतों पर मजबूरन विक्रय करते हैं। अत: ग्रामीण क्षेत्रों में गोदामें का निर्माण करना आवश्यक है। संग्रहण-सुविधाओं के लघु स्तर पर अनेक सुधारे हुए ढाँचों का विकास किया गया है, जिनमें पी.ए.यू. कोठी, पूसा कोठी, हापुड़ टेका मुख्य हैं। इन साधनों की संग्रहण क्षमता 3 से 5 क्विंटल होती है। इसी प्रकार वाणिज्यिक स्तर पर संग्रहण के लिए वैज्ञानिक आधार पर संग्रहणगृहों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। सामान्यतया खाद्यान्नों एवं अन्य कृषि-उत्पादों की संग्रहण लागत अधिक आती है, जिसे कम करना आवश्यक है।

5.15 अभ्यास प्रश्न

1- वैज्ञानिक विधि से निर्मित संग्रहण के स्थान जिनमें उत्पादों के संग्रहण-काल में मात्रात्मक एवं गुणात्मक श्रेणी के नुकसानों से रक्षा की सुविधा उपलब्ध होती है कहलाता है ?

(अ) भण्डारग्रह प्रणाली (ब) कार्यक्रम प्रणाली

(स) संग्रहण प्रणाली (द) उपरोक्त सभी

2- केन्द्रीय भण्डारण निगम की स्थापना कब हुई थी ?

(अ) 4 मार्च, 1958 (ब) 2 मार्च, 1957

(स) 12 मार्च, 1959 (द) उपरोक्त में से कोई नही

3- शीत संग्रहगृह में तापमान रखा जाता हैं ?

(अ) -1.1°C से 10°C (ब) -2.2°C से 13°C

(स) -1.1°C से 15°C (द) -1.1°C से 20°C

4- वह विधि जिसमें शीघ्र खराब होने वाले कृषि-उत्पादों को कटाई या उत्पादन के उपरान्त खेत से लेकर उपभोक्ता तक पहुंचने तक ऐसे तापक्रम में रखना कि खाद्य उत्पाद की संरचना व गुणवत्ता अपरिवर्तित रहे कहलाती है ?

(अ) भण्डारग्रह -श्रृंखला (ब) संग्रहण - श्रृंखला

(स) शीत- श्रृंखला (द) उपरोक्त सभी

5- शीत- श्रृंखला विधि में की जाने वाली क्रियायों की प्रथम कडी हैं ?

(अ) वितरण बिन्दु के शीत (ब) उत्पाद का शीत

(स) प्रशीतन युक्त परिवहन (द) पूर्व-ठण्डीकरण

उत्तर 1. (अ) 2. (ब)3 . (अ) 4. (स) 5. (द)

5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

- अग्रवाल, एन. एल. 2007. भारतीय कृषि का अर्थतन्त्र. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर। पेज 1-400.
- अग्रवाल, एन. एल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर। पेज 174-195.

इकाई – 6

विपणन-माध्यम, प्रत्यक्ष विपणन एवं संविदा कृषि

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 विपणन-माध्यम

6.3 विपणन-माध्यम की लम्बाई

6.4 कृषि-उत्पादों में पाए जाने वाले विपणन-माध्यम

6.5 प्रत्यक्ष विपणन के लाभ

6.6 संविदा कृषि

6.7 संविदा कृषि में समझौते

6.8 संविदा कृषि में सम्मिलित कृषि-उत्पाद

6.9 संविदा कृषि से लाभ

6.10 संविदा कृषि से हानियॉं

6.11 संविदा कृषि की सफलता के लिए आवश्यक सुझाव

6.12 सारांश

6.13 अभ्यास प्रश्न

6.14 संदर्भ ग्रंथ

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पड़ने के पश्चात आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे:

- विपणन -माध्यम
- प्रत्यक्ष विपणन के लाभ
- संविदा कृषि के लाभ एवं हानियाँ
- संविदा कृषि में समझौते
- संविदा कृषि की सफलता के लिए आवश्यक सुझाव

6.1 प्रस्तावना

कृषकों के फार्म पर उत्पादित विभिन्न कृषि-उत्पाद विपणन-प्रक्रिया में उत्पादकों से उपभोक्ताओं के मध्य विभिन्न विपणन-माध्यमों के द्वारा संचालित होते हैं। कृषि-उत्पादों की संचालन प्रक्रिया, अनेक कारकों

से प्रभावित होती है। इस अध्याय में प्रचलित विपणन-माध्यम, प्रत्यक्ष-विपणन के नवाचार विपणन-माध्यम एवं संविदा कृषि का वर्णन किया गया है।

6.2 विपणन-माध्यम

विभिन्न लेखकों ने विपणन-माध्यम को विभिन्न शब्दों से परिभाषित किया है।

मूर, जोहल एवं खुसरो – विपणन-माध्यम से तात्पर्य मध्यस्थों की उस श्रृंखला से है, जिसके द्वारा खाद्यान्नों का प्रवाह उत्पादकों से उपभोक्ताओं के मध्य होता है।

कोल्स एवं उल्ल - विपणन-माध्यम विभिन्न वैकल्पिक मार्ग हैं, जिनके माध्यम से उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक उत्पाद प्रवाहित होते हैं।

6.3 विपणन-माध्यम की लम्बाई

विपणन-माध्यम की लम्बाई से तात्पर्य उत्पाद के संचालन में उत्पादक-कृषक से उपभोक्ता तक की दूरी से है।

निम्न कारक विभिन्न उत्पादों के विपणन-माध्यम की लम्बाई को प्रभावित करते हैं –

(i) **उत्पाद की प्रकृति** – शीघ्र विनाशशील एवं अधिक अम्बार वाले कृषि-उत्पादों में विपणन-माध्यम की लम्बाई अपेक्षाकृत कम होती है जबकि खाद्यान्न, तिलहन, एवं मसालों की फसलों में विपणन-माध्यम की श्रृंखला लम्बी होती है। खाद्यान्नों की अपेक्षा धान में एवं अन्य कृषि- उत्पादों में तिलहन, एवं दलहन वाली फसलों में प्रसंस्करण कार्य को आवश्यक रूप से किए जाने के कारण विपणन-माध्यम की लम्बाई अधिक होती है।

(ii) **विक्रय की शर्तें** – वायदा बाजार मं अथवा उधार में उत्पादां के विक्रय किए जाने पर नकद भुगतान पर विक्रय की अपेक्षा विपणन-माध्यम की लम्बाई अधिक होती है।

(iii) **विक्रय का स्थान** – उत्पाद को गॉव में विक्रय करने की स्थिति में शहर की मण्डी में ले जा करके विक्रय करने की अपक्षा विपणन-माध्यम की लम्बाई अधिक होती है।

(iv) **क्रय-विक्रय का उद्देश्य** – उत्पाद का क्रय-विक्रय उपभोग हेतु किए जाने पर विपणन-माध्यम की लम्बाई कम होती है जबकि परिष्करणकर्ता एवं दूसरे क्षेत्र के व्यापारी को उत्पाद विक्रय करने पर विपणन-माध्यम की लम्बाई अधिक होती है।

(v) **उपभोक्ता की मॉग का स्वरूप -** उपभोक्ता विशेषकर विकसित दशों के उपभोक्ताओं एवं अधिक आय वाले उपभोक्ता क्षेत्रों में उत्पाद का विक्रय प्रसंस्करित रूप में एवं आकर्षक पैकेजिंग में होने से उत्पादों के विपणन-माध्यम की लम्बाई कम होती है।

(vi) **उत्पाद के उत्पादन में क्षेत्रीय विशिष्टीकरण** – उत्पाद के विशिष्टीकरण वाले क्षेत्रों में उत्पादन किए जाने पर विपणन-माध्यम की लम्बाई अधिक होती है। विविधिकृत कृषि वाले क्षेत्रां में उत्पाद के उत्पादन होने में विपणन-माध्यम की लम्बाई अपेक्षाकृत कम होती है।

(vii) **क्रय-विक्रय का समय** – उत्पाद को फसल की कटाई के उपरान्त विक्रय किए जाने पर विपणन-मध्यस्थों की अधिकता के कारण विपणन-माध्यम की लम्बाई अधिक होती है। वर्ष के अन्य समय में उत्पाद के विक्रय होने में विपणन-माध्यम की लम्बाई कम होती है।

6.4 कृषि-उत्पादों में पाए जाने वाले विपणन-माध्यम

कृषि-उत्पादों के संचालन में मुख्य तया निम्न विपणन-माध्यम पाए जाते हैं –

(i) उपभोक्ताओं को सीधे विक्रय (Direct sale to consumers)

(ii) थोक एवं खुदरा विक्रेता के द्वारा (Through wholesalers and retailers)

(iii) सरकारी एवं सहकारी संस्थाओं के द्वारा (Thropugh public and co-operative institutions)

(iv) संसाधकर्ताओं के द्वारा (Through processors)

प्रमुख कृषि-उत्पादों के चिन्हित विपणन-माध्यम निम्न प्रकार से हैं।

(1) गेहूँ : गेहूँ के विपणन में विपणन-माध्यम –

(i) कृषक – उपभोक्ता

(ii) कृषक – ग्रामीण व्यापारी – उपभोक्ता

(iii) कृषक – थोक विक्रेता – खुदरा विक्रेता – उपभोक्ता

(iv) कृषक – ग्रामीण व्यापारी – थाक विक्रेता – खुदरा विक्रेता – उपभोक्ता

(v) कृषक – थोक विक्रेता – गेहूँ की आटा मील – आटा के खुदरा विक्रेता – उपभोक्ता

(vi) कृषक – भारतीय खाद्य निगम – थोक विक्रेता अथवा आटा मिल – खुदरा विक्रेता – उपभोक्ता

(vii) कृषक – भारतीय खाद्य निगम – उचित कीमत की दुकान – उपभोक्ता

(2) तिलहन –

सभी तिलहन फसलें सर्वप्रथम संसाधित की जाती हैं क्योंकि उपभोक्ता तिलहनों को तेल के रूप में ही क्रय करते हैं। तिलहनों के विपणन में विपणन-माध्यम -

(i) उत्पादक – उपभोक्ता (तिलहन या तेल का उपभोगकर्ता)

(ii) उत्पादक – ग्रामीण व्यापारी – तेल संसाधनकर्ता (तेल मिल) – तेल का थोक व्यापारी – तेल का खुदरा विक्रेता – उपभोक्ता

(iii) उत्पादक – तिलहन थोक विक्रेता - तेल मिल – तेल का थोक व्यापारी – तेल का खुदरा विक्रेता – उपभोक्ता

(iv) उत्पादक – ग्रामीण विक्रेता – संसाधनकर्ता – उपभोक्ता

(v) उत्पादक – सरकारी संस्था – संसाधनकर्ता – तेल का थेक विक्रेता – तेल का खुदरा विक्रेता – उपभोक्ता

(3) फल एवं सब्जियॉं – फल एवं सब्जियों के विपणन में विपणन-माध्यम –

(i) उत्पादक – उपभोक्ता

(ii) उत्पादक – प्राथमिक थोक विक्रेता – खुदरा विक्रेता/हॉकर – उपभोक्ता

(iii) उत्पादक – संसाधनकर्ता – संसाधित उत्पादों के खुदरा विक्रेता – उपभोक्ता

(iv) उत्पादक – प्राथमिक थोक विक्रेता – संसाधनकर्ता

(v) उत्पादक – प्राथमिक थोक विक्रेता – द्वितीयक थोक विक्रेता – खुदरा विक्रेता/हॉकर – उपभोक्ता

(vi) उत्पादक – स्थानीय संग्रहणकर्ता – प्राथमिक थोक विक्रेता – खुदरा विक्रेता/हॉकर – उपभोक्ता

(vii) उत्पादक – कटाई-पूर्व का ठेकेदार – प्राथमिक थोक विक्रेता – खुदरा विक्रेता – उपभोक्ता

(4) दूध – दूध के विपणन में विपणन-माध्यम –

(i) उत्पादक – उपभोक्ता

(ii) उत्पादक – बेन्डर – उपभोक्ता

(iii) उत्पादक – बेन्टर – हलवाई – उपभोक्ता

(iv) उत्पादक – हलवाई – उपभोक्ता

(v) उत्पादक – दुग्ध उत्पादकों की सहकारी समिति – दूध के डेयरी प्लान्ट – उपभोक्ता

6.5 प्रत्यक्ष विपणन के लाभ

प्रत्यक्ष विपणन से उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं –

(i) विपणन-प्रक्रिया में विपणन-मध्यस्थों की समाप्ति से उत्पाद की विपणन-लागत एवं विपणन-लाभ की राशि में कमी होती है। फलस्वरूप उपभोक्ता द्वारा उत्पाद की दी जाने वाली कीमत में कमी होती है और उत्पादकों को उत्पाद की अधिक कीमत प्राप्त होती है।

(ii) विपणन-प्रक्रिया में मध्यस्थां के नहीं होने से विपणन-माध्यम की लम्बाई में कमी होती है, जिससे उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुँचने में समय कम लगता है। फलस्वरूप उत्पाद की मात्रात्मक एवं गुणात्मक हानि में कमी होती है।

(iii) उत्पादक-कृषक द्वारा उपभरोक्ताओं को उत्पाद के प्रत्यक्ष-विपणन करने से कृषकों की व्यापारिक कुशलता में वृद्धि होती है।

(iv) उपभोक्ता को स्वच्छ, ताजा एवं अच्छी गुणवत्ता वाली सब्जियॉं एवं फल प्राप्त होते हैं। प्रत्यक्ष विपणन में कृषकों को अपने कृषि-उत्पाद का श्रेणीकरण खेत पर ही करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जिससे निम्न श्रेणी के उत्पाद पशुओं को खिलाने में उपयोग लिए जा सकते हैं।

(v) प्रत्यक्ष-विपणन में कृषक, प्रसंस्करणकर्ता एवं अन्य थोक विक्रेताओं के परिवहन पर होने वाली व्यय-राशि में कमी होती है। कृषि-उत्पादों के प्रत्यक्ष-विपणन के विस्तार के फलस्वरूप दक्षिण कोरिया में उपभोक्ता कीमत में 20 से 30 प्रतिशत की कमी एवं उत्पादक को 10 से 20 प्रतिशत अधिक कीमत प्राप्त हो रही है। साथ ही बड़ी विपणन-कम्पनियों को उत्पादक क्षेत्र स सीधे उत्पाद को क्रय करने क लिए प्रोत्साहन मिलता है।

(1) अपनी मंडी (Apni Mandi)

प्रत्यक्ष-विपणन के क्षेत्र में एक नयी आविष्कारित मंडी के रूप में सर्वप्रथम पंजाब राज्य में फरवरी, 1987 में अपनी मंडी अथवा किसान-मंडी की स्थापना की गई।

अपनी मंडी/किसान मंडी की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं –

(i) कृषि-उत्पादों विशेषकर शीघ्र विनाशशील कृषि-उत्पादों जैसे फल, सब्जी, पुष्प आदि के विपणन की उत्तम व्यवस्था प्रदान करना।

(ii) उत्पादक-कृषकों एवं उपभोक्ताओं के मध्य सीधा सम्बन्ध स्थापित करना, जिससे विपणन-लागत व विपणन-लाभ में कमी आये एवं विपणन-दक्षता में वृद्धि हो।

(iii) उत्पादक-कृषकों को उत्पाद की अधिक कीमत प्राप्त कराना और उत्पाद की उपभोक्ताओं द्वारा दी जाने वाली कीमत में कमी करना।

(iv) उपभोक्ताओं को ताजा फल, सब्जी एवं पुष्प उचित कीमत पर उपलब्ध कराना।

(v) कृषकां को व्यापार-विधियों का ज्ञान प्राप्त कराना एवं उनके व्यापार की कुशलता में वृद्धि करना।

(2) रायथू बाजार (Rythu Bazars)

आन्ध्रप्रदेश राज्य के बड़े शहरों एवं कस्बों में कृषकों एवं उपभोक्ताओं में सीधे सम्पर्क द्वारा फल, सब्जी, पुष्प एवं अन्य कृषि-उत्पादों के विपणन के लिए 20 जनवरी, 1999 से रायथू बाजार स्थापित किए गए हैं।

रायथू बाजार की मुख्य विशेषताऍं –

(i) रायथू बाजार की स्थापना के लिए जिलाधीश भूमि उपलब्ध कराते हैं।

(ii) रायथू बाजार में आवश्यक स्थायी आधरभूत सुविधाऍं क्षेत्र की कृषि उपज मण्डी समिति द्वारा निर्मित की जाती हैं।

(iii) चिह्नित सब्जी की फसलों के उत्पादकों को फोटोयुक्त पहचान-पत्र प्रदान किए जाते हैं। पहचान-पत्र धारक कृषक ही रायथू बाजारों में सब्जियों का विक्रय कर सकते हैं।

(iv) राज्य सरकार सब्जियों के परिवहन के लिए बस सुविध उपलब्ध कराती है।

(v) राज्य के विभिन्न विभागों जैसे विपणन, राजस्व एवं उद्यान-विज्ञान में समन्वय स्थापित किया जाता है, जिससे फल एवं सब्जियों का सुचारू विपणन हो सके।

(vi) अन्य आवश्यक वस्तुऍं जैसे दलहन एवं खाद्य तेल उचित कीमत पर विक्रय करने की व्यवस्था भी रायथू बाजारों में होती है।

(vii) उद्यान-विज्ञान विभाग द्वारा उपभोक्ताओं को निरन्तर सब्जी उपलब्ध कराने के लिए सब्जी उत्पादन कार्यक्रम उपनाया जाता है।

(3) उजाहावर सन्डीज/संथयगल (Uzhavar Sandies/Santhaigal)

तमिलनाडु राज्य के नगरपालिका एवं पंचायत क्षेत्रों में राज्य सरकार द्वारा कृषकों के उत्पादों को उपभोक्ताओं को सीधे विक्रय करने के लिए स्थापित बाजार को उजाहावर सन्डीज या संथायगल कहते हैं।

(4) शेतकारी बाजार (Shetkari Bazar)

अन्य राज्यों द्वारा स्थापित अपने बाजार की तर्ज पर महाराष्ट्र राज्य में फल एवं सब्जियों के सीधे विपणन के लिए स्थापित बाजारों को शेतकारी बाजार कहते हैं।

(5) हडसपर सब्जी-बाजार (Hadaspar Vegetable Market)

हडसपर सब्जी-बाजार, महाराष्ट्र राज्य के पुणे जिले में सब्जियों के सीधे विपणन के लिए स्थापित मॉडल बाजार में है जो पुणे शहर से 9 किलोमीटर की दूरी पर पुणे नगर निगम द्वारा स्थापित है। बाजार में कृषक-विक्रेताओं से भूमि उपयोग के लिए नगर निगम द्वारा फीस ली जाती है।

(6) कृषुक-बाजार (Krashuk Bazars)

आन्ध्रप्रदेश के रायथू बाजार एवं तमिलनाडु राज्य के उजाहावर सन्डीज के समानान्तर उड़ीसा राज्य में वर्ष 2000-01 में कृषकों के उत्पादों को सीधे एवं खुले विपणन के लिए कृषुक बाजार स्थापित किए गए हैं। इनकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य उत्पादक-कृषकों को लाभप्रद कीमत दिलाना एवं उपभोक्ताओं को समर्थ कीमत पर उत्पाद उपलब्ध कराना है।

6.6 संविदा कृषि (Contract Farming)

देश के विभिन्न भागों में सदियों से आजीविका प्रधान फसलों तथा व्यावसायिक फसलों (गन्ना, चाय, कॉफी, कपास आदि) की विभिन्न प्रकार की संविदा कृषि व्यवस्थाऍं प्रचलित रही हैं। संविदा कृषि को कृषक – प्रसंस्करणकर्ता – समन्वय (Farmer-Processor Linkage) अथवा इनके बीच उदग्र सम्बन्धता (Vertical Coordination) भी कहते हैं।

संविदा कृषि से तात्पर्य ठेके पर कृषि करवाने से होता है। वर्तमान में संविदा कृषि से तात्पर्य कृषक एवं बड़े थोक क्रेता अथवा खद्य प्रसंस्करण कम्पनी के मध्य समझौते के आधर पर खेती करने से है। इसके अनुसार कृषक एवं कम्पनी के बीच द्विपक्षीय करार किया जाता है और कम्पनी फार्म पर निवेश, तकनीकी मार्गदर्शन एवं उत्पाद के क्रय करने के साथ फार्म के प्रबंधन में सीधे सहायता करती है। इस प्रकार की संविदा कृषि में कृषक व्यापार तथा प्रसंस्करण करने वाली एजेन्सियों/कम्पनियों के साथ किए गए पुन: खरीद करार (Nuy Back Agreement) के तहत चुनिन्दा फसलों की ही खेती करते हैं। प्रसंस्करण कम्पनियॉं तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियॉं आवश्यक उत्पादन-साधन-बीज, उर्वरक एवं अन्य उत्पादन-साधन, समय-समय पर फसल पर्यवेक्षण के साथ-साथ प्रौद्योगिकी एवं संसाधन की तकनीक की आपूर्ति भी करती हैं।

संविदा कृषि में उत्पादन से सम्बन्धित जोखिम कृषक उठाते हैं एवं उत्पाद की कीमत से सम्बन्धित जोखिम कम्पनी उठाती है। कुछ परिस्थितियों में उत्पादन से सम्बन्धित जोखिम भी कम्पनी उठाती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि संविदा कृषि का करार किस समय किया गया है।

सैद्धान्तिक रूप में संविदा कृषि में कृषक एवं कम्पनी के मध्य कृषि-व्यवसाय में पाई जाने वाली जोखिम का बंटवारा होता है।

6.7 संविदा कृषि में समझौते

संविदा कृषि में कृषकों एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों अथवा परिष्करणकर्ता के मध्य होने वाले समझौते तीन स्तर तक के होते हैं।

(i) द्विस्तरीय समझौता (Bipartite Agreement) :

इसमें कृषक एवं प्रसंस्करण कम्पनी के मध्य उत्पादों के क्रय एवं उत्पादन-साधनों व उत्पादन करने के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान प्रदान करने का समझौता होता है। कृषक को समझौते के अनुसार उत्पादन के लिए उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशी दवाइयों एवं उत्पाद के उत्पादन की नवीनतम तकनीक का ज्ञान कम्पनी द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।

(ii) त्रिस्तरीय समझौता (Tripartite Agreement) :

इस समझौते में कृषक एवं प्रसंस्करण एजेन्सी के अतिरिक्त तीसरी संस्था भी सम्मिलित होती है। यह तीसरी संस्था बैंक, आढ़तिया एवं अन्य व्यक्ति होते हैं, जो कृषक एवं प्रसंस्करण इकाई के मध्य हुए संविदा समझौते को सफलीभूत करने में आवश्यक सेवाएँ उपलब्ध कराते हैं।

(iii) बहुस्तरीय समझौता (Multipartite Agreement) :

बहुस्तरीय समझौते में कृषक एवं प्रसंस्करण एजेन्सी के अतिरिक्त एक से अधिक अन्य वैयक्तिक अथवा संस्था सम्मिलित होते हैं। उदाहरण के रूप में डाबर कम्पनी द्वारा राज्य सरकार से जंगलात भूमि को पट्टे पर लेकर जनजाति समाज के व्यक्तियों को भूमि को औषधीय पौधों को कृषित करने के लिए दिया जाना है। इसमें मुख्य समझौते में सरकार एवं जनजाति वर्ग के व्यक्ति भी वैयक्तिक रूप में सम्मिलित होते हैं।

उपरोक्त समझौतों में प्रथम वर्ग के समझौते सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

6.8 संविदा कृषि में सम्मिलित कृषि-उत्पाद

भारत में वर्तमान रूप में संविदा कृषि पिछले दशक में ही प्रारम्भ हुई है। यह मुख्य रूप में कृषि-फसलों जैसे गेहूँ, बासमती चावल, मक्का, कपास, मूँगफली, फल एवं सब्जियों (टमाटर, आलू, मिर्च, खीरा, प्याज), पुष्प (गुलाब के पुष्प) एवं औषधीय पौधों में अनेक राज्यों में प्रचलित हैं। पशु-उत्पादों (अण्डे, मुर्गी) में भी संविदा कृषि अपनाई जा रही है।

संविदा कृषि में अनेक राष्ट्रीय स्तर की कम्पनियॉं एवं बहुराष्ट्रीय स्तर की कम्पनियॉं सम्मिलित हैं। इसमें हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड, पेप्सी फूड्स, डाबर, थापर, गोदरेज, महेन्द्रा, विमको, थोमास कम्पनियों ने अनेक क्षेत्रों में विभिन्न फसलों एवं पशुओं के उत्पादों के लिए संविदा कृषि के समझौते किए हैं।

6.9 संविदा कृषि से लाभ

संविदा कृषि देश के लघु एवं मध्यम जोत कृषकों को उन्नत उत्पादन-साधनों के उपयोग करने, कृषि उत्पादन में उच्च तकनीकी अपनाने एवं पूँजी निवेश को बढ़ाकर प्रबन्धक की प्रबन्धन दक्षता में सुधार का प्रयास है। इसको अपनाने से सम्मिलित वर्गों को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं –

(i) कृषकों विशेषकर अल्प पूँजी वाले कृषकों, लघु जोत कृषकों एवं दूरस्थ स्थानों वाले कृषकों को कृषि उत्पादन करने के लिए उन्नत तकनिकी ज्ञान उपलब्ध कराकर पूँजी एवं उत्पादन-साधनों के क्रय की समस्याओं से मुक्ति दिलाती है।

(ii) कृषि प्रारम्भ करने से पूर्व ही उत्पाद के विक्रय का इकरारनामा हो जाने से कृषकों को उत्पादों के विपणन में आने वाली समस्याओं जैसे उत्पादों के परिवहन, मण्डी में विक्रय करने आदि का सामना नहीं करना होता है।

(iii) उत्पादों के पूर्व निश्चित कीमत पर विक्रय होने से कृषकों की आय में एक स्तर तक निश्चितता आती है एवं कीमतों के गिरने की स्थिति में होने वाली हानि से राहत प्राप्त होती है। आय में स्थिरता आती है।

(iv) संविदा कृषि में प्रसंस्करण इकाई से उत्पाद की किस्म एवं उत्पाद की मात्रा की पूर्ति का अग्रिम सौदा हो जाने के कारण कृषकों को उत्पादों की उत्पादन-योजना बनाने सम्बन्धित निर्णय नहीं लेने होते हैं।

(v) उत्पादक-कृषकों को अच्छी किस्म के उत्पाद उत्पन्न करने की प्रेरणा मिलती है, क्योकि प्रसंस्करण इकाई अपने निर्मित उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए अच्छी किस्म के उत्पाद (कच्चा माल) अधिक कीमत पर क्रय करती है।

(vi) उद्योग के संचालन के लिए कृषकों से उत्पाद के क्रय का अग्रिम सौदा हो जाने से, कच्चे माल की पूर्ति निरन्तर होना संभव होता है, जिससे उद्योग में सतत उत्पादन होता है एवं श्रमिकों को भी निरन्तर रोजगार उपलब्ध होता है।

6.10 संविदा कृषि से हानियॉं

संविदा-कृषि के अपनाने से निम्न हानियों के होने की आशंका निरन्तर बनी रहती है –

(i) संविदा-कृषि में कम्पनियॉं कृषकों के खेतों को उत्पादों के उत्पादन करने के लिए कुछ समयावधि के लिए पट्टे पर ले लेती हैं। फार्म पर सीमित समय में उत्पादों का अधिकाधिक उत्पादन करने के उद्देश्य से कम्पनी उर्वरकों एवं कीटनाशी दवाइयों का अधिक मात्रा में उपयोग करती हैं। इससे खेतों के बंजर होने की आशंका उत्पन्न होती है।

(ii) संविदा-कृषि में कम्पनी द्वारा कृषक के खेत को किराये पर लेने से कृषकों में बेरोजगारी बढ़ने की आशंका बन जाती है।

(iii) संविदा-कृषि में लगातार फार्म-भूमि पर एक ही फसल के उत्पादन करने (Mono Cropping) से जैव-विविधता (Bio Diversity) एवं कृषि पारिस्थितिकी के क्षतिग्रस्त होने की आशंका बनी रहती है।

(iv) संविदा कृषि मुख्यतया नकदी फसलों (फल, सब्जी, कपास, तिलहन आदि उत्पादों) में अपनाई जा रही है। इसमें निकट भविष्य में देश की खाद्य-सुरक्षा एवं कृषि-उत्पादों के उत्पादन की चक्रीय गति के प्रभावित होने की आशंका बन जाती है।

(v) संविदा-कृषि में प्रसंस्करण कम्पनी की उत्पाद के उत्पादन बढ़ाने की प्रवृत्ति के कारण फार्म पर भावीकाल में हानिकारक किस्म के बीजों (Terminator Gene seed – B_2 Cotton Seed) का प्रवेश होने की आशंका बन जाती है।

(vi) संविदा-कृषि के द्वारा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की प्रसंस्करण इकाइयों को कार्यरत रखने के लिए आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति होना तो सम्भव होता है, लेकिन इससे क्षेत्र की अन्य उत्पादों की प्रसंस्करण इकाइयों के लिए आवश्यक कच्चे माल की उपलब्धता में कमी होने की सम्भावना बन जाती है।

(vii) भावी काल में उत्पादों की कीमतों में अत्यधिक गति से वृद्धि अथवा कमी होने की स्थिति में संविदा कृषि में किए गए समझौते की अनुपालना भंग होने की आशंका भी दोनों पार्टियों के स्तर पर बनी रहती है।

6.11 संविदा कृषि की सफलता के लिए आवश्यक सुझाव

संविदा कृषि की सफलता के लिए निम्न सुझाव प्रेषित हैं –

(i) **समझौते को वैधानिक रूप प्रदान करना** – संविदा कृषि के समझौते को वैधानिक रूप प्रदान किया जाना चाहिए, जिससे समझौते के पालना नहीं करने वाली पार्टी के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही की जा सके।

वर्तमान में अनेक राज्यों में कृषि उत्पाद विपणन अधिनियम में संशोधन करके संविदा कृषि को वैधानिक रूप प्रदान कर दिया गया है।

(ii) **समझौते के पंजीकरण की व्यवस्था का होना** – संविदा कृषि के समझौते का पंजीकरण करने के लिए एक संस्था का होना भी आवश्यक है, जो विभिन्न पार्टियों में समझौते से सम्बन्धित विवाद को हल करने में मदद कर सके।

(iii) **समझौते में अनुबन्ध के प्रकार** – संविदा कृषि में मुख्य रूप से अग्रिम अनुबन्ध (Forward Linkage) होते हैं। इसके साथ पश्चगामी अनुबन्ध का प्रावधान भी होना चाहिए।

(iv) **कृषकों को भूमि पर स्थायी काश्तकारी अधिकारों का प्राप्त होना** – संविदा कृषि की मूलभूत आवश्यकता के रूप में काश्तकारों को भूमि पर स्थायी काश्तकारी अधिकार (Security of Tenure) प्राप्त होना चाहिए। भूमि पर स्थायी काश्तकारी अधिकार प्राप्त नहीं होने वाले कृषकों के समझौते कानून की दृष्टि में वैध नहीं ठहराये जा सकते हैं।

(v) **उत्पादन-साधनों की उपलब्धता** – संविदा कृषि की सफलता के लिए क्षेत्र में उन्नत किस्मों के बीज, कीटनाशक-दवाइयॉं, उर्वरक एवं अन्य उत्पादन-साधनों की समय पर उपलब्धता की व्यवस्था का होना आवश्यक है।

(vi) **प्रसंस्करण संस्था द्वारा निर्मित उत्पादों का निश्चित बाजार** – प्रसंस्करण संस्थ द्वारा निर्मित उत्पादों के निश्चित बाजार का होना भी संविदा कृषि की सफलता के लिए आवश्यक है। उत्पाद की बाजार-मॉग नहीं होने की अवस्था में कम्पनी किए गए सौदे से विभिन्न बहानों के आधर पर मुकर जाने का प्रयास करेगी।

(vii) **क्षेत्र में आधारभूत सुविधाओं का होना** – क्षेत्र में आधारभूत सुविधाओं जैसे – सड़क, विद्युत, जलापूर्ति, सार्वजनिक परिवहन-साधनों की उपलब्धता, संग्रहण व्यवस्था, संचार सुविधाओं का होना भी आवश्यक है, जिससे उत्पादन-साधनों एवं निर्मित उत्पादों का संचालन सुचारू रूप से हो सके।

(viii) **एकल कृषि (Mono cropping) पर प्रतिबन्ध** – सरकार द्वारा संविदा कृषि में बढ़ती एकल कृषि पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए, जिससे क्षेत्र में जैव-विविधता एवं कृषि-पारिस्थितिकी पर विपरीत प्रभाव नहीं आवे।

(ix) **सरकार की वैधानिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक नीति में परिवर्तन** – सरकार को वैधनिक, राजनीतिक एवं प्रशासकीय नीति में आवश्यक परिवर्तन करना चाहिए, जिससे राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियॉं संविदा कृषि में अधिकाधिक सुविध कृषकों को उपलब्ध करा सकें।

(x) **प्रत्यक्ष-विपणन को प्रोत्साहन** – सभी राज्य सरकारों द्वारा कृषि-उत्पाद विपणन अधिनियम में संशोधन करके संविदा कृषि के अन्तर्गत उत्पादों को सीधे विक्रय का प्रावधन किया जाना चाहिए, जो अनेक राज्यों के कृषि-उत्पाद-विपणन अधिनियम में वर्तमान में नहीं है।

6.12 सारांश

विपणन-माध्यमों से तात्पर्य उत्पादक-कृषकों से उपभोक्ताओं तक कार्यरत विभिन्न मध्यस्थों द्वारा उत्पादों के प्रवाह की निर्देशित दिशा-सूची से होता है। प्रत्यक्ष-विपणन से तात्पर्य उत्पादों के संचलन में उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के मध्य पाए जाने वाले विपणन-मध्यस्थों की श्रृंखला को समाप्त करके, उत्पादों को उत्पादक-कृषक से उपभोक्ता को सीधे रूप में पहुँचाने से होता है। वर्तमान में संविदा कृषि से तात्पर्य कृषक एवं बड़े थोक क्रेता अथवा खद्य प्रसंस्करण कम्पनी के मध्य समझौते के आधर पर खेती करने से है। इसके अनुसार कृषक एवं कम्पनी के बीच द्विपक्षीय करार किया जाता है और कम्पनी फार्म पर निवेश, तकनीकी मार्गदर्शन एवं उत्पाद के क्रय करने के साथ फार्म के प्रबंधन में सीधे सहायता करती है।

6.13 अभ्यास प्रश्न

1. विपणन-माध्यम विभिन्न वैकल्पिक मार्ग हैं, जिनके माध्यम से उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक उत्पाद प्रवाहित होते हैं। यह परिभाषा किसने दी?

   (अ) कोटलर　　(ब) थामसन

   (स) कोल्स एवं उल्ल　　(द) अबोट

2. आन्ध्रप्रदेश राज्य के बड़े शहरों एवं कस्बों में कृषकों एवं उपभोक्ताओं में सीधे सम्पर्क द्वारा फल, सब्जी, पुष्प एवं अन्य कृषि-उत्पादों के विपणन के लिए 20 जनवरी, 1999 से कौनसे बाजार स्थापित किए गए हैं?

   (अ) रायथू बाजार　　(ब) अपनी मंडी

   (स) दोनों　　(द) इनमें से कोई नहीं

3. हडसपर सब्जी-बाजार किस राज्य में स्थापित हैं ?

   (अ) महाराष्ट्र　　(ब) आन्ध्रप्रदेश

   (स) दोनों　　(द) इनमें से कोई नहीं

4. संविदा कृषि से लाभ एवं हानियॉं बताइये?

5. कृषि-उत्पादों के संचालन में मुख्यतया कौनसे विपणन-माध्यम पाए जाते हैं ? उदहारण सहित समझाइये ?

6.14 संदर्भ ग्रंथ

- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- S. S. Acharya and N. L. Agarwal. 2007. Agricultural Marketing in India. Oxford & IBH Publications, Calcutta.
- S. Subba Reddy, P. Raghu Ram, T. V. Neelakanta Sastry and I. Bhavani Devi. 2006. Agricultural Economics. Oxford & IBH Publications, Calcutta.
- K. K. Dewett. 1999. Modern Economic Theory. Oxford & IBH Publications, Calcutta.

इकाई - 7

कृषि विपणन व्यवस्था एवं सुधार के सरकारी प्रयास

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कृषि विपणन की परिभाषा

7.3 कृषि विपणन कार्यो का वर्गीकरण:

7.4 कृषि विपणन व्यवस्था संबंधर महत्त्वपूर्ण तथ्य/बिन्दु

7.5 कृषि विपणन व्यवस्था

7.6 आयोग एवं समितियाँ

7.7 कृषि विपणन एवं वैधानिक व्यवस्था

7.8 कृषि विपणन एवं सरकारी प्रयास

7.9 सारांश

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पड़ने के पश्चात आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे:

- कृषि विपणन की परिभाषा
- कृषि विपणन व्यवस्था संबंधमहत्त्वपूर्ण तथ्यबिन्दु/
- कृषि विपणन व्यवस्था
- आयोग एवं समितियाँ
- कृषि विपणन एवं वैधानिक व्यवस्था

7.1 प्रस्तावना

प्राचीन समय में कृषि विपणन व्यवस्था वर्तमान के समान विकसित अवस्था में नहीं थी। किसान वर्ग जीविकोपार्जन हेतु कृषि कार्य करता था। घरेलु आवश्यकता की पूर्ति हेतु कृषि कार्य किया जाता था। समय के साथ तकनीक का विकास हुआ जिससे कृषि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होने लगी जिससे किसान के समक्ष अधिशेष उत्पादन के सही समय एवं उचित कीमत पर बेचने की समस्या उत्पन्न हुई। इन समस्याओं का समाधान कृषि विपणन से ही संभव था। समय के साथ कृषि जीविकानिर्वाह के स्थान

पर व्यापार में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार कृषि उत्पादन के व्यापारीकरण ने कृषि विपणन विषय को जन्म दिया।

7.2 कृषि विपणन की परिभाषा

कृषि विपणन एक प्रक्रिया है जिसमें कृषक अपने फार्म पर उत्पादित वस्तु के विक्रय हेतु फसल के बाद की क्रियाओं-एकत्रीकरण, श्रेणीयन, संग्रहण, परिवहन एवं वितरण को सुनिश्चित करता है।

जे.सी. अबोट के अनुसार- कृषि विपणन में वे सभी क्रियाएँ सम्मिलित है जिनके द्वारा खाद्य वस्तुएँ एवं कच्चा माल कार्य से उपभोक्ता तक पहुँचता है।

कोल्स एवं उल्ल के अनुसार-खाद्य विपणन में उन सभी व्यापारिक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनके द्वारा खाद्य वस्तुओं एवं सेवामें का प्रवाह उत्पादन स्थान से उपभोक्ताओं तक होता है।

वर्तमान में कृषि विपणन में उत्पादन करने से पूर्व की क्रियाओं से लेकर उपभोक्ताओं को विक्रय के बाद तक की क्रियाएँ सम्मिलित की जाती है।

7.3 कृषि विपणन कार्यो का वर्गीकरण

1. पैकेजिंग कार्य
2. परिवहन
3. श्रेणीयन
4. प्रमाणीकरण/मानकीकरण
5. किस्म नियंत्रण
6. संग्रहण एवं भण्डारण कार्य
7. वित्त व्यवस्था
8. परिष्करण
9. क्रय-विक्रय क्रियाएँ
10. मूल्य निर्धारण
11. विपणन सूचना सेवा
12. विपणन ज्ञान

उपरोक्त कार्यो को कृषि विपणन में सम्मिलित किया जाता है।

7.4 कृषि विपणन व्यवस्था संबंधर महत्त्वपूर्ण तथ्यबिन्दु

1. कृषि विपणन व्यवस्था में आढतिया कृषको एवं व्यापारियों द्वारा लाये गये कृषि उत्पादों का विक्रय करते है। विक्रय के बदले दी गई सेवाओं के लिए प्राप्त विक्रय मुल्य में से अपना कमीशन ले लेते है।
2. भारत में सर्वप्रथम पटसन के लिए निर्यात हेतु सन् 1942 में श्रेणीयन किया गया था।

3. घरेलु व्यापार की दृष्टि से भारत में सन् 1938 में प्रथम बार घी के लिए श्रेणरयन प्रारंभ किया गया था।

4. कृषि विपणन सलाहकार के कार्यालय (फरीदाबाद-हरियाणा) के माध्यम से कृषि वस्तुओं का श्रेणीयन किया जाता है।

5. भारत में विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय के द्वारा श्रेणीकृत वस्तुओं के पैकेट/कार्टून पर चिन्ह अंकित किया जाता है।

6. एगमार्क हेतु निम्न वर्गीकरण अपनाया जाता है-

   अ. विशिष्ट श्रेणी की वस्तुओं कें लिए - सफेद रंग

   ब. 'ए' श्रेणी की वस्तुओं के लिए- लाल रंग

   स. 'बी' श्रेणी की वस्तुओं के लिए - नीला रंग

   द 'सी' श्रेणी की वस्तुओं के लिए - पीला रंग

   य. 'डी' श्रेणी की वस्तुओं के लिए - हरा रंग

7. राष्ट्रीय सहकारी विकास एवं भण्डार गृह बोर्ड की स्थापना। सितम्बर 1956 को की गई।

8. केन्द्रीय भण्डार गृह निगम की स्थापना 2 मार्च 1957 को की गई।

9. राज्यों की दृष्टि से सर्वप्रथम बिहार में सन् 1956 में राज्य भण्डार गृह निगम की स्थापना की गई थी।

10. हवाई अड्डो एवं बंदरगाहो के समीप बनाये जाने वाले भण्डार गृह अनुबद्ध भण्डार गृह कहलाते है। आयात की दशा में शुल्क भुगतान होने तक इनमें वस्तुओं को रखा जाता है।

11. ग्रामीण क्षेत्रों में भण्डार गृहों की कमी को देखते हुए नये भण्डार गृह बनाने हेतु राष्ट्रीय ग्रामीण गोदाम ग्रिड योजना 1979 में शुरू की गई थी।

12. भारत में सर्वप्रथम शीतसंग्रहण केन्द्र सन् 1882 में कलकता में स्थापित किया गया था।

13. भारतीय खाद्यान्न संग्रहण प्रबंध एवं अनुसंधान संस्थान हापुड(उत्तरप्रदेश) में अवस्थित हैं।

14. निक नेट के माध्यम से कृषि जिन्सों की प्रचलित कीमते देश के विभिन्न भागों में पता की जा सकती है।

15. भारत सरकार द्वारा सरकार के लिए खाद्यान्नों के क्रय, परिवहन, संग्रहण एवं वितरण हेतु 14 जनवरी, 1965 को भारतीय खाद्य निगम की स्थापना की गई।

7.5 कृषि विपणन व्यवस्था

भारत में किसानों को कृषि विपणन व्यवस्था में पाये जाने वाले मध्यस्थों, वर्तमान विपणन में व्याप्त कुरीतियों के कारण खाद्यान्नों की उचित कीमत प्राप्त नहीं होती हैं भारतीय कृषक अपनी उपज की अधिकांश मात्रा स्थानीय व्यापारियों साहूकारों एवं स्थ्ज्ञानीय उपभोक्ताओं को गॉवों में ही करते है। हमारे गॉवों में मण्डियों की तुलना में उत्पादों की कीमते कम होती है। जिसके कारण किसानों को उत्पादों के

विक्रय से बहुत हानि होती है। कृषि उत्पादों की अधिकांश मात्रा किसानों द्वारा गॉवों में ही किये जाने के कारण निम्नलिखित है-

1. ग्रामीण कृषको की ऋणग्रस्तता
2. गाँवों से शहरों तक संपर्क सड़को अभाव
3. शहरी मण्डियों में ठहरने की सुविधा का अभाव
4. खाद्यान्न संग्रहण के लिए स्थान एवं सुविधाओं का अभाव
5. प्रचलित कीमतों को संबंध में कृषको की अनभिज्ञता
6. विपणन मध्यस्थों की अधिकता।

वर्तमान कृषि विपणन व्यवस्था दोषपूर्ण है जिसके कारण कृषको को उपभोक्ता द्वारा की गई कृषि वस्तुओं की कीमत में से बहुत कम अंश प्राप्त होता है। कृषि विपणन व्यवस्था में पाये जाने वाले प्रमुख कोष निम्न है-

1. कृषकों द्वारा कृषि उत्पादों की बिक्री फसल कटाई के शीघ्र बाद करना -

अधिकांश कृषक फसल कटाई के तुरंत बाद खाद्यान्नों की बिक्री कर देते है जिससे उन्हें उनकी उपज का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। फसल कटाई के तुरन्त बाद कृषि उत्पादों का विक्रय किसानों द्वारा करने के निम्न कारण है-

- सरकारी लगान को समायानुसार जमा कराने की बाध्यता।
- खाद्यान्न संग्रहण हेतु भण्डार गृहों की समूचित व्यवस्था का अभाव।
- किसानों में व्यापारिक सुझबूझ का अभाव।
- कृषि उत्पादों के संग्रहण हेतु कृषको के पास स्थानाभाव।
- धन की तत्काल आवश्यकता।

2. कृषको का असंगठित स्वरूप -

भारतीय किसान संगठित नहीं है, परिणामस्वरूप किसान वर्ग कृषि उत्पादों के विक्रय में पिछडे हुए है। इसके विपरीत व्यापारी वर्ग संगठित होने के कारण कृषको का शोषण करते हैं।

3. विपणन संबंधी सूचना तंत्र का अभाव-

भारतीय कृषक विभिन्न मण्डियों में खाद्यान्नों की प्रचलित कीमतों से अनभिज्ञ होने के कारण अपने कृषि उत्पादों का विक्रय कम कीमत पर व्यापारियों को कर देते है। इस प्रकार विपणन मध्यस्थ, कृषको की इस अनिभज्ञता का फायदा उठा कर कृषि उत्पाद न्यून कीमत पर खरीद लेते है।

4. अपर्याप्त नियंत्रित मण्डियाँ -

भारत में कृषि उत्पादों के क्रय विक्रय हेतु नियंत्रित मण्डियों की संख्या अपर्याप्त है। कृषक अपनी उपज अनियंत्रित मण्डियों में कर देते है जिसके कारण उन्हे अनावश्यक यूनीयी, धर्मादा, चुंगी,

गौशाला, जैसे व्ययो, की कटौती भी करवानी पड़ती है। परिनामस्वरूप विपणन लागतों में वृद्धि हो जाती है।

5. विपणन मध्यस्थों की भूमिका -

किसानों एवं वास्तविक उपभोक्ता के मध्य मध्यस्थों की अधिकता के कारण उत्पादक कृषक को उपभोक्ता द्वारा अदा की गई कीमत में बहुत कम हिस्सा प्राप्त होता है। अत एवं विपणन मध्यस्थों की श्रृंखला को सीमित किया जाना आवश्यक है।

6. विपणन कृरीतियों का प्रभाव -

कृषि विपणन व्यवस्था में अनेक कुरीतियाँ जैसे- तौल एवं माप में अनाधिकृत साधनों का उपयोग, नमूनों का प्रचलन, विक्रय प्रक्रिया का दोषपूर्ण होना, किसानों की कीमतों संबंधी जानकारी में कमी, आकृतियों द्वारा कम कीमत अदायगी, अन्य अनाश्यक लागतों के आरोपित किये जाने से कृषक अपने उत्पाद की उचित कीमत प्राप्त करने से वंचित रह जाता है।

7. श्रेणीकृत मण्डियों का अभाव -

कृषि विपणन व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि श्रेणीयन एवं प्रमाणन हेतु आवश्यक सुविधाएँ सभी स्थानों पर उपलब्ध नहीं हो पाती है जिसके कारण कृषक अपने उत्पाद बिना श्रेणीकृत किये ही विक्रय कर देते हे। इसके परिणामस्वरूप उत्पादों की उचित कीमत किसान नहीं प्राप्त कर पाता है।

8. कृषि उत्पादों की विक्रय मात्रा का कम होना -

भारतीय कृषक की जोत का आकार कम होने के कारण एवं खाद्यान्नों की विविधीकृत कृषि किये जाने के कारण किसानों के पास बिक्री योग्य उत्पादों की मात्रा बहुत कम होती है। इसके परिणाम स्वरूप प्रति इकाई विवणन लागत अधिक हो जाती है।

9. कृषि विपणन व्यवस्था की सृदढ़ किया जाना परम आवश्यक है। वर्तमान कृषि विपणन व्यवस्था के सृदृढ़ीकरण हेतु निम्नलिखित प्रयास किये जा सकते है-

- देश में सभी स्थानों पर नियंत्रित मण्डियों की स्थापना की जानी चाहिये।
- कृषि उत्पादों के श्रेणीयन एवं प्रमायन संबंधी सुविधाओं को विकसित करके उत्पाद की किस्म एवं गुणवता के आधार पर कृषक अपनी उपज की उचित कीमत प्राप्त कर सकते है।
- भण्डार गृहों की अधिकाधिक स्थापना करके कृषको को कम किराये पर सुविधाये उपलब्ध करवायी जा सकती है ताकि बाजार में उचित कीमत आने तक वे अपनी उपज का समुचित भण्डारण कर सके।
- देश में गॉव-शहर संपर्क सड़को का विकास करना अति आवश्यक है ताकि शीघ्रातिशीघ्र कृषि उत्पादों को मण्डियों तक ले जाया जा सके।

- ○ कृषको के लिए उनकी उपज के भावों संबंधी नवीनतम जानकारी उपलब्ध करवाने हेतु विपणन सूचना तंत्र को सुदृढ़ किया जाना चाहिए।
- ○ मण्डियों में आधारभूत सुविधाओं का विकास किया जाना चाहिए जैसे कृषको के ठहरने हेतु आवास सुविधा, पशुओं एवं गाड़ियों को खड़ी करने हेतु उचित स्थान का निर्धारण आदि।
- ○ लघु कृषको को सहकारी विपणन समितियों के माध्यम से अपनी कृषि उत्पादों की बिक्री को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
- ○ कृषको को आधुनिक विशिष्टीकृत कृषि को अपनाना चाहिए ताकि कृषि उपज की मात्रा में वृद्धि हो सके।
- ○ देश में प्रचलित कृषि कानूनों की प्रभावशीलता सुनिश्चित करना। उनकी समीक्षा करके सुसंगत संशोधन करना।
- ○ प्रचलित विपणन कुरीतियों के समुचित नियमन की व्यवस्था करना ताकि पारदर्शितापूर्वक विपणन हो सके।

7.6 आयोग एवं समितियाँ

- **कृषि रॉयल कमीशन, 1928:-** भारत में ब्रिटिश सरकार ने 1928 में वायसराय लार्ड लिनबिथगों की अध्यक्षता में कृषि रॉयल कमीशन बनाया था जिसने तत्कालीन कृषि विपणन व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु नियंत्रित मण्डियों की स्थापना करने पर बल दिया था।
- **राष्ट्रीय कृषि आयोग -** राष्ट्रीय कृषि आयोग 19$6 की रिपोर्ट में भारत में नियंत्रित मण्डियों की वर्तमान व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए निम्न सुझाव दिये थे-

1. समस्त क्रय-विक्रय मण्डी के क्षेत्र में ही होना चाहिये।
2. नियंत्रित मण्डभ् को एक तहसील तक सीमित कर दिया जाना चाहिये ताकि प्रशासनिक व्यवस्था सुचारू रहे।
3. राज्य सरकारों द्वारा मण्डी शुल्क की दर क्षेत्र विशेष में उपलब्ध सुविधाओं के अनुरूप् होनी चाहिये।
4. मण्डी विकास कोष की स्थापना प्रत्येक राज्य को करनी चाहिये ताकि वित्तीय दृष्टि से कमजोर मण्डीयों को सहायता उपलब्ध करवायी जा सके।
5. खुली नीलामी अथवा बंद निविदा विधि से कृषि उत्पादों का क्रय-विक्रय होना चाहिये।
6. प्रत्येक राज्य के कृषि विपणन विभाग को नियंत्रित मण्डियों में सचिव, विपणन निरीक्षक, मण्डी पर्यवेक्षक, श्रेणीकरण पर्यवेक्षक एवं नीलामीकर्ता की नियुक्ति स्वयं करनी चाहिये।
7. मण्डी समिति में कृषको का प्रतिनिधित्व जैसे अध्यक्ष, उपाध्यक्ष हेतु सुनिश्चित करना चाहिये।

8. कृषि उत्पादों के साथ-साथ फल एवं सब्जियाँ, पशुओं से प्राप्त उत्पाद वाणिज्यिक फसलों को भी सम्मिलित करना चाहिये।
9. नियंत्रित मण्डी क्षेत्र में मण्डी यार्ड एवं अन्य आधारभूत सुविधाएँ जैसे कार्यालय, डाकघर, बैक, एटीएम, विपणन स्थल, श्रेणीयन सुविधा, संग्रहण स्थल तथा पार्किंग की व्यवस्था होनी चाहिये।

शीघ्र नष्ट होने वाले कृषि उत्पादों के विपणन हेतु दल-

29 जनवरी 1981 को प्रसद्धि कृषि विशेषज्ञ डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में एक दल नियुक्त किया गया था। दल ने शीघ्र खराब होने वाले कृषि उत्पादों के विपणन के संबंध में निम्न सुझाव दिये थे-

1. शीघ्र विनाशयोग्य कृषि उत्पादों के श्रेणीकरण, तुलाई, संग्रहण एवं पैकेसिंग हेतु सभी मण्डियों में व्यवस्था होनी चाहिये।
2. फलो एवं सब्जियों के लिए पृथक से मण्डी क्षेत्र का निर्माण किया जाना चाहिये।
3. फलों एक सब्जियों के लिए पृथक से मण्डी क्षेत्र एवं अन्य आवश्यक सुविधाओं हेतु पर्याप्त धन की व्यवस्था सुनिश्चित करनी चाहिये।
4. फलों एवं सब्जियों की आमद एवं मूल्यों की सूचना रेड़ियो एवं टेलीविजन द्वारा प्रसारित करने का प्रबंध होना चाहिये।
5. आलु एवं प्याज के अतिरिक्त अन्य सब्जियों एवं फलों से संबंधित सूचनाएँ भी आर्थिक एवं सांख्यिकी निदेशालय को एकत्रित करनी चाहिये।
6. आकार एवं भंडारण की दृष्टि से बड़ी मण्डियों के निकट रेल्वे का साइडिंग भी बनाया जाना चाहिये ताकि कृषि उत्पादों के आवागमन में सुविधा रहे।
7. फलों एवं सब्जियों का विपणन अनिवार्यतः नियंत्रित मण्डियों में ही किया जाना चाहिये ताकि उत्पादको के हितों की सुरक्षा की जा सके।

गुरू समिति -

सन् 1992 में केन्द्र सरकार ने श्री शंकरलाल गुरू की अध्यक्षता में मण्डी नियमन को प्रभावी बनाने के लिए समिति का गठन किया, जिसने नवम्बर 1992, में अपनी प्रतिवेदन में कृषि विपणन से जुड़ै हुये विभिन्न विषयों पर अपनी सिफारिशे प्रस्तुत की है। समिति के द्वारा गई प्रमुख संस्तुतियाँ निम्न है -

1. निकनेट सुविधा को विकसित करना।
2. कोसांब, नियास एवं विपणन निदेशालय द्वारा उत्तर-पूर्व के राज्यों में विपणन सुविधाओं को विकसित करने हेतु विशेष ध्यान देना।
3. कृषि विपणन विकास के साथ-साथ कृषको एवं उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा कर ध्यान देना।
4. कीमत उच्चावयन को नियंत्रित करने हेतु कृषि उत्पाद क्रय योजना प्रारंभ करना।
5. चाय, रबर, तंबाकू, इलायची, मसालो एवं बागानी फसलों को भी कृषि उपज मण्डी समितियों के श्रेत्राधिकार में लाना।
6. विपणन विवाद निपटारे हेतु विपणन ट्रिव्यूनल राज्य स्तर पर स्थापित करना।

7. कृषि उत्पादों की गिरवी व्यववस्था लागू करवाकर ऋण सुविधा प्रारंभ करवाना।
8. कृषि विपणन निदेशालय के संगठनात्मक स्वरूप को विकसित करना।
9. केन्द्रीय स्तर पर कृषि विपणन बोर्ड की स्थापना करना।
10. कृषको द्वारा मण्डी समितियों एवं मण्डी बोर्ड के अध्यक्ष का चयन किया जाना।
11. राष्ट्रीय कृषि विपणन बैक की स्थापना करना, जिससे कृष विपणन क्षेत्र की वित्तीय आवश्यकता को पूरा किया जा सके।
12. मण्डी नियमन कानून अनिवार्यतः प्रत्येक राज्य में लागू करवाना।
13. ग्रामीण स्तर पर क्रम से कम 15,000 मण्डियों का नियंत्रण करना ताकि मण्डी नियमन व्यवस्था को प्रभावी बनाया जा सके।

एस.एस. आचार्य समिति -

सन् 1999 में केन्द्र सरकार द्वारा विपणन निदेशालय एवं अन्य विपणन संस्थाओं के संगठनात्मक स्वरूप को प्रभावी बनाने की दृष्टि से डॉ0 एस.एस. आचार्य की अध्यक्षता में एक समिति का निर्माण किया गया। समिति का स्वरूप निम्नवत था-

1. कृषि विपणन सलाहकार
2. महानिदेशक- राष्ट्रिय कृषि विपणन संस्थान
3. आर्थिक सलाहकार- ग्रामीण एवं रोजगार मंत्रालय
4. सह सचिव - विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय

इस समिति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुझाव यह था कि कृषि विपणन निदेशालय को ग्रामीण रोजगार मंत्रालय रोजगार मंत्रालय से पृथक कर कृषि मंत्रालय से सम्बद्ध कर दिया जाये।

शंकर लाल गुरू समिति-

सन् 2000 में भारत सरकार ने वर्तमान कृषि विपणन व्यवस्था का समीक्षात्मक अध्ययन करने एवं इसे विकसित करने की दृष्टि से कृषि मंत्रालय में एक विशेषज्ञ समिति श्री शंकरलाल गुरू की अध्यक्षता में गठित की। इस समिति ने 29 जून, 2001 को अपने प्रतिवेदन में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये, जिनका विवरण निम्न है -

1. कृषि विपणन के क्षेत्र में विभिन्न सूचनाओं जैसे कृषि उत्पादको की मांग एवं उपलब्धता, गुणवता स्तर, पैकिग, आपूर्ति की समय सीमा आदि को त्वरित संप्रेषण हेतु सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग पर बल देना।
2. कृषि विपणन हेतु आधारभूत संरचना का विकास करना।
3. कृषि क्षेत्र में वित्तीय आवश्यकता को पूरा करने हेतु अतिरिक्त प्रयास करना।
4. कृषि विपणन सुदृढ़ीकरण हेतु बेचनीय माल गोदाम रसीद प्रणाली लागू करवाना।
5. भावी संविदाओं को प्रोत्साहन देना।

6. मूल्यों पर आधारित जोखिम का प्रबंधन करना।
7. लघु एवं सीमान्त कृषकों को उनके उत्पाद के विपणन, मण्डी सूचना, श्रेणीयन एवं प्रमायन संबंधी प्रशिक्षण देना।
8. कृषि विश्वविद्यालयों एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के माध्यम से शोधकार्यो को बढ़ावा देना।

अन्तर मंत्रालीय कार्यटल-

सन् 2000 में शंकरलाल गुरू कह अध्यक्षता में गठित कृषि विपणन विशेषज्ञ समिति के सुझावों के संबंध संभावनाओं की खोज करने एवं कार्ययोजना बनाने हेतु 4 जुलाई 2001 को श्री आर.सी.ए. जैन की अध्यक्षता में एक अंतर मंत्रालीय कार्यबल का कठन किया गया जिसने उच्च प्राथमिकता वाले निम्न नौ क्षेत्रों की पहचान कृषि विपणन व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु की है -

1. कानूनी सुधार,
2. प्रतिभूति वित्तीय प्रबंध
3. वायदा बाजार
4. माल गोदाम रसीद प्रणाली
5. न्यूनतम मूल्य समर्थन नीति
6. सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग
7. प्रशिक्षण एवं शोधकार्य को बढ़ावा।
8. प्रत्यक्ष विपणन योजना
9. मण्डी क्षेत्र की आधारभूत संरचना का विकास

7.7 कृषि विपणन एवं वैधानिक व्यवस्था

भारत में कृषि विपणन व्यवस्था के क्षेत्र में निम्नलिखित अधिनियमों का निर्माण किया गया है -

1. कृषि-उत्पाद (श्रेणीकरण एवं चिन्हीकरण) अधिनियम 1937-

   अधिनियम के अंतर्गत कृषि उत्पादों का श्रेणीयन, श्रेणीयन हेतु लाईसेंस जारी करना एवं श्रेणीकृत उत्पादों का निरीक्षण सम्मिलित है। श्रेणीकृत कृषि उत्पादों पर ष्।ळड।त्ज्ञष् अंकित करके उनका विपणन किया जाता है।

2. वायदा बाजार अनुबंध (नियमन) अधिनियम, 1952 -

   बाजार में कृषि उत्पादों की राष्टेªबाजी को रोकने एवं विभिन्न वस्तुओं के वायदा बाजार का नियमन करने के उद्देश्य से इस अधिनियम का निर्माण किया गया है।

3. फलोत्पाद आदेश, 1955 -

   विभिन्न फलों से शर्बत, रस, जैन, जैली बनाने संबंधी प्रक्रिया का नियमन एवं नियंत्रण इस आदेश के अंतर्गत किया जाता है।

4. कृषि उत्पाद विकास, भंडारण निगम अधिनियम, 1956 -

इसके अंतर्गत कृषि उत्पादको एवं इस कार्य से जुड़े हुए व्यापारियों को कृषि उत्पादों के संग्रहण हेतु उचित भण्डारण सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। सन् 1962 में इस अधिनियम को सहकारिता हेतु राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम अधिनियम एवं संग्रहण हेतु राष्ट्रीय भण्डारण अधिनियम द्वारा बदल दिया गया है।

5. वजन एवं पैमाना प्रमापीकरण अधिनियम, 1958 -

इसके अंतर्गत कृषि विपण्प के क्षेत्र में मानकीकृत बात एवं तराजू का प्रयोग सुनिश्चित किया जाता है। वर्ष 1960 से देश में मीट्रिक बातों का उपयोग एवं वर्ष 1963 से मीट्रिक पैमानों का उपयोग विपणन व्यवहार में अनिवार्य कर दिया गया है। सन् 1976 में इस अधिनियम में कुछ व्यवहारिक संशोधन किये गये है।

6. निर्यातयोग्य उत्पादों की किस्म नियंत्रण एवं जाँच अधिनियम, 1963

अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भारतीय कृषि उत्पादों की साख सुनिश्चित करने हेतु निर्यातयोग्य उत्पादों की गुणवत्ता जाँच एवं नियत्रंण हेतु इस अधिनियम का निर्माण किया गया है।

7. माँस खाद्य पदार्थ संबंधी आदेश, 1973 -

शुद्ध एवं स्वच्छ मॉस खाद्य पदार्थ के उत्पादन को प्रोत्साहन देने हेतु यह आदेश निर्गमित किया गया है।

8. खाद्य अपमिश्रण अधिनियम, 1976 -

इस अधिनियम के अंतर्गत मिलावट रोकने एवं भ्रामक नाम से खाद्य उत्पादों के विक्रय पर नियंत्रण स्थापित किया गया है।

9. प्रमाणित माप तौल (डिब्बा बंद उत्पाद) अधिनियम, 1977 -

ग्राहको को डिब्बा बंद वस्तुओं के सही वजन, गुणवता एवं कीमतों के संबंध में जानकारी देने हेतु इस अधिनियम का निर्माण किया गया है।

10. भारतीय मानक ब्यूरों अधिनियम, 1986 -

सन् 1952 में निर्मित वस्तुओं पर चिन्ह् अंकित करने के उद्देश्य से भारतीय मानक संस्था (प्रमाणीकरण एवं चिन्हीकरण) अधिनियम, 1952 बनाया गया था जिसे भारतीय मानक ब्यूरों अधिनियम, 1986 द्वारा बदल दिया गया है।

11. दूध एवं दुग्धोत्पाद आदेश, 1992 -

इसके द्वारा दूध एवं दूध से निर्मित उत्पादों की उत्पादन प्रक्रिया, वितरण एवं आपूर्ति को नियंत्रित किया जाता है ताकि स्वास्थ्यप्रद उत्पाद ग्राहको को उपलब्ध हो सके।

12. कृषि उपज विपणन अधिनियम -

भारत में विभिन्न राज्यों एवं केन्द्रीय शासित प्रदेशों द्वारा कृषि उत्पादों के विपणन हेतु कानून बनाये गये है।

13. अनुज्ञा पत्र व्यवस्था -

विभिन्न राज्य सरकारों ने खाद्यान्न के थोक व्यापारियों की बड़ी मात्रा में स्टॉक करने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण लगाने के उद्देश्य से अनुज्ञा पत्र लेना अनिवार्य कर दिया है।

14. अन्य महत्त्वपूर्ण अधिनियम -

(i) चिन्ह् एवं नाम(अनुचित उपयोग निवारण) अधिनियम 1950
(ii) व्यापारिक सौदा चिन्हीकरण अधिनियम, 1958
(iii) भारतीय बीज अधिनियम, 1966
(iv) कीटनाशक अधिनियम, 1968
(v) एकाधिकार एवं प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम, 1969
(vi) कालाबाजरी नियंत्रण एवं आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1980
(vii) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986
(viii) प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002

7.8 कृषि विपणन एवं सरकारी प्रयास

नियंत्रित मण्डियाँ -

कृषि उत्पादकों को विपणन संबंधी सभी सुविधाये एक ही स्थान पर उपलब्ध करवाने की दृष्टि से नियंत्रित मण्डीयाँ भारत के विभिन्न राज्यों में स्थापित की गई है। नियंत्रित मण्डी राज्य कृषि उपज मण्डी अधिनियम के अन्तर्गत व्यापार संचालन हेतु स्थापित की जाती है। भारत में 1886 में सर्वप्रथम करंजीया कपास मण्डी की स्थापना ब्रिटिश शासनकाल में की गई। विपणन एंव निरीक्षण निदेशालय के वैधानिक मार्गदर्शन में नियंत्रित मण्डीयों कार्य कर रही है। भारत के विभिन्न राज्यों में पृथक-पृथक मण्डी नियंत्रण हेतु अधिनियम बनाये गये है, जिनका विवरण निम्न है -

1. हैदराबाद कृषि विपणन अधिनियम, 1930
2. मद्रास वाणिज्यिक फसल विपणन अधिनियम, 1935
3. बम्बई कृषि अज विपणन अधिनियम, 1939
4. पंजाब कृषि उपज विपणन अधिनियम, 1939
5. मैसूर कृषि उपज विपणन, अधिनियम, 1939
6. केरल कृषि उपज विपणन, अधिनियम, 1957
7. राजस्थान कृषि उपज विपणन अधिनियम, 1961

(अ) कार्यप्रणाली: नियंत्रित मण्डीयों की कार्यप्रणाली निम्न प्रकार से होती है -

(i) क्रय-विक्रय विधि- इसके लिए खुली नीलामी विधि अथवा बन्द निविदा विधि का प्रयोग किया जाता है।

(ii) वस्तुओं का वजन मापन- इसके लिए लाईसेंसधारी व्यक्ति द्वारा मीट्रिक बाटो का उपयोग किया जाता है।

(iii) श्रेणीयन- इसके लिए पृथक से कोई प्रक्रिया निश्चित नहीं हैं। अधिकांश मण्डियों में बिना श्रेणीयन के ही कृषि उत्पादों का विपणन किया जाता है।

(ब) संचालन-

नियंत्रित मण्डीयों का संचालन कृषि उपज मण्डी समिति द्वारा किया जाता हे। विभिन्न राज्यों में इसकी सदस्यता के मापदण्ड भिन्न-भिन्न है। राजस्थान में 15, तमिलनाडू में 18 सदस्य, गुजरात में मण्डी समिति के 17 सदस्य होते है। सामान्यतः मण्डी समिति के सदस्यों का दो वर्ष के लिए राज्य सरकार द्वारा मनोनयन किया जाता है। मण्डी समिति विपणन मध्यस्थो से लाईसेंस शुल्क, मण्डी में बेचे गये उत्पादों पर मण्डी शुल्क प्राप्त करके अपनी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। राज्य सरकारे भी मण्डियों में विभिन्न सुविधाओं के निर्माण हेतु अनुदान भी देती है।

भारत में 31 मार्च 1951 को नियंत्रित मण्डियों की संख्या केवल 236 थी जो कि 31 मार्च 2012 को 8712 हो गई है। भारत में असम, गोवा एवं त्रिपुरा राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों में नियंत्रित मण्डियों की प्रगति संतोषजनक है। वर्तमान में दो राज्यों केरल एवं मणिपुर तथा चार केन्द्रीय शासित प्रदेश अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह, दमन एवं दीव, दादरा एवं नगर हवेली तथा लक्षद्वीप में नियंत्रित मण्डीयों के लिए कोई कानून नहीं बनाया गया है।

राज्य कृषि विपणन बोर्ड -

भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था में मण्डी समितियों की भूमिका को प्रभावी बनाने विपणन को नियमित करने एवं कृषि उपज मण्डी समितियों के नियंत्रण हेतु भारत के विभिन्न राज्यों में कृषि उपज मण्डी नियमन कानून के अंतर्गत राज्य कृषि विपणन बोर्ड की स्थापना की गई है। राज्य कृषि विपणन बोर्ड का संगठनात्मक स्वरूप विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है। वर्तमान में 18 राज्यों पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, असम, गुजरात, हिमाचलप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा तमिलनाडू बिहार, मेघालय, नागालैण्ड, त्रिपुरा एवं दिल्ली में कृषि विपणन बोर्ड कार्य कर रहे है। इन बोर्डो द्वारा मण्डी समितियों एवं राज्य सरकार को कृषि विपणन से जुड़े विषयों पर सलाह एवं मार्गदर्शन प्रदान किया जाता है। राज्य विपणन बोर्ड निम्न कार्य करते है-

1. श्रेणीयन एवं प्रमापीकरण की सुविधाओं को विकसित करना।
2. मण्डी क्षेत्र में सड़कों का निर्माण एवं रखरखाव करना।
3. मण्डी क्षेत्र में यार्ड, सबयार्ड का निर्माण करना।-
4. मण्डीयों में कार्यरत कर्मचारियों को प्रशिक्षित करना।
5. कृषि विपणन व्यवस्था संबंधी मार्गदर्शन राज्य सरकार को प्रदान करना।
6. मण्डियों समितियों के कार्यकारी नियम, उपनियम, विधि, उपविधि का निर्माण करना।
7. राज्य सरकार के नीति निर्माण ने सहयोग करना।

अपनी मण्डी

वर्तमान कृषि विपणन व्यवस्था में अपनी मण्डी एक नवप्रवर्तन माना जाता है। कृषि उत्पादों का मध्यस्थों के बिना सीधा उपभोक्ताओं को उपलब्ध करवाना इन मण्डीयों का उद्देश्य होता है। अपनी मण्डी अवधारणा अमेरिका एवं इग्लैण्ड देशो में विद्यमान शनिवार बाजार से प्रेरित है। भारत में ये मण्डीयाँ सब्जी एवं फलों के क्षेत्र में अभूतपूर्ण कार्य कर रही है। अपनी मण्डी नियंत्रित मण्डी से पृथक है क्योंकि इसमें किसानों को उनकी उपज का अधिक मूल्य प्रत्यक्षतः प्राप्त होता है। भारत में सर्वप्रथम पंजाब राज्य कृषि विपणन बोर्ड द्वारा चंडीगढ़ में 1987 में अपनी मण्डी स्थापित की गई थी। राज्य कृषि विपणन बोर्ड द्वारा मण्डी सुविधाओं पर होने वाले व्यय की पूर्ति की जाती है। भारत में अपनी मण्डी को किसान मण्डी के नाम से भी जाना जाता है। विशेषतः फलों एवं सब्जियों के लिए इस प्रकार की मण्डियाँ महाराष्ट्र में शेतकारी बाजार, आध्रप्रदेश में रायथु बाजार, तमिलनाडु में उजहवर सन्द्रीज एवं उड़ीसा में कृषक बाजार के रूप में कार्यरत हैं पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान में भी अपनी मण्डी अवधारणा का प्रयोग अभूतपूर्व रहा है।

कृषि विपणन व्यवस्था को राष्ट्रीय स्तर पर सुदृढ़ करने के लिए राज्य कृषि विपणन बोर्डो की शीर्ष नियामक संस्था के रूप में कोसांब की स्थापना फरवरी, 1988 में की गई थी। कोसांब की स्थापना प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है-

1. भारत में विभिन्न राज्यों में कार्यरत कृषि विपणन बोर्डो में समन्वय स्थापित करना।
2. कृषि विपणन संबंधी समस्याओं का समाधान करना।
3. कृषि विपणन के क्षेत्र में संगोष्ठियाँ, कार्यशाला, सम्मेलन आयोजित करना ताकि समसामयिक विषयों पर सामूहिक परिचर्चा की जा सके।
4. मण्डीयों के विकास के लिए ऋण व्यवस्था को नियमित करना।
5. कृषि विपणन नीतियों का निर्माण, क्रियान्वयन एवं समीक्षा करना।
6. अखिल भारतीय स्तर पर कृषि विपणन संबंधी पाठ्य सामग्री तैयार करवाना।
7. अखिल भारतीय स्तर पर समंको का संकलन एवं डाटा बैंक बनाना।
8. देश में एवं देश के बाहर कार्यरत विदेशी कृषि विपणन संस्थाओं से संबंध स्थापित करना एवं आपसी समन्वय बनाये रखना।
9. कृषि विपणन के क्षेत्र में सलाहकारी सेवाएँ उपलब्ध कराना।
10. विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करवाने में सहयोग देना।

इस प्रकार कोसांब भारत में कृषि विपणन के क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। यह परिषद कृषि विपणन के क्षेत्र में राष्ट्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा स्थापित की गई विभिन्न समितियों के सदस्य के रूप में भी सक्रिय कार्य कर रही है।

राष्ट्रीय कृषि विपणन संस्थान -

कृषि विपणन व्यवस्था को राष्ट्रीय स्तर पर नियोजित तरीके से संचालित करने नीति निर्माण करने एवं कृषि विपणन से संबंधित समस्याओं का समाधान करने के उद्देश्य से 8 अगस्त 1988 को जयपुर में अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय विपणन की स्थापना की गई हैं संक्षेप में इसकी स्थापना के प्रमुख उद्देश्य निम्न है-

1. कृषि विपणन के क्षेत्र में नीति निर्माण एवं संबंधित समस्याओं का समाधान करना।
2. कृषि विपणन के क्षेत्र में आवश्यकतानुसार प्रशिक्षण प्रदान करना।
3. कृषि विपणन संबंधी अनुसंधान करके सामयिक परिवर्तक प्रभावी करना।
4. कृषि विपणन संबंधी समस्याओं के हल के लिए सलाहकारी सेवा प्रदान करना।
5. कृषि विपणन के क्षेत्र में नवीनतम प्रबंधकीय ज्ञान प्रदान करना।

वर्तमान में यह संस्था कृषि मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन एक स्वायत्तशाषी संस्था के रूप में कार्य कर रही है।

भारतीय मानक ब्यूरो -

सन् 1947 में उत्पाद गुणवता को सुनिश्चित करने उपभोक्ताओं को श्रेष्ठ किस्म की वस्तुयें उपलब्ध कराने एंव विदेशी व्यापार में गुणवता के स्तर को बनाये रखने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर भारतीय मानक संस्था की स्थापना की गई थी। भारतीय मानक ब्यूरों का नाम इसे। अप्रेल 1987 में दिया गया। इसके लिए भारतीय मानक ब्यूरों कानून 1986 निर्मित किया गया है। संक्षेप में भारतीय मानक ब्यूरों के कार्य निम्नलिखित हैं -

1. निर्दिष्ट एवं स्वीकृत मानकों की वस्तुआकें की सामयिक जाँच विशेषज्ञों द्वारा कराना।
2. निर्धारित मानको के अभाव में लाईसेंस निरस्त करना।
3. निर्मित उत्पादों का वर्गीकरण करके तद्रूप मानक तैयार करना।
4. न्यूनतम लागत पर उत्पादन हेतु उत्पादन विधि की खोज करना।
5. प्रयोगशाला जाँच के आधार पर निर्मित वस्तुओं को मानक प्रदान करना।
6. स्वदेशी वस्तुओं के मानकीकरण हेतु परीक्षण एवं जाँच करना।
7. निर्यातों को बढ़ावा देना।
8. अन्तर्रायष्ट्रीय मानक संस्थाओं से संबंध स्थापित करना।
9. उपभोक्ताओं में वस्तुओं के प्रति विश्वास उत्पन्न करना।
10. अंतर्राष्ट्रीय मानको एवं भारतीय मानक संस्था द्वारा निर्धारित मानको में समन्वय स्थापित करना।

वर्तमान में यह संस्था 9 परिषदों के माध्यम से कार्य कर रही है। मानक हेतु प का चिन्ह् अंकित किया जाता है। इस संस्था ने अब तक 1600 से अधिक मानक निर्धारित किये है। यह संस्था कृषि एवं खाद्यान्न, सिविल, इंजीनियरिंग, चिकित्सा उपकरण, इलेक्ट्रोनिक्स, मैकेनिकल, संवेष्ठन, रसायन सें संबंधित

वस्तुओं को प्रताप प्रदान करती है। केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा मानकीकृत वास्तुओं को खरीद में प्राथमिकता दी जाती है।

विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय :-

कृषि विपणन व्यवस्था को सुदृढ़ करने, कृषि उत्पादों के विपणन संबंधी जानकारी का प्रचार करने के उद्देश्य को ध्यान में रखकर कृषि रॉयल कमीशन, 1928 एवं केन्द्रीय बैंकिग जाँच समिति, 1931 की सिफारिशों के आधार पर केन्द्रीय सरकार ने 01 जनवरी 1935 को कृषि विपणन सलाहकार के कार्यकाल के रूप में नई दिल्ली में स्थापित किया था। प्रारंभ में इसकी स्थापना 5 वर्ष के लिए की गई थी। कालान्तर में इसका स्थायीकरण करके वर्ष 1947 में इसका नाम विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय कर दिया गया। सन् 1958 में इसके कार्यालय को नागपुर (महाराष्ट्र) में स्थानान्तरित कर दिया गया। वर्तमान में इसका मुख्यालय नागपुर में अवस्ति है। संक्षेप में विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय के प्रमुख कार्य निम्मलिखित हैं -

1. खाद्यान्न उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विभिन्न खाद्यान्नों का क्षेत्रफल निर्धारित करना।
2. मण्डी नियंत्रण के लिए सलाहकार के रूप में कार्य करना।
3. कृषि उत्पादों की मांग का अनुमान लगाना एवं पूर्ति के स्तर को ध्यान में रखकर सलाह देना।
4. कृषि उत्पादों की कीमतों का प्रचार-प्रसार विपणन सूचना सेवा के माध्यम से करना।
5. कृषि वस्तुओं के उत्पादकों को उचित कीमत प्राप्त कराने के प्रयास करना।
6. कृषि उत्पादों/खाद्यान्नों की कमी अथवा आधिक्य को ध्यान में रखकर संग्रहण हेतु भण्डार गृहों की स्थापना संबंधी सुझाव देना।
7. कृषि विपणन व्यवस्था की वर्तमान स्थिति की समीक्षा करना एवं समस्याओं के समाधान हेतु सरकार को प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।
8. कृषि विपणन अधिकारियों एवं मण्डी सचिव के प्रशिक्षण का कार्य करना।
9. कृषि उत्पादों के प्रमापीकरण हेतु श्रेणीयन करना।

विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय द्वारा नागपुर, हैदराबाद, चंडीगढ़ एवं लखनऊ में विपणन अधिकारियों मण्डियों के सचिवों एवं श्रेणीयन कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण हेतु प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गये है। कृषि उत्पादों एवं अन्य वस्तुओं की किस्म गुणवत्ता एवं शुद्धता की जाँच के लिए निदेशालय द्वारा एगमार्क प्रयोगशालाएँ मुंबई, कोलकाता चैन्नई, कोचीन, जामनगर, कानपुर, गुंटूर, बंगलौर, पटना, राजकोट, एवं साहिबाबाद में स्थापित की गई है। केन्द्रीय प्रयोगशाला, नागपुर द्वारा वस्तुओं में मिलावट की जांच भी की जाती है। इस निदेशालय द्वारा कृषि विपणन विषय पर पत्रिका का भी प्रकाशन किया जाता है। यह पत्रिका कृषि विपणन व्यवस्था से जुड़े विषयों पर सर्वेक्षण, अनुसंधान पर आधारित आलेख प्रकाशित करती हैं विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय द्वारा अखिल भातरीय स्तर पर समय-समय पर प्रदर्शनियाँ भी

लगाई जाती है। विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय द्वारा शीत संग्रहणालय, मण्डी नियमन एवं सहकारी विपणन पर भी सामयिक प्रतिवेदन प्रकाशित किये है।

संगठनात्मक स्वरूपः-

विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय में मुख्य अधिकारी कृषि विपणन सलाहकार होता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त कृषि विपणन सलाहकार, उप कृषि विपणन सलाहकार, वरिष्ठ विपणन अधिकारी एवं अन्य प्रशासनिक अधिकारी कार्य करने है। निदेशालय के मुख्यालय के अतिरिक्त चार क्षेत्रीय कार्यालय भी हैं जिनका प्रबंध एवं नियंत्रण वरिष्ठ विपणन अधिकारी के अधीन होता है। इसके अतिरिक्त उप कार्यालयों में उप वरिष्ठ विपणन अधिकारी विपणन अधिकारी, सहायक विवणन अधिकारी एवं वरिष्ठ निरीक्षणकर्ता कार्य करते है। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यो एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में राज्य कृषि विपणन विभाग द्वारा कृषि वस्तुओं के विपणन सम्बन्धी कार्य किये जाते है। राज्यों में कृषि विपणन विभाग विपणन अधिकारी अथवा कृषि विपणन निदेशक के मार्गदर्शन में कृषि विपणन व्यवस्था का उत्तरदायित्व वहन करते है।

सहकारी विपणन व्यवस्था -

भारत में कृषि विपणन व्यवस्था का एक स्वरूप सहकारी विपणन है। सहकारी विपणन के रूप में भारत में कृषि उत्पादों का विपणन किया जाता हैं कुछ राज्यों जैसे आध्रप्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, गुजरात, मणिपुर, महाराष्ट्र, पंजाब, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु एवं पाण्डिचेरी में त्रिस्तरीय ढ़ांचा- मण्डी, जिला एवं राज्य स्तर विद्यमान है। इसके अतिरिक्त भारत में अन्य राज्यों में द्विस्तरीय ढांचा एवं राज्य स्तर विद्यमान है। भारत में सहकारी विपणन समितियों का ढाँचा स्तूपाकार है। इसको निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

अ. **मण्डी स्तर** - ग्राम/तहसील स्तर पर प्राथमिक सहकारी विपणन समितियों के रूप में कृषि उत्पादों का क्रय-विक्रय किया जाता है। ये समितियाँ सामान्य एवं विशिष्ट उत्पाद के आधार पर कार्य करती है। ग्राम/तहसील क्षेत्र के निवासी कृषकक इन समितियों के सदस्य होते है।

ब. **जिला स्तर-** जिला स्तर पर कृषि सहकारी विपणन का कार्य केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियाँ/संघ द्वारा किया जाता है। ये समितियाँ प्राथमिक सहकारी विपणन समितियों द्वारा एकत्रित किये गये खाद्यान्नों का विक्रय करती है। इनके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार उन्हे ऋण/वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती है।

स. **राज्य स्तर-**राज्य स्तर पर शीर्ष सहकारी विपणन समितियाँ जिला स्तर एवं ग्राम/तहसील स्तर की सहकारी विपणन समितियों द्वारा एकत्र किये गये खाद्यान्नों को बेचने एवं आवश्यक होने पर ऋण सुविधा उपलब्ध कराती हैं। शीर्ष सहकारी विपणन समितियों में प्राथमिक एवं जिला स्तर समितियों के अतिरिक्त, राज्य के कृषक भी सदस्य माने जाते है।

वर्तमान में देश में 31 राज्य सहकारी विपणन संघ एवं 388 जिला सहकारी विपणन संघ कार्यरत है। भारत में ये सहकारी संघ कृषि उत्पादों का विपणन कर रहे है।

राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ-

भारत में कृषि उत्पादों के विपणन के लिए सहकारी स्तर पर शीर्ष संस्था की स्थापना 2 अक्टूबर 1958 को राज्य स्तरीय सहकारी विपणन संघो द्वारा की गई थी। इस संस्था का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित हैं संक्षेप में राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ निम्नलिखित कार्य करता है-

1. कृषि उत्पादों की प्रतिस्पर्धात्मक कीमत कृषि उत्पादकों को दिलाने में सहायता करना।
2. तिलहन, दलहन एवं मोटे अनाजों को न्यूनतम समर्थन कीमत पर सरकार की एजेन्सी के रूप में क्रय करना।
3. कृषि विपणन के क्षेत्र में शोध, अनुसंधान एवं सर्वेक्षण करना।
4. फलों एवं सब्जियों की संग्रहण सुविधा का विकास करना।
5. कृषि उत्पादों के विपणन हेतु सलाहकारी सेवायें प्रदान करना।
6. कृषकों के व्यापक हित में कृषि यंत्र, उपकरण, रासायनिक उवर्रक का आयात करना।
7. प्याज, गुड़, अदरक एवं आलू के विपणन में सहयोग करना।
8. कृषि उत्पादों के आयात एवं निर्यात का कार्य करना।
9. कृषि उत्पादों के राष्ट्रीय स्तर पर विपणन कार्य को प्रभावी तरीके से करना।

वर्तमान में नाफेड द्वारा खाद्यान्न, दालों, मसाले, तिलहन, फल, सब्जी अण्ड, उर्वरक, कृषि उपकरण एवं कीटनाशी दवाईयों का क्रय-विक्रय किया जाता है। नाफेड द्वारा प्याज, अदरक, तिल, लहसुन, आलू, मूंगफली, बिनौला, सोयाबीन खली, फल एवं सब्जी, इलायची, गौंद, चावल जूट उत्पाद का निर्यात उपलब्धता के आधार पर किया जाता है। इसी प्रकार सूखे मेवों, जाय फल, मसालों दालो का आवश्यकतानुसार आयात किया जाता है।

फलों एवं सब्जियोंका विपणन-

भारत में फलों एवं सब्जियों का उत्पादन 160 मिलियन टन से भी अधिक होता हैं। किन्तु फलों एवं सब्जियों का विपणन संपूर्ण भारत में एक समान नहीं हैं कुछ राज्यों जैसे महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान कर्नाटक एवं दिल्ली में नियंत्रित तरीके से फलों एवं सब्जियों का विपणन किया जाता है। फलों एवं सब्जियों का तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, जम्मू-कश्मीर राज्य में विपणन अनियंत्रित है। भारत में अधिकांशत फलों एवं सब्जियों का विपणन थोक संग्रहण बाजार एवं सीमान्त बाजारों के माध्यम से होता है। भारत में फलों एवं सब्जियों की कीमते मांग एवं पूर्ति के द्वारा र्निर्धारित होती है। फलों एवं सब्जियों के विपणन की दृष्टि से भारत में दिल्ली, कोलकाता, मुबंई, चैन्नई, बैंगलौर, जयपुर, नागपुर, पूना, वाराणसी, लखनऊ एवं हैदराबाद जैसे शहर अग्रिम पायदान पर है।

विशेष चिन्हों का प्रयोग -

एफ.पी.ओ. चिन्ह् -

फलों एवं सब्जियों के प्रसंस्करित उत्पाद पर भारत सरकार के खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय द्वारा चिन्ह अंकित किया जाता है। यह चिन्ह् उत्पाद की गुणवता एवं श्रेष्ठ उत्पाद प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है। फलों

एवं सब्जियों के प्रसंक्रण पर आधारित उत्पादों पर यह चिन्ह् लगाया जाता है ताकि उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा की जा सके। एफ.पी.ओ. का पूरा नाम फ्रुट प्रॉडक्टस आर्डर से है। एफ.पी.ओ. चिन्ह् निम्न प्रकार का होता है -

शाहाकारी एवं मांसाहारी उत्पाद के लिए विशेष चिन्ह्-

वर्तमान में शाहाकारी अथवा मांसाहारी खाद्य पदार्थो के पैकिंग पर विशेष चिन्ह् अंकित करना पड़ता है। इस हेतु खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम, 1955 में सन् 2002 में आवश्यक संशोधन कर दिया गया है। सम्पूर्ण भारत में यह चिन्ह् अनिवार्यतः अंकित करना पडता है। शाकाहारी उत्पाद के लिए हरा रंग तथा मांसाहारी उत्पाद के लिए भूरा रंग चिन्ह् अंकित करने हेतु काम में लिया जाता है। यह चिन्ह् निम्न प्रकार का होता है-

इकामार्क का प्रयोग -

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा सन् 1992 में 'इकोमार्क' चिन्ह् प्रदान करने की योजना प्रारंभ की गई है। यह चिन्ह् उन उत्पादों को प्रदान किया जाता है जो पर्यावरण को हानि नहीं पहुंचाता है। वे उत्पाद जिनकी उत्पादन प्रक्रिया में पर्यावरण का ध्यान रखा जाता है एवं पर्यावरण संबंधी कानूनों का ध्यान रखा जाता है उन्हें 'इकोमार्क' चिन्ह् प्रदान किया जाता है। संक्षेप में पर्यावरण हितैषी उत्पादों को 'इकोमार्क' चिन्ह् दिया जाता है।

7.9 सारांश

भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् देश में कृषि उत्पादन की मात्रा में तकनीक के प्रयोग के कारण वृद्धि हुई है किन्तु कृषको को इस उत्पादन वृद्धि का लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब इन कृषि उत्पादों की विपणन की सृदृढ़ एवं सुव्यवस्थित व्यवस्था उपलबध हो। सुदृढ़ विपणन व्यवस्था के अभाव में उत्पादित खाद्यान्न एवं अन्य वस्तुएँ उपभोक्ताओं तक सही समय पर सही कीमत में नही पहुँच पाती है। देश के आर्थिक विकास, गरीबी उन्मूलन, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि एवं मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण के लिए कृषि उत्पादों की कुशल एवं सुव्यवस्थित विपणन प्रणाली होनी चाहिये। भारतीय कृषि उत्पादों की विपणन व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए विपणन प्रक्रिया की जोखिम को कम किया जाना परमआवश्यक हैं विपणन जोखिम को कम करने के लिए कानूनी संरक्षण, एकीकरण, बीमा को अपनाया जा सकता है।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

- B.M. Bhatia; India's Food Problem and Polciy since Independernce Somaiya Publications, Bombay.
- G.D. Agarwal K P.C. Bansal; Economic Problems of Indian Agriculture; Vikas Publications, New Delhi.
- C.K. Sharma, Agricultaral Development in India. Vikas Publishing House, New Delhi.

इकाई – 8

कृषि उत्पादों की सहकारी विपणन व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 सहकारी विपणन समितियों के मुख्य कार्य
8.3 सहकारी विपणन समितियों का ढांचा
8.4 सहकारी विपणन समितियों से कृषकों को लाभ
8.5 सहकारी विपणन-समितियों की प्रगति
8.6 राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (नाफेड)
8.7 राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम
8.8 राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ
8.9 राज्यस्तरीय सहाकारी विपणन संस्थाएँ
8.10 सारांश
8.12 सदर्भ ग्रंथ

8.0 उद्देश्य

वर्तमान में कृषि उत्पादों के विपणन की मुख्य समस्या है। कृषकों को उनके उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। इस कार्य में मुख्य रूप से व्यक्तिगत संस्थाओं का ही अधिक योगदान है। ये संस्थाऐं विपणन हेतु अधिक शुल्क लेती है तथा इनकी नीतियां भी दोषपूर्ण होने से कृषकों को उचित लाभ नहीं मिलता है। किसानों को उचित लाभ देने हेतु सरकार द्वारा सहकारी विपणन समितियों को स्थागित किया गया।

8.1 प्रस्तावना

सहकारी (सहकारिता) एवं विपणन शब्दों के समन्वय शब्द बना है। सहकारिता शब्द लेटिन भाषा के दो शब्दों के समन्वय से बना है। शब्द का अर्थ कार्य करने एवं शब्द का अर्थ साथ साथ है। अत: शब्द का शाब्दिक अर्थ साथ साथ अथवा सम्मिलित रूप से कार्य करने से है। सहकारिता से सामान्य भाषा से तात्पर्य व्यक्तियों की उस संस्था से है, जिसमें सदस्य साथ साथ कार्य करके निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति करते है। सहकारिता का क्षेत्र विस्तृत होता है।

सहकारी विपणन में दूसरा शब्द विपणन है। इस शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के शब्द मारकेटस से हुआ है। मारकेटस का अर्थ व्यापार करने अथवा क्रय विक्रय की प्रणाली से है। अत: सहकारी विपणन सहकारिता के सिद्धान्तों का उत्पादों के विपणन के क्षेत्र में उपयोग करने की विधि है। सहकारी विपणन

हेतु एक या अनेक विपणन कार्य सम्पन्न करने से है। दूसरे शब्दों में सहकारी विपणन उत्पादकों द्वारा स्वयं अपने उत्पादों को विक्रय करने से है, जिसमें उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के मध्य पाये जाने वाले मध्यस्थों की लम्बी श्रृंखलाओं को कम करके उत्पादकों को अपने उत्पादों की अधिकतम कीमत दिलाना है।

8.4 सहकारी विपणन समितियों के मुख्य कार्य

सदस्यों के उत्पादित कृषि उत्पादों को उचित मूल्य पर विक्रय करना सदस्यों के उत्पाद विक्रय के पूर्ण संग्रहण उपलब्ध कराने की व्यवस्था करना सदस्यों के उत्पाद के श्रेणीकरण एवं मानकीकरण की व्यवस्था करना जिससे उत्पादक कृषकों को अच्छी गुणवता के उत्पाद का अधिक मूल्य प्राप्त हो सके । सदस्यों की उप्ताद की प्रतिभूति के आधार पर ऋण सुविधा उपलब्ध कराना। सदस्यों के उत्पादों को संग्रहित करना जिससे लद्यु कृषकों के उत्पादों की परिवहन लागत कम होने के साथ साथ सहकारी विपणन लागत कम होने के साथ साथ सहकारी विपणन समितियों के व्यवसाय में वृद्धि हो सके। कृषकों के लिये खाद्यान्न के निर्यात की व्यवस्था करना जिससे उनको अधिक आय प्राप्त हो सके । कृषकों के काम में आने वाले आवश्यक उत्पाद साध्नों जैसे उर्वरकों, कीटनाशी, दवाईयां, उन्नत बीज एवं कृषि यंत्रों की पूर्ति समय पर एवं उचित मूल्य पर करना।

सरकार की खाद्यान्न वसूली एवं कीमत समर्थननीति को कार्यान्वित करने के लिये माध्यम के रूप में कार्य करना।

सहकारी विपणन समितियां -

वर्तमान में कृषि पद्धति में पाये जाने वाले दोषों को दूर करने का एक मात्र उपाय सहकारी विपणन समितियों की स्थापना करना है। इन समितियों का मुख्य उद्देश्य कृषकों की उपज को सामूहिक से विपणन करके उनको उपज का उचित मूल्य प्रदान करना है। बेकन एवं सचार्स के अनुसार ''सहकारी विपणन समितियां किसानों द्वारा उत्पादित उपज के सामुहिक रूप से विक्रय के लिये स्थापित ऐच्छिक संस्थाऐं है। समितियों का संचालन प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों के आधार पर होता है और प्राप्त शुद्ध लाभ किसानों में खाद्यान्नों की विक्रीत मात्रा के अनुपात में वितरित किया जाता है। सदस्य ही समितियों के स्वामी, उत्पादों की पूर्ति करने वाले एवं लाभ के प्राप्त कर्ता होते है सहकारी विपणन समितियों में किसी प्रकार के मध्यस्थ न ही होते हैं।'

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के अनुसार '' सहकारी विपणन संस्थान कृषकों को सहकारी संस्था है। जो प्रारम्भिकरूप से सदस्यों की मदद करने हेतु जिससे उनके उत्पादकों को उचित दाम पर विक्रय हेतु बनी होती है। सदस्यों को उचित लाभ मिल सकें।'

खाद्य एवं कृषि संस्थम के अनुसार ''सहकारी विपणन समिति कुछ किसानों का एक समूह है जो कि एक श्रृंखला के रूप में कुछ या सभी कार्यों को करने के लिये संग्रहित होते है। ताकि उनके उत्पाद्द उचित दामों पर उपभोक्ता तक पहुंच सकें।''

व्यापार पद्धति सहकारी विपणन समितियों की व्यापार पद्धति तीन प्रकार की होती है -
सहकारी विपणन समितियों द्वारा आढ़तियों के रूप में कार्य करना एवं कृषकों द्वारा लाये गये उत्पादों को अधिक दाम देने वाले व्यापारियों को विक्रय करके आढ़त प्राप्त करना।
सहकारी विपणन समितियों द्वारा खाद्यान्न के संग्रहण, परिवहन, श्रेणीकरण, ऋण उपलब्धि एवं नियति सुविधाऐं
उपलब्ध कराना तथा प्रदान की गई सेवाओं के लिये लागत एवं लाभ प्राप्त करना।
सहकारी विपणन समितियों द्वारा खाद्यान्नों का क्रय करना एवं किये गये उत्पाद को उचित कीमत आने पर विक्रय कर लाभ कमाना।

सदस्यता

सहकारी विपणन समितियों के सदस्य दो प्रकार के होते है -
साधारण सदस्य - व्यक्तिगत कृषक, सहकारी कृषि समितियों सेवा समितियां इत्यादि सदस्य बन सकते है। इन्हें सरकारी विपणन समितियों की कार्य प्रणाली में भाग लेने के सभी अधिकार प्राप्त होते है तथा यह लाभांश में भी हिस्सेदार होते है।

नियुक्त सदस्य

व्यापारी वर्ग जिनमें सहकारी विपणन समिति से संबंध होता है वे भी इस समिति के नाम के सदस्य या नियुक्त सदस्य बन सकते है। इन्हें सहकारी विपणन समितियों की कार्य प्रणाली में भाग लेने का अधिकार प्राप्त नहीं होता है।

पूंजी का स्रोत -

सन 1966 में दांतेवाला समिति ने आधारभूत पूंजी 2.00 लाख रूपये रखी थी जिसको सन 2003 में कीमतें बढ़ने पर 40.00 लाख रूपये कर दिया गया सहकारी विपणन समितियों के वित्त स्रोत निम्न है -
हिस्सा पूंजी सहकारी विपणन समिति सदस्यों को समिति के शेयर विक्रय करके पूंजी एकत्रित करती है।
ऋण – केन्द्रीय सहकारी बैंक एवं स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से ऋण प्राप्त करके सहकारी समितियां अवश्य पूंजी राशि एकत्रित करती है।
वित्तीय सहायता - सहकारी विपणन, सरकार के प्रथम तीन वर्षों में श्रेणीकरण की मशीने लगाने, परिवहन-साधों के क्रय करने आदि कार्यों के लिये आवश्यक अतिरिक्त लागत राशि को पूरा करने के लिए सरकार से वित्तीय सहायता प्राप्त करके भी पूंजी एकत्रित करती है।

8.5 सहकारी विपणन समितियों का ढांचा

सहकारी विपणन समितियों का ढांचा स्तूपाकार अर्थात तीन स्तरीय होता है जो निम्न प्रकार है -
ग्राम/तहसील/मण्डी स्तर पर :
ग्राम या तहसील स्तर पर सहकारी विपणन समितियां, प्रारम्भिक सहकारी विपणन समितियों के रूप में कृषि उत्पादों के क्रय विक्रय का कार्य करती है। इनके सदस्य उस क्षेत्र में रहने वाले कृषक होते है तथा समितियां एक या अनेक उत्पादों में क्रय विक्रय का काम करती है।

सदस्य (52.69 लाख)

सामान्य उद्देश्य प्राथमिक सहकारी विपणन समितियां **(4960)**

विशिष्ट उत्पाद की प्राथमिक सहकारी विपणन समितियां **(5560)**

जिला/केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियां (368)

राज्य विशिष्ट उत्पाद विपणन संघ (31)

राज्य सहकारी विपणन संघ (22)

राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (नाफेड)

टिप्पणी – कोष्ठक में दिये गये आंकड़े उनकी वर्तमान कार्यरत संख्या है।

- प्राथमिक सहकारी विपणन समितियां दो प्रकार की होती है। सामान्य उत्पाद सहकारी समितियां – ये सभी प्रकार के उत्पादों में व्यापार करती है।
- विशिष्ट उत्पाद सहकारी समितियां – ये समितियां क्षेत्र के अनुसार विशिष्ट उत्पादों जैसे गन्ना, कपास , दूध आदि उत्पादों में ही व्यापार करती है।

जिला स्तर पर -

जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी विपणन समितियां अथवा संघ होते है, जिनका प्रमुख कार्य प्राथमिक सहकारी विपणन समितियां द्वारा लाये गये खाद्यान्नों की विक्रय करना एवं उन्हें ऋण सुविधा उपलब्ध कराना है। इन समितियों के सदस्य जिले के कृषक एवं प्राथमिक विपणन समितियां होती है।

राज्य स्तर पर -

राज्य स्तर पर होने वाली शिखर सहकारी विपणन समितियां, जिला स्तर की सहकारी विपणन समितियां एवं प्राथमिक सहाकरी विपणन समितियां के द्वारा लाये गये खाद्यान्नों को विक्रय करने एवं आवश्यक ऋण सुविधा उपलब्ध कराने में व्यवस्था करती है। प्राथमिक एवं जिला स्तर की सहकारी विपणन समितियां के अतिरिक्त राज्य के कृषक भी इसके सदस्य होते है।

सहकारी विपणन समतियों का ढांचा आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मणिपुर,

पंजाब, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश एं पांडिचेरी राज्योंमें तीन स्तरीय ग्राम जिला एवं राज्य स्तर का होता है। अन्य राज्यों में इसका ढांचा दो स्तरीय – मंडी /ग्राम एवं राज्य स्तर का होता है।

सहकारी विपणन समितियों के प्रकार :

क्रय विक्रय किए जाने वाले उत्पादो की संख्या के अनुसार सहकारी विपणन समितियों तीन प्रकार की होती है।

(i) एकल उत्पाद सहकारी विपणन समितियाँ :

यह समितियाँ कृषकों द्वारा उत्पादित एक कृषि उत्पाद के विपणन का कार्य करती है क्योकि इनको एक ही उत्पाद के विपणन से विस्तृत व्यापार मिल जाता है। उदाहरण -गन्ना सहकारी विपणन समिति, कपास सहकारी विपणन समिति, तिलहन उत्पादको की सहकारी विपणन समिति।

(ii)बहुउत्पाद सहकारी विपणन समितियाँ :

ये समितियाँ कृषकों द्वारा उत्पादित अनेक कृषि उत्पादों के विपणन का कार्य करती है जैसे खाद्यान्न तिलहन, कपास,मसाले इत्यादि। देश में बहु-उत्पाद सहकारी विपणन समितियाँ अधिक संख्या में पाई जाती है।

(iii)बहु-उद्देषीय,बहु-उत्पाद सहकारी विपणन समितियाँ :

ये समितियाँ कृषकों के यहाँ उत्पादित अनेक कृषि उत्पादों के विपणन के अतिरिक्त अन्य कार्य जैसे सदस्यों को ऋण उपलब्ध कराना, उत्पादन साधन उपलब्ध कराना, घरेलू उपभोग की वस्तुओ की पूर्ति करने का काम जैसे अन्य कार्य भी करती है।

8.4 सहकारी विपणन समितियों से कृषकों को लाभ

कृषि उत्पादो की प्रति इकाई भार विपणन लागत में कटौती करती है, जिससे कृषकों को उत्पादो के विक्रय से उपभोक्ता द्वारा दिये गये रूपये में अधिक अंष प्राप्त होता है।

- कृषकों को उत्पाद के संग्रह के लिये भण्डार गृह सुविधा उपलब्ध कराती है, जिससे कृषक कीमतों के उचित स्तर पर आने तक अपने उत्पाद को कम लागत पर संग्रहित कर सकते हे।
- कृषकों के उत्पादो के श्रेणीकरण, संवेष्टन एंव परिवहन सेवा सस्ती दर पर उपलब्ध कराती है।
- कृषकों को आवश्यक उत्पादन साधन जैस उर्वरक,बीज कीटनाषी दवाईयाँ, नियत कीमतो एवं समय पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था करती है।
- कृषकों में सहकारिता की भावना उत्पन्न करती है जो आर्थिक एवं सामाजिक विकास में सहायक होती है।
- विपणन समितियाँ कृषकों को कम ब्याज दर पर आवश्यक राषि में ऋण सेवा उपलब्ध कराती है।
- सहकारी विपणन समितियाँ के माध्यम से उत्पादों के क्रय-विक्रय करने से कृषकों की क्रय-विक्रय शक्ति में सुधार होता है।

- सहकारी विपणन समितियाँ कृषकों को विपणन सम्बंधित समस्याओं को सुलझाने के लिये आवश्यक सुझाव देती है, जिससे कृष्क लाभान्वित होते है।
- सहकारी विपणन समितियों के माध्यम से उत्पादों के क्रय-विक्रय करने से विपणन पद्वति में पाई जाने वाली अनेक कुरीतियों के षिकार होने से कृषक रक्षित हो जाते है।

सहकारी विपणन की संगठित विधि :

सहकारी विकास हेतु सहकारी विणन की संगठित विधि में ऋण उपलब्धि,विपणन, संसाधन, संग्रहण एंव भण्डारण व्यवस्था को एक साथ सम्मिलित किया जाता है। इसके होने से कृषकों को दिया जाने वाला ऋण, कृषि उत्पादों को विक्रय करके सीधे हो प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार कृषि उत्पादो को संसाधित करके विक्रय करने से उत्पाद के विपणनकर्ता को अच्छी कीमत प्राप्त होती है।

इस प्रकार से सहकारी विपणन विकास करने से उत्पादको एवं उपभोक्ताओं को लाभ प्राप्त होने के साथ-साथ देश मे सहकारिता का भी विकास हो रहा है।

8.5 सहकारी विपणन-समितियों की प्रगति

देश मे वर्ष 1960-61 में 3108 प्राथमिक कृषि सहकारी विपणन समितियाँ कार्यरत थी, जो बढ़कर वर्ष 1970-71 में 3222,वर्ष 1980-81 में 3789, वर्ष 1990-91 में 7660 एवं वर्ष 2002-03 में 10520 हो गई। इनमें से 5560 प्राथमिक कृषि सहकारी विपणन-समितियाँ विशिष्ट उत्पादों में ही व्यापार करती है। राज्य-स्तर पर 31 विपणन संघ कार्य कर रहे है। इनके अतिरिक्त राज्य स्तर पर दो फल एंव सब्जी विपणन-संघ (गुजरात एवं देहली में), एक गन्ना पूर्ति विपणन-समिति एवं तीन विशिष्ट कृषि-उत्पादों की विपणन समितियाँ राज्य स्तर पर कार्यरत है। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय कृषि सहाकरी विपणन संघ (नाफेड) कार्यरत है।

सारणी सहकारी विपणन एवं संसाधन समितियों की प्रगति एवं उनके द्वारा विभिन्न वर्षों में किया गया व्यापार दर्षाती है।

सारणी **1:** भारत में सहकारी-विपणन एवं सहकारी
संसाधन समितियों की प्रगति एवं किया गया व्यापार

विवरण	**1960-61**	**1970-71**	**1980-81**	**1990-90**	**2002-03**
1प्राथमिक कृषि सहकारी विपणन-समितियाँ (अ) समितियाँ की संख्या (ब) सदस्य संख्या (लाख)	3108 13.93	3222 26.71	3789 34.51	7660 49.79	10520 52.69
2 सहकारी विपणन-समितियों द्वारा विक्रीत कृषि-उत्पादों का मूल्य	179	649	1950	6504	13526.7
3 सहकारी विपणन-समितियों द्वारा	36	917	1114	2475	4921.6

विक्रीत उत्पादन-साधन का मूल्य					
4 सहकारी विपणन-समितियों द्वारा उपभाक्ताओं को ग्रामीण क्षेत्रों में वितरित उत्पादों का मूल्य	NA	NA	NA	2725	2657.8
5 सहकारी क्षेत्र में स्थापित चीनी कारखाने (संख्या)	56	103	179	263	313
6 सहकारी कपास जिनिंग एवं संसाधन समितियों की संख्या	155	234	327	130	159

स्रोत :- (i) Indian Agriculture in Brief Various Issues, Directorate of Ecomomiccs and Statistics, Goverment of India, New Delhi.

(ii) Eight Five Year Plan 1992-97, Planning Commission, Government of India, New Delhi.

(iii) Indian Cooperative Movement-A Profile 2004, National Cooperative Union of India, New Delhi, June 2004,p31.

सहकारी विपणन समिति ने व्यापार के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति की है। यह समितियाँ, कृषकों के उत्पादो के क्रय के अतिरिक्त उन्हें आवश्यक उत्पादन-साधन प्रमुखतया उर्वरक तथा उपभोक्ता वस्तुओं जैसे-चीनी,कपड़ा,तेल,चावल आदि की पूर्ति का कार्य भी करती है।

वर्ष 1960-61 में सहकारी विपणन समितियों ने 179 करोड़ रूपयो के कृषि-उत्पाद विक्रीत किये थें जो बढ़कर वर्ष 1980-81 मे 1950करोड़ रूपए एवं वर्ष 2002-03 में 13526.7 करोड़ रूपये के स्तर तक पहुँच गए। कृषि उत्पादो में विक्रीत मुख्य फसलें खाद्यान्न, गन्ना, कपास, तिलहन, बागान वाली फसलें फल एवं सब्जी हैं। सहकारी विपणन समितियाँ कृषि उत्पादो के व्यापार के अतिरिक्त कृषि-उत्पादन-साधनों एवं गा्रमीण क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं के वितरण का कार्य भी करती है। इन समितियों ने वर्ष 1960-61 में 36 करोड़ रूपयें मूल्य के उत्पादन साधन कृषकों को उपलब्ध कराये थे, जो बढ़कर वर्ष 2002-03 में 4922 करोड़ रूपये मूल्य स्तर तक पहुँच गए। सहकारी समितियाँ अपने 70,000 खुदरा बिक्री केन्द्रो द्वारा कृषकों को उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाषी दवाइयाँ एवं कृषि औजार उपलब्ध करा रही है। सहकारी क्षेत्रों में पंजीकृत चीनी के कारखानो एवं कपास जिनिंग एवं संसाधन समितियों की संख्या में भी निरन्तर वृद्वि हुई है।

राष्ट्रीय कृषि आयोग, 1976 ने अपने प्रतिवेदन में लिखा है कि प्राथमिक सहाकरी विपणन समितियाँ जो मुख्यतया तालुका स्तर पर है, कृषकों के उत्पादो के विक्रय तथा संग्रहण के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रही है। वर्तमान में इनकी शाखाएं प्राथमिक मण्डियों तथा गौण मण्डियों में नही होने के कारण इन क्षेत्रों के उत्पादों के विक्रय में इनका सीधा हाथ नहीं है। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने सिफारिष की है। कि कृषक सेवा समितियाँ इन क्षेत्रों में विपणन-समितियों का कार्य करें।

कृषि विपणन एवं निरीक्षण निदेषालय, भारत सकार के सर्वेक्षण परिणामों से स्पश्ट है कि देश में कृषकों द्वारा विक्रीत उत्पादों का 75.3 प्रतिशत धान एवं 81.3 प्रतिशत गेहूँ व्यापरियों के माध्यम से विक्रय किया जाता है। सहकारी समितियों के माध्यम से 4 प्रतिशत धान एवं 5 प्रतिशत गेहूँ का विक्रय ही होता है।

राज्य एवं जिला सहकारी विपणन संघ की प्रगति सारिणी 2 में प्रदर्शित है -

सारिणी 2राज्य एवं जिला स्तर के सहकारी विपणन संघ

विवरण	राज्य स्तर सहकारी विपणन संघ		जिला स्तर सहकारी विपणन संघ	
	1999-2000	2000-01	1999-2000	2000-01
1. संख्या	31	31	394	388
2. सदस्य संख्या (लाख में)	1.028	1.178	33.343	32.906
3. हिस्सा पूँजी (करोड़ रू.)	306.69	331.37	72.68	80.33
4. कार्यषील पूँजी (करोड़ रू.)	3149.52	5551.74	1044.55	1487.30
5. व्यापार टर्नओवर (करोड़ रू.)	8328.57	13245.49	3337.67	3087.03
6. विक्रीत कृषि-उत्पाद (करोड़ रू.)	3749.34	4268.14	2277.00	2108.65
7. विक्रीत उत्पादन-साधन (करोड़ रू.)	3507.88	3652.39	1305.36	689.53
8. उपभोक्ता वस्तुओं का वितरण (करोड़ रू.)	1490.11	1499.91	135.60	137.29

स्रोत : Indian Cooperative Movement-A Profile, 2004, National Cooperative Unioin of India, New Delhi, June, 2004,p.33.

देश में 31 राज्य सहकारी विपणन संघ एवं 388 जिला सहकारी विपणन संघ कार्यरत है। इनके द्वारा किया जा रहें व्यापार में निरन्तर वृद्धि हुई है। यह सहकारी संघ कृषि-उत्पादों व कृषि उत्पादन साधनों का विपणन एंव उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुओं के वितरण का कार्य करते है।

सहकारी विपणन-समितियाँ की प्रगति देश के सभी राज्यों ने समान नहीं है। पंजाब,महाराष्ट्र , उत्तर प्रदेश आन्ध्र प्रदेश, एवं तामिलनाडु राज्यों में 75 प्रतिशत खाद्यान्न सहकारी विपणन-समितियों केमाध्यम से विक्रय किये जाते है। महाराष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश राज्यों में 754 प्रतिशत गन्ना,गुजरात एवं महाराष्ट्र राज्य में 74 प्रतिशत कपास एवं कर्नाटक राज्य में 4 प्रतिशत बागान वाली फसलों का विपणन सहकारी विपणन-समितियों के माध्यम से होता है।

सहकारी विपणन - समितियों की प्रगति में बाधक कारक :

सहकारी विपणन समितियों के द्वारा कृषकों को अनेक लाभ प्राप्त होते हुए भी देश में सहकारी विपणन समितियों की विभिन्न क्षेत्रों में आषातीत प्रगति नहीं हुई है। अनेक राज्यों में सहकारिता के क्षेत्र में प्रगति निराषाजनक है। सहकारिता के विकास में बाधक कारकों के निम्न दो वर्गो में विभक्त किया जाता है।

(i)**कृषकों की ओर से बाधक कारक**:

- कृषक वित्तीय आवष्कताओं के कारण खाद्यान्नों का विक्रय शीघ्र करना चाहते है। गाँव से सहकारी विपणन समितियों के माध्यक से खाद्यान्न विक्रय न करके गाँव में साहूकारों/आढ़तियों के द्वाराही विक्रय करते है।
- परिवहन सुविधाओं की अपर्याप्तता के कारण कृषक उत्पादित उपज को तहसील एवं मण्डी क्षेत्र में स्थित सहकारी विपणन समितियों तक ले जाने में असफल होते है।
- सदस्य कृषकों सहकारी विपणन समितियों के प्रति लगाव नहीं होने के कारण सहकारी विपणनप समितियों के सदस्य होते हुए भी उनके माध्यम से उत्पादन के विपणन में उत्सुक नहीं होते है।
- सदस्य कृषकों में आपसी वैमनस्यता होने से अनेक सदस्य कृषक सहकारी विपणन-समिति के प्रति उदासीन होतेहै।
- सदस्यों को सहकारी क्षेत्र के उद्यमों में विष्वास नहीं होता है, क्योंकि अधिकतर सहकारी उद्यमों में हानि होती है। इसका प्रमुख कारण सहकारी समितियों के कार्यकर्ताओं द्वारा कार्य सुचारू रूप से नहीं करना है।
- कृषक,व्यापारियों के ऋणी होते है। साथ ही उनके साहूकारों से व्यक्तिगत सम्बन्ध भी होते है, जिनके कारण कृषक सहकारी विपणन समितियों के सदस्य होते हुए भी खाद्यान्नों के विक्रय में साहूकारो को प्राथमिकता देते है।
- विविधीकृत कृषि प्रणाली को अपनाये जाने के कारण अनेक उत्पादों के विक्रय अधिशेष की मात्रा कृषकों के यहाँ कम होती है, जिनके कारण भी कृषक उत्पादों को सहकारी विपणन समितियोंके माध्यम से विक्रय करने में इच्छुक नहीं होते है।

(ii) **सहकारी विपणन समितियों की ओर से बाधक कारक**:

- सहकारी विपणन समितियों के कर्मचारियों में व्यावसायिक योग्यता का अभाव एवंकर्मचारियों का प्रशिक्षित नहीं होना, जिनके कारण वे विपणन कार्य को सुचारू रूप से नहीं कर पाते है।
- सहकारी विपणन समितियों के पास खाद्यान्न संग्रहण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं होने से कृषकों के द्वारा लाए गए खाद्यान्नों को शीघ्र विक्रय करने का प्रयास करतें है। ऐसा करने से पूर्ति की अधिकता की अवस्था में उचित कीमत प्राप्त नहीं होती है।
- सहकारी विपणन समितियों के पास कृषकों द्वारा लाए गए उत्पादों की सम्पूर्ण मात्रा को क्रय करने के लिए पर्याप्त पूँजी का अभाव होता है।

- सहकारी विपणन कार्यालय मण्डी क्षेत्र एवं कृषकों के गाँव से दूर होते है, जिससे कृषकों को परेषानियां होती है।
- सहकारी विपणन समितियों के कार्यकर्ताओं का कृषकों की अपेक्षा व्यापरियों की ओर अधिकझुकावहोता है। अत: कृषक सहकारी विपणन-समितियों के प्रति उदासीन रहते है।
- सहकारी विपणन समितियाँ, व्यापरियों से स्पर्धा करने में सक्षम नहीं होती है। सभी क्षेत्रों में सहकारी विपणन एवं सहकारी रिण समितियों में समन्वय नहीं होने से कृषकों को परेषानियाँ होती है

(iii) **सहकारी विपणन समितियों के लिए सुझाव**:-

- सहकारी विपणन समितियों के सदस्यों में आन्तरिक प्रेरणा के साथ कार्य करने की भावनाजाग्रत करना।
- सहकारी विपणन समिति के सदस्यों मे जागरूकता लाने एवं सदस्यों में आपस में सहयोग बनाए रखने के लिए गोष्ठियों को आयोजन करना एवं सहकारिता के लाभों से सम्बन्धित साहित्य का वितरण करना।
- ग्रामीण क्षेत्रों मे सहकारिता के वातावरण में परिपक्वता लाने के लिए सदस्यों में धार्मिक मतभेद,गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार आदि तत्वों को समाप्त करना।
- सहकारी विपणन समितियों के प्रबन्धन एवं व्यवस्था में उचित निरीक्षण द्वारा सुधार लाना।
- सहकारिता के विभिन्न पहलू सहकारी विपणन एवं सहकारी रिण मं परस्पर समन्वय स्थापित करना, जिससे उत्पादों के विक्रय से प्राप्त राषि से रिण सीधा भुगतान किया जा सके।
- सहकारी विपणन समितियों द्वारा कृषकों के उत्पादों को क्रय करने में संग्रहण के लिए गोदामों का निर्माण करवाना।
- सहकारी विपरण समितियों द्वारा गांव अथवा क्षेत्र की मण्डियों में संग्रहण के लिए गोदाम का निर्माण करवाना।
- सहकारी विपरण समितियों द्वारा कृषकों के उत्पादों को क्रय करने में प्राथमिकता प्रदान कराना।
- सहकारी विपणन समितियों के कार्यकताओं को समय-समय पर आवश्यक प्रषिक्षण प्रदान करके कार्यगत
- अनुभव मे सुधार लाना एवं अच्छे कार्य के लिए पारितोष दान करने की योजना प्रारम्भ करना।

8.6 राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (नाफेड)

(National Agricultural Cooperative Marketing Federation-NAFED)

राज्य-स्तरीय सहक विपणन संघो ने मिलकर अक्टूबर, 1958 में राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय कृषि सहकारी से विपणन संघ (नाफेड) की स्थापना की है, जिसका मुख्य कार्यालय दिल्ली में तथा अनेक

राज्यों में इसके क्षेत्रीय कार्यालय है। नाफेड बहुराज्य सहकारी विपणन समितियों के अधिनियम में अन्तर्गत पंजीकृत संस्था है। इसकी स्थापना कृषि उत्पादन के सहकारी विपणन संघो द्वारा कृषकों को लाभाविन्त करने के उद्देष्य से की गई गई। वर्तमान में नाफेड के कुल सदस्य 689 है जिनमें के विपणन-संघ 22 राज्य स्तरीय जनजाति उत्पाद संघ, 630 प्राथमिक सहकारी विपणन एवं संसाधन समिति 4 राष्ट्रीय स्तर के सहकारी संघ एवं 5 भारत सरकार एवं अन्य सरकारी संस्थाएँ है।

नाफेड के उद्देष्य

नाफेड की स्थापना कृषकों को लाभान्वित करने के उद्देष्य से की गई है। इस हेतु यह फार्म, बागवानी एवं जंगलात उत्पाद के विपणन, संसाधन एवं संग्रहण के विकास को प्रोत्साहित, कर कृषि मषीनरी एवं औजार एवं अन्य उत्पादन साधनों को सदस्य कृषकों को वितरण करने, अन्तर्राज्यीय एवं अन्तर्राश्ट्रीय स्तर पर आयात-निर्यात करने, सदस्य कृषकों को उत्पादन में वृद्धि करने के लिए तकनी की सलाह प्रदान करने एवं सहकारी विपणन संसाधन एवं पूर्ति करने वाली समितियों की सहायता करने का कार्य करता है।

नाफेड के कार्य

- अन्त:प्रदेशीय व्यापार-नाफेड का प्रथम कार्य विभिन्न कृषि-उत्पादों में अन्त: प्रदेशीय व्यापार करना है। नाफेड यह कार्य प्रमुखतया खाद्यान्न, दाले, तिलहन,मसाले,फल सब्जी, अण्डे, कृषि मशीने एंव औजार उर्वरक,कीटनाशी दवाइयों में करता है। नाफेड कृषि उत्पादों का क्रय कृषि विपणन सहकारी समितियाँ के द्वारा करता है। विपणन में भी सहकारी संस्थाएँ एंव राज्य सरकार को प्राथमिकता देता है।
- विदेषी व्यापार-नाफेड विभिन्न कृषि उत्पादों के आयात निर्यात का कार्य करता है। नाफेड प्रमुखतया प्याज,आलू,अदरक,लहसुन,तिल,गौंद,मोटे अनाज,मूँगफली,बिनौला एंव सोयाबीन की तेल रहित खली, मसाले, फल एवं सब्जी इलायची, जूट के थैले, चावल आदि उत्पादों का निर्यात करता है। इसी प्रकार नाफेड दालों, सूखे मेवे एवं अन्य फल, जायफल एवं जावत्री का आयात भी करता है।
- नाफेड कृषकों के लिए आवश्यक उत्पादन-साधनों, जैसे-कृषि-यन्त्र एवं मषीनरी उर्वरक आदि का आयात करता है, एवं उन्हें कृषकों को समय पर उपलब्ध कराता है।
- प्रोत्साहन कार्य-नाफेड तकनीकी विशेषज्ञ भी रखता है जो विपणन में सर्वेक्षण का कार्य करके प्राप्त परिणामों की आवश्यक जानकारी सदस्यों को देते है। नाफेड सब्जी तथा फलों की संसाधन इकाइयों की स्थापना में तकनीकी सलाह प्रदान करता है। नाफेड विपणन सलाह सेवा सुविधा प्रदान करता है तथा जनजाति क्षोत्रों में उत्पादित उत्पादो के विक्रय के लिए सहकारी-विपणन-समितियाँ बनाने में भी मदद देता है।

नाफेड सरकार के लिए तिलहन, दलहन एवं मोटे अनाजों को न्यूनतम समर्थित कीमतों पर क्रय का कार्य
- भी करता है। नाफेड यह कार्य तिलहन फसलों के लिए वर्ष 1976-77 से, दलहन फसलों के लिए वर्ष 1978-79 से मोटे अनाजों के लिए वर्ष 1985-86 से कर रहा है।
- नाफेड कृषि-उत्पादों के परिश्करण का कार्य करता है। फलों एवं सब्जियों के परिश्करण के लिए परिष्करण इकाइयों की स्थापना भी नाफेड द्वारा की गई है।

नाफेड कृषकों को प्याज, आलू ,गुड़ अदरक आदि कृषि-उत्पादों की प्रतिस्पर्धात्मक कीमत भी दिला रहा है। इन कृषि-उत्पादों की वर्तमान में सरकार न्यूनतम समर्थित कीमतों की घोशणा नही करती है। इसके अतिरिक्त नाफेड आलू , प्याज एवं तिलहन का व्यापार करता है। नाफेड उत्पादन मौसम में इनका क्रय करके भण्डारण करता है और उचित कीमत आने पर दूसरे मौसम में विक्रय करके लाभ कमाता है।

नाफेड की सदस्यता

नाफेड की वर्तमान सदस्या संख्या सारिणी 3 में प्रदर्शित है 2

नाफेड (कुल सदस्यता 689)

● राष्ट्रीय स्तर के सहकारी संघ 3	● भारत सरकार (3)
● राज्य स्तरीय सहकारी विपणन संघ (25)	● राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (1)
● राज्य स्तरीय जनजाति उत्पाद संघ (25)	● केन्द्र शासित प्रदेश के शीर्घ स्तर के विपणन संघ (3)
● प्राथमिक सहकारी विपणन संस्थान समितियाँ (630)	● अन्य सरकारी संस्थाऐं (2)

नाफेड की प्रगति

नाफेड की वर्ष 2002-03 में जमा पूँजी 92.62 मिलियन रूपये और आरक्षित एंव अन्य पूँजी 1091.87 मिलियन रूपये थी। नाफेड ने वर्ष 2002-03 में कुल व्यापार 23118.25 मिलियन रूपए का किया था , जिसमें से 19669.23 मिलियन रूपए का घरेलू व्यापार एवं 3449.02 मिलियन रूपए का निर्यात व्यापार था। इस व्यापार से नाफेड ने वर्ष 2002-.03 में 41.43 मिलियन रूपए का लाभ कमाया है।

8.7 राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम की स्थापना मार्च 1963 में संसद के अधिनियम के अन्तर्गत सहकारी सिद्वान्त के आधार पर विभिन्न आर्थिक क्रियाओं के क्रियान्वयन के लिए की गई थी। राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम कृषि-उत्पादो के सहकारी विपणन, परिश्करण एवं संग्रह कार्यो के आर्थिक क्षमता से करने के लिए समितियाँ स्थापित करने में सहयोग करता यह निगम ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों को उत्पादन साधनों एवं आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएं की उपलब्धि में सहयोग करता है। यह निगम राज्य सरकारों को सहकारिता के विभिन्न क्षेत्रों में प्रोत्साहन देने में भी सहयोग करता है। राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम विभिन्न उद्देष्य की पूर्ति के लिए सहकारी क्षेत्र में स्थापित समितियों को वित्तीय सहायता एवं सहकारी कार्यक्रमों में प्रोत्साहन एवं विकास में निरंतर सहयोग करता है।

नाफेड स्तर के अन्य संघ भी सहकारी क्षेत्र में कार्यरत है, इनमें से प्रमुख निम्न है।

(i) जनजाति उत्पादन सहकारी विपणन संघ

(ii)राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ

(iii) राष्ट्रीय तम्बाकू उत्पादन सहकारी संघ

(i) जनजाति.उत्पाद सहकारी विपणन संघ

जनजाति उत्पाद सहकारी विपणन संघ वर्ष 1987 में जनजाति क्षेत्रों में उत्पादित उत्पादों एवं हस्तकला उत्पादों के विपणन एवं विकास की संस्था है। यह संस्था एक से अधिक राज्यों के जनजाति क्षेत्रों में उत्पादित उत्पादों के विक्रय के साथ ऐसे कार्य भी करती है जो जनजाति क्षेत्रों के व्यक्तियों के आपसी सहयोग से उनके समाजिक एवं आर्थिक विकास में सुधार ला सकें।

वतर्मान में इसके 27 सदस्य है जो राज्य स्तरीय जनजाति सहकारी विकास संघ,जंगलात सहकारी विकास एवं अन्य राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय सहकारी विपणन संघ है।

ट्राईफेड के कार्य:- ट्राईफेड के मुख्य कार्य निम्न है:-

- जनजाति क्षेत्रों में उत्पादित उत्पादों के विपणन विकास हेतु ऐसी परियोजना प्रारम्भ करना जो इन क्षेत्रों के निवासियों के लिए आजीविका सृजन करने मे सहायक हों।
- जनजाति क्षेत्र के निवासियों के आर्थिक विकास के लिए उनमें उद्यमिता का विकास करना।
- जनजाति उत्पादों के विपणन विकास के लिए सदस्यों में क्षमता एवं सामथ्र्य का विकास करना।
- जनजाति उत्पादों में श्रेणी सुधार करके उनकें राष्ट्रीय एंव अन्तर्राश्ट्रीय स्तर के बाजारो का विकास करना।
- जनजाति क्षेत्रों उत्पादित उत्पादों के मूल्य में वृद्वि करने के लिए परिश्करण उद्योगो की प्राथमिक स्तर पर स्थापना करना, जिससे उनकी कीमते अधिक प्राप्त होने के साथ ही क्षेत्र में रोजगार वृद्वि भी हो सकें।
- जनजाति/जंगलात उत्पादों में गुणवत्ता के अनुसार मानक तैयार करने के लिए आवश्यक विपणन आधारभूत सुविधाओं में वृद्वि करना।

8.8 राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ

राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ स्थापना वर्ष 1965 में की गई थी। वर्तमान में राष्ट्री सहकारी संघ,राज्य स्तरीय सहकारी उपभोक्ता संघ ,थोक उपभोक्ता सहकारी संघ एवं प्राथमिक सहकारी उपभोक्ता स्टोर एवं उपभोक्ता विपणन समितियों सहित इसके 134 सदस्य है। यह संघ उपभोक्ता मामलात, खाद्य एवसं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय के अधीन कार्यरत है।

राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ के प्रमुख कार्य निम्न है-

- उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन के संचालन का कार्य करना।
- सदस्य संस्थाओं को कार्यात्मक एवं प्रबन्धन दक्षता प्राप्त कराने में सलाह प्रदान करना।
- नित्य उपयोगी कृषि-उत्पादों जैसे दलहन,खाद्यान्न,चीनी,चाय एवं निर्मित उत्पादों की अधिप्राप्ति करके उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराना।

- चुनी हुई आवश्यक वस्तुओ को नियत कीमत पर उचित कीमत की दुकानो, सहकारी उपभेक्ता समितियों एवं राज्य के नागरिक आपूर्ति निगम के माध्यम से वितरण करने के लिए सरकार द्वारा कार्यन्वित ''सर्वप्रिया'' योजना की नोडल संस्था के रूप में कार्य करना।
- मासिक पत्रिका Indian Consumer Cooperatiorn'का प्रकाषन करना।
- भारत सरकार, राज्य सरकारी, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम एवं राष्ट्रीय स्तर की उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माताओं की सहकारी संस्थाओं से समन्वय स्थापित करना।

8.9 राज्यस्तरीय सहाकारी विपणन संस्थाएँ

राष्ट्रीय स्तर की उपभोक्ता सहकारी विपणन संस्थाओं के अतिरिक्त राज्य स्तर पर भी अनेक सहकारी विपणन संस्थाएँ कार्यरत है। इन संस्थाओं का कार्यक्षेत्र राज्य स्तर पर है एवं इनकी स्थापना का उद्देश्य राज्य के कृषकों को विभिन्न क्षेत्रों में सहकारी समितियाँ स्थापित करके लाभान्वित करना है। राज्य स्तरीय सहकारी विपणन संघ एक उत्पाद या उत्पादों के समूह के लिए या सामान्य सभी उत्पादों के लिए स्थापित है जैसे राज्य स्तरीय सहकारी डेयरी संघ, राज्य स्तरीय कपास संघ, राज्य स्तरीय तिलहन उत्पादों का सहकारी संघ, राज्य स्तरीय गन्ना उत्पादों का सहकारी संघ आदि। राज्य सहकारी संघों कें विभिन्न राज्य में अलग अलग नाम एंव कार्य है। उदाहरण के लिए राजस्थान राज्य में तिलहन उत्पादों के सहकारी संघ की तिलम संघ कहते है। राज्य स्तरीय विशेष उत्पादों के विपणन संघो के अतिरिक्त अनेक राज्यों में बहुउद्देश्य सहकारी विपणन संघ भी स्थापित है जो कृषकों के द्वारा उत्पादित उत्पादों के क्रय विक्रय,कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए उत्पादन साधनों के विपणन,उत्पादों के परिष्कृत के लिए संयत्र लगाना एवं उपोत्पाद उत्पन्न करना, शीत-संग्रहणगृह स्थापित करना और कीमत नीति के लिए आवश्यक सहायता प्रदान करने का कार्य करते है। इन विभिन्न राज्यों में विभिन्न नाम है जैसो राजस्थान राज्य में राजफेड(RAJFED-Rajasthan Cooperative Marketing Federation),पंजाब राज्य में मार्कफैड (MARKFED)हरियाणा राज्य में हाफेड (HAFED)आदिराजस्थान राज्य में स्थापित राजफेड एवं तिलम संघ के उद्देष्य

राजफेड

राजस्थान राज्य में शीर्ष स्तर पर स्थापित सहकारी विपणन संघ (Cooperative Marketing Federation): को संक्षिप्त में राजफेड (RAJFED)कहते है। इसकी स्थापना 26 नबम्बर, 1957 को की गई थी। इसके मुख्य कार्य निम्न है।

- बाजार में कृषि-उत्पादो की खुल नीलामी विधि में भाग लेकर उत्पादों का क्रय करना।
- उत्पादन के विभिन्न साधनों-उर्वरक,कृषि-यन्त्र,उन्नत बीज, कीटनाषी दवाइयाँ,जिप्सम आदि की पूर्ति कृषकों को करना।
- पशुओं के लिए दाना (Cattle Feed) निर्मित करने का कारखाना स्थापित करना एवं पषुपालकों को पोष्टिक दाना उपलब्ध कराना।
- ईसबगोल की भूसी का निर्माण करना।

- शीत-संग्रहणगृह स्थापित करना।
- कीमतों के समर्थन-नीति से सम्बन्धित कार्यो के करने में राज्य स्तर पर सहयोगी संस्था के रूप् में कार्य करना।

तिलम संघ (Tilam Sangh)

राजस्थान राज्य में राज्य स्तरीय तिलम उत्पादको के सहकारी संघ को तिलम संघ कहते है। इसकी स्थापना जुलाई 1990 में निम्न उद्देष्य के लिए की गई थी।

- तिलम उत्पादन कृषकों को ग्राम स्तर पर संगठित करना।
- तिलम उत्पादों की उत्पादकता एवं उत्पादन में वृद्धि करनें के लिए कृषकों आवश्यक उत्पादन वृद्धि के सुझाव देना।
- कृषकों के द्वारा उत्पादित तिलम उत्पादों को कृषक के फार्म से उचित किमत पर क्रय कराना।
- कृषकों को तिलहनों के व्यापार में कार्यरत मध्यस्थों के चंगुल से मुक्ति दिलाना।
- तिलहन उत्पादों के परिश्करण के लिव परिश्करण इकाईयों की स्थापना करना।
- कृषकों के अच्छी किस्म के बीज उपलब्ध कराने के लिए बीज संवर्धन कार्यक्रम को कार्यान्वित करना।

8.10 सारांश

कृषि उत्पादन के विपणन का कार्य कृषि सहकारी संघ (Agricultural Cooperative Association) करते है। कृषि सहकारी संघ बहुउद्देशीय कार्य करते है, जैसे -कृषकों को ऋण प्रदान करना, उत्पादों का विपणन करना, कृषकों को बैंक सुविधा उपलब्ध कराना, आवश्यक फार्म एवं घरेलू वस्तुओं की पूर्ति करना आदि। उपर्युक्त कार्यो में सहकारी संघो का मुख्य कार्य उत्पादित चावल, एवं अन्य खाद्यान्न, आलू ,फल, रेशम का कोकून (Cocoon) दूध एवं अन्य उत्पादों के विपणन का कार्य करना है। कृषकों द्वारा विक्रत अधिशेष का 25 से 30 प्रतिशत भाग कृषि सहकारी संघ विक्रय करते है। और 70 से 75 प्रतिशत विक्रीत अधिशेष अन्य विपणन माध्यमों के द्वारा वितरित होता है। सहकारी संघ कृषक को उत्पादन के लिए आवश्यक सभी उत्पादन साधन जैसे उर्वरक,कीटनाषी दवाइयाँ, कृषि यंत्र मशीने आदि उनकी आवश्यकतानुसार कारखानों से सीधे क्रय कर पूर्ती करते है। उत्पादन साधनों की पूर्ति के अतिरिक्त कृषि सहकारी संघ देश में कृषकों को उन्नत किस्म के बीज, उर्वरक, फसलों का चुनाव, कीटनाषी दवाइयों के उपयोग की तकनीकी सलाह भी देते है। जिससे कृषक प्राप्त उत्पादन साधनों से अधिकतम उत्पाद की मात्रा प्राप्त कर सकें। सहकारी समितियों की प्रमुख विशेषता उत्पादन एवं विपणन से ऋण का पूर्ण सामंजस्य करना है। ऋण उत्पादन एवं विपणन में सामंजस्य के कारण सहकारी समितियों ने देश में सराहनीय प्रगति की है।

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. सहकारी विपणन संस्थान किसकी सहकारी संस्था है।

(अ) व्यापारियों (ब) किसानों

(स) मजदूरों (द) बिचोंलियों (ब)

2. प्राथमिक सहकारी विपणन समितियॉं कितनें प्रकार की होती है।

(अ) **4** (ब) **2**

(स) **10** (द)**3** (ब)

3. राजफेड **(RAJFED)** की स्थापना कब की गई थी।

(अ) **1957** को (ब) **1950**

(स) **1965** (द) **1857** (अ)

4. जनजाति उत्पादन सहकारी विपणन संघ में सदस्यों की संख्या कितनी होती है।

(अ) **134** (ब) **27**

(स) **10** (द)**15** (ब)

5. तिलहन उत्पादको के सहकारी संघ को कहते है।

(अ) तिलम संघ (ब) राजफेड

(स) मार्कफैड (द) हाफेड (अ)

8.12 सदर्भ ग्रंथ

- S. S. Acharya and N. L. Agrawal (2007) Agricultural Marketing in India. Oxford & IBH Publishing co. Pvt. Ltd. New Delhi
- S. Subha Reddy, P. Raghu Rani, T. V.Neelakanta Sastry and J. Bhawani Devi (2007) Agricultural Economics. Oxford & IBH Publishing co. Pvt. Ltd. New Delhi
- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

इकाई - 9

विपणन संचार विज्ञापन एवं प्रचार

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 विज्ञापन का अर्थ
9.3 विज्ञापन की विशेषताएं
9.4 विज्ञापन के लाभ
9.5 विज्ञापन के माध्यम
9.6 विज्ञापन एवं कानून
9.7 प्रचार का अर्थ
9.8 विज्ञापन एवं प्रचार में अन्तर
9.9 विपणन संचार
9.10 विक्रय संवर्द्धन
9.11 सारांश
9.12 अभ्यास प्रश्न
9.13 संदर्भ ग्रंथ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगे कि -

- विज्ञापन एवं इसका बिक्री में क्या योगदान है?
- विज्ञापन के विभिन्न माध्यम कौन कौन से है?
- विज्ञापन एवं कानून सम्बन्धित प्रावधान क्या है?
- विज्ञापन एवं प्रचार में क्या अन्तर है,
- विक्रय सवंर्द्धन की विभिन्न तकनीकें कौनसी है?
- जनसम्पर्क की विभिन्न विशेषताएं कौन कौन सी है।

9.1 प्रस्तावना

प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान विश्व में मनुष्य अपनी भावनाओं, विचारों को संप्रेषित करने के लिए विभिन्न चित्रों, संकेतो, चिन्हों एवं अन्य संप्रेषण माध्यमों का प्रयोग करता आ रहा है। जैसे-जैसे सभ्यताओं का विकास हुआ जैसे ही सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में परिवर्तन होने लगे है। उत्पादन कार्य के समय मषीनीकरण के बढते प्रयोग से उत्पादन के आकार में भी वृद्धि दृष्टिगोचर हुई है। वृहद उत्पादन के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर बिक्री होना आवश्यक हो गया। अधिकाधिक बिक्री के लिए वस्तुओं के संबंधमें जानकारी देना और लोगों को वस्तुओं के प्रति आकर्षित करना महत्त्वपूर्ण हो गया। इसके लिए विज्ञापन एवं प्रचार अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

9.2 विज्ञापन का अर्थ

विज्ञापन शब्द का निर्माण वि+ज्ञापन अर्थात दो अलग-अलग शब्दों के संयोग से हुआ है। वि का अर्थ है विशिष्ट अथवा विशेष तथा ज्ञापन का अर्थ है सूचना अथवा जानकारी उपलब्ध कराना। अत: विशिष्ट सूचना अथवा जानकारी देना ही विज्ञापन कहलाता है। वास्तव में विज्ञापन द्वारा किसी वस्तु अथवा सेवा के प्रति ध्यान आकर्षित किया जाता है।

शैल्डन के शब्दों में विज्ञापन वह व्यावसायिक शक्ति है जिससे मुद्रित शब्दों द्वारा विक्रय में सहायता मिलती है, साख का निर्माण होता है और ख्याति बढ़ती है।

9.3 विज्ञापन की विशेषताएँ

विज्ञापन की प्रकृति को समझने के लिए विज्ञापन की विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक है। निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से इसे समझा जा सकता है।

1. विज्ञापन अवैयक्तिक होता है अर्थात विज्ञापन एवं क्रेता के मध्य व्यक्तिगत संपर्क का अभाव होता है।
2. विज्ञापन का स्वरूप सार्वजनिक होता हैं अर्थात इसमें केवल एक क्रेता नहीं अपितु क्रेताओं के समूह को ध्यान में रखा जाता है।
3. विज्ञापन की पृष्ठभूमि में विज्ञापक/प्रायोजक होता हैं।
4. विज्ञापन के लिए विज्ञापन माध्यम का निर्धारण किया जाता है। माध्यम लिखित, मौखिक अथवा दृष्य हो सकता है।
5. विज्ञापन क्रेताओं/जन समूह को ध्यान में रखकर किया जाता है।
6. विज्ञापन विपणन का एक अभिन्न अंग है। इसके माध्यम से उत्पाद सेवा, संस्था, स्थान, घटना एवं सूचना दी जा सकती है।
7. विज्ञापन सार्वभौमिक है। विश्व के हर हिस्से में विज्ञापन किया जाता है।
8. विज्ञापन एक सृजनात्मक क्रिया है क्योकि इसमें शब्दों का चयन, रंगो, चित्रों शीर्षक का प्रयोग क्रेताओं के ध्यानार्षण की दृष्टि से इस उद्देश्य से किया जाता है। जिससे विश्वास उत्पन्न किया जा सके।

9. विज्ञापन का उद्देश्य संभावित क्रेताओं को वस्तुओं/सेवाओं के क्रय के लिए प्रोत्साहित करना है।

10. विज्ञापन गतिशील एवं लोचशील प्रक्रिया है। इसकी निरंतरता के साथ- साथ समय, स्थान एवं परिस्थितियाँ के अनुरूप इसमें परिवर्तन तथा संषोधन किया जा सकता हैं

9.4 विज्ञापन के लाभ

(अ) उत्पादको को लाभ -

विज्ञापन के कृषि वस्तुओं के उत्पादकों को निम्नलिखित लाभ होते है -

1- कृषि वस्तुओं की मांग में वृद्धि

2- कृषि उत्पादों की मांग में नियमितता एवं स्थिरता।

3- उत्पादन एवं वितरण की लागत में कमी।

4- क्रेताओं का वस्तुओं/उत्पादों में विष्वास।

5- व्यापारिक जगत की अस्वस्थ प्रतिस्पर्दा का अन्त

6- प्रमाणित वस्तुओं/उत्पादों के निर्माण में सहायक।

(ब) मध्यस्थो को लाभ

विज्ञापन से कृषि उत्पादों का विक्रय करने वाले मध्यस्थों को निम्नलिखित लाभ होते हैं-

1- जीविकोपार्जन का माध्यम।

2- बाजार के अनुसंधान में सहायक।

3- कृषि उत्पादों/वस्तुओं के संबंधमें सूचना।

4- व्यापक रूप में उत्पादकों में संपर्क।

5- कृषि उत्पादों के स्टॉक के संबंधमें जोखिमों से सुरक्षा।

6- बिक्री में प्रत्यक्ष वृद्धि।

7- मूल्यों में स्थायित्वता।

(स) विज्ञापन करते समय ध्यान में रखने योग्य सावधानियाँ-

विज्ञापन को प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है-

1- विज्ञापन स्वाभाविक एवं सरल होना चाहिए।

2- विज्ञापन शिक्षाप्रद होना चाहिए।

3- विज्ञापन का उपयुक्त एवं आकर्षक शीर्षक होना चाहिए जैसे लाल घोड़ा चाय।

4- विज्ञापन की पुनरावृति होनी चाहिए।

5- विज्ञापन में आकर्षक, चित्रों, कार्टून्स, का प्रयोग करना चाहिए।

6- विज्ञापन भ्रामक न हो अर्थात प्रमाणिक तथ्यों पर आधारित हो।

7- विज्ञापन क्रेताओं के प्रकार, आयु शिक्षा स्तर, लिंग एवं जीवन स्तर को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

8- वस्तु/उत्पाद की प्रकृति, मूल्य एवं विज्ञापन पर संभावित व्यय को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

9- बाजार की प्रकृति जैसे स्थानीय, राष्ट्रीय अन्तरराष्ट्रीय के आधार पर विज्ञापन करना चाहिए।

10- प्रतिस्पर्द्धी संस्थाओं के विज्ञापन को ध्यान में रखना भी आवश्यक है।

9.5 विज्ञापन के माध्यम

विज्ञापन के माध्यमों को निम्नलिखित चार्ट में प्रदर्शित किया गया है -

विज्ञापन के माध्यम

प्रेस विज्ञापन	बाह्य विज्ञापन	डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन	मनोरंजन विज्ञापन	क्रय-बिन्दु विज्ञापन	अन्य
(a) समाचार पत्रीय	1. विद्युत साइन बोर्ड	1. व्यापारिक पत्र व्यवहार	1. सीडी /डीवीडी/वीडियो कैसेट	1. काउन्टर सजना	1. मोबाइल फोन
1. वर्गीकृत	2. विज्ञापन बोर्ड	2. मूल्य सूची	2. मेले एवं प्रदर्शनी	2. वातायन सजना	2. ईनामी योजनाएं
2. अवर्गीकृत	3. दीवार लेखन	3. फोल्टर्स	3. टेली विजन	3. आंतरिक सजावट	3. निर्देशिकाएं
;इद्ध पत्रिका विज्ञापन	4. सैण्डविच मैन	4. विज्ञापन आज्ञापत्रक	4. इन्टरनेट		4. आकाख लेखन
1. महिला	5. यातायात बोर्ड				5. अभिनव विज्ञापन
					6. लाडस्पीकर का प्रयोग

कृषि आधारित प्रत्यक्ष उत्पादों तथा उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं के साथ-साथ कृषि यंत्रो, बीजो, कीटनाषको एवं खाद आदि वस्तुओं के विज्ञापन किसानों तक पहुंचाने के लिए समाचार पत्र टी.वी. रेडियों जैसे माध्यमों का प्रयोग किया जाना उपयुक्त रहता है। विशिष्ट उत्पादों की कृषि में, विज्ञापन फसल के समय दिया जाना चाहिए।इसके अतिरिक्त यदि कृषि उत्पादों का विक्रय संपूर्ण भारत में करना हो तो विज्ञापन का वह माध्यम ही चूनना चाहिए जिसका प्रसारण पूरे देष में किया जाना संभव हो।ग्रामीण क्षेत्रों में ड्रामा एवं संगीत कार्यक्रमों के माध्यम से भी बीज, खाद एवं कीटनाशकों का विज्ञापन प्रभावशाली तरीके से किया जा सकता है।

हमारे देष की लगभग 75 प्रतिषत जनसंख्या कृषि एवं कृषि से जुड़ी सहायक क्रियाओं जैसे मछली पालन, कुक्कुट पालन, रेषम कीट पालन जैसे उद्योगों पर आधारित है। कृषि संबंधीविज्ञापन कृषि एवं कृषकों से जुड़ी हुई पत्र पत्रिकाओं, स्थानीय भाषायी समाचा रपत्रों, रेडियों आदि पर बहुतायत से

प्रयोग किये जाते है। राष्ट्रीय स्तर पर दूरदर्शन एवं राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्रों में भी कृषि विषयक विज्ञापन दिये जाते है।

9.6 विज्ञापन एवं कानून

भारत में विज्ञापन कानूनों से प्रभावित है। कतिपय कुछ प्रमुख कानून निम्नलिखिति है -

1- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986

2- भारतीय डाक अधिनियम

3- ट्रेरडमार्क एक्ट

4- स्त्री अश्लील चित्रण (प्रतिशेध) अधिनियम, 1986

5- राश्ट्रिय चिन्ह एवं नाम (अनाधिकृत प्रयोग पर रोक) अधिनियम

6- पेटेन्ट अधिनियम, 1970

7- विदेशी विनियम नियमन अधिनियम

8- आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955

9- प्रेस एवं परिषद अधिनियम, 1978

10- कॉपीराइट कानून, 1957

11- औशधि एवं जादुई उपचार (आपत्तिजनक विज्ञापन) अधिनियम, 1956

12- मानहानि निषेध अधिनियम

13- प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम, 1958

14- सिने मेट्रोग्राफी एक्ट

इसके अतिरिक्त भारतीय विज्ञापन मानक परिषद एवं भारतीय समाचार पत्र संघ द्वारा बनाई गई आचार संहिता का भी पालन करना चाहिये।

9.7 प्रचार का अर्थ

जब किसी संस्था, वस्तु या सेवा के संबंधमें विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाषित या अन्य किसी माध्यम जैसे टेलीविजन एवं रेडियों द्वारा प्रसारित कोई संदेष, सूचना अथवा जानकारी के रूप में होता है, तब वह प्रचार माना जाता है।

इवान्स एवं बर्मन के मतानुसार प्रचार किसी स्वतंत्र माध्यम के द्वारा विचारों उत्पादों अथवा सेवाओं का भुगतान किये बिना अवैयक्तिक प्रस्तुतिकरण एवं संवर्द्धन हैं।

विशेषताएँ -

1- प्रचार की प्रकृति प्रचारक निश्चित करता है।

2- प्रचार के विभिन्न माध्यम हो सकते है।

3- प्रचार दृश्य, श्रव्य अथवा मुद्रित हो सकता है।

4- प्रचार के संदेश का प्रारूप निश्चित करके ही प्रचार किया जाता है।

5- प्रचार अवैयक्तिक अथवा वैयक्तिक हो सकता है।

6- प्रचार के लिए कोई निश्चित प्रायोजक नहीं होता है।

7- प्रचार का क्षेत्र व्यापक है अर्थात् विज्ञापन इसमें समाहित है।

8- प्रचार प्रचारक की इच्छा से अथवा अनिच्छा से हो सकता है।

प्रचार की विधियाँ -

प्रचार की निम्नलिखित विधियों का प्रयोग सामान्यत: किया जाता है -

1- स्तंभ लेख

2- संपादकीय आलेख

3- आवरण कथा का प्रयोग

4- समाचार पत्रों द्वारा प्रकाषित समाचार, जैसे मंडी में फसल की आवक का समाचार।

5- सरकार/संस्थागत सूचनाओं का प्रकाषन।

6- प्रगति की समीक्षा

7- छायाचित्रों का प्रयोग

8- कार्टून का प्रयोग

9- रूपक लेख का प्रयोग जैसे किसी उपकरण की तकनीक का उल्लेख।

10- चित्रमय प्रस्तुति।

9.8 विज्ञापन एवं प्रचार में अन्तर

विज्ञापन एवं प्रचार में निम्नलिखित असमानताओं का उल्लेख किया जाता है-

विज्ञापन	प्रचार
1. अर्थ - किसी बात, विचार, भावना या तथ्य की जानकारी देना।	किसी संस्था, वस्तु अथवा सेवा के संबंधमें जानकारी, संदेष प्रस्तुत करना।
2. क्षेत्र - विज्ञापन का क्षेत्र सीमित होता है	प्रचार का क्षेत्र विज्ञापन की तुलना में विस्तृत होता है।
3. व्यक्तिपरकता- विज्ञापन का स्वरूप अवैयक्तिक होता है।	प्रचार अवैयक्तिक एवं वैयक्तिक दोनों प्रकार का हो सकता है।
4. निर्भरता - विज्ञापन से प्रचार का उद्देष्य पूरा हो जाता है।	पत्राचार से विज्ञापन का उद्देषय पूरा हो, यह आवश्यक नहीं है।
5. व्यय - विज्ञापन व्यय का भुगतान विज्ञापक	प्रचार संबधी व्यय का भुगतान प्रचारक

करता है।	करे, यह आवश्यक नहीं है।
6. उद्देष्य - विज्ञापन लाभार्जन की दृष्टि से वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रति रूचि जागृत करने हेतु किया जाता है।	प्रचार हमेशा लाभार्जन की दृष्टि से किया जावे, यह आवश्यक नहीं है।
7. नियंत्रण- विज्ञापक का विज्ञापन की विषय-वस्तु पर नियंत्रण रहता है।	प्रचार की विषय वस्तु पर नियंत्रण नहीं होता है।

9.9 विपणन संचार

विपणन संचार से आशय इन समस्त क्रियाओं से है जिनसे किसी वस्तु अथवा सेवा के प्रति वर्तमान एंव भावी ग्राहको में सकारात्मक एवं अनुकूल विचार उत्पन्न किया जाता है। विपणन के क्षेत्र में संवर्द्धनात्मक मिश्रण को ही वर्तमान में विपणन संचार मिश्रण के नाम से जाना जाता है। संवर्द्धनात्मक मिश्रण अथवा विपणन संचार में विज्ञापन व्यक्तिगत विक्रय -विक्रय संवर्द्धन प्रचार जन सम्पर्क प्रत्यक्ष विपणन आदि समस्त कियाएँ सम्मिलित की जाती है। वास्तव में इन सभी क्रियाओं के माध्यम से ही किसी संस्था के उत्पादो अथवा प्रदान की जाने वाली सेवाओं को ग्राहको के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। विपणन संचार क्रियाओं का प्रयोग करके कृषि उत्पादों का प्रभावी विपणन किया जा सकता है। संक्षेप में इन प्रमुख घटको का विवेचन निम्नलिखित हैं-

1. **वैयक्तिक विक्रय -** वैयक्तिक विक्रय वह प्रक्रिया है जिसमें दो व्यक्तियों द्वारा एक दूसरे के सम्मुख संदेषों का आदान-प्रदान किया जाता है। इसमें विक्रेता द्वारा संभावित क्रेताओं को अपनी संस्था से संबंधितवस्तुओं अथवा सेवा को खरीदने के लिए प्रेरित किया जाता है। मूलत: विक्रेता व्यक्तिगत रूप में क्रेता के सम्मुख अपना प्रस्तुतीकरण देता है। वैयक्तिक विक्रय को विक्रयकला के नाम से भी जाना जाता है। दूसरे शब्दों में, इसमें किसी विक्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि द्वारा अपने उत्पाद अथवा सेवा के संबंधमें संभावित क्रेता के समक्ष आमने-सामने प्रस्तुतीकरण किया जाता है। इसमें प्रत्यक्ष रूप से सविनय प्रेरित करने का कार्य किया जाता है।

अमेरिकन विपलन संघके मतानुसार - ''वैयक्तिक विक्रय एक या अधिक संभावित क्रेताओं के साथ प्रस्तुतीकरण देने, प्रश्नों का प्रत्युत्तर देने एवं आदेश प्राप्त करने हेतु आमने-सामने बातचीत करना सम्मिलित है।

विशेषताएँ -

1- वैयक्तिक विक्रय वह प्रक्रिया है जिसमें संभावित क्रेताओं की समस्याओं का समाधान किया जाता है।

2- वैयक्तिक विक्रय वह प्रक्रिया है जिसमें विक्रेता द्वारा संभावित क्रेता के विचारों को प्रभावित करने एवं उद्देश्य पूर्ति हेतु विचारों को अपने अनुकूल बनाने का कार्य किया जाता है।

3- वैयक्तिक विक्रय प्रक्रिया का स्वरूप सभी संस्थाओं में एकसमान नहीं होता है। संस्था का आकार, वस्तु अथवा सेवा की प्रकृति आदि घटको पर यह निर्भर करता है।

4- वैयक्तिक विक्रय में विक्रयकर्ता यदि सेवायोजक के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहा है, तो इसके बदले उसे निश्चित भुगतान किया जाता है।

5- इसके अन्तर्गत विक्रयकर्ता एवं संभावित ग्राहक को एक दूसरे के सम्मुख विचारों का आदान-प्रदान करना होता है।

6- इस प्रक्रिया में विक्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि द्वारा संभावित क्रेता को अपनी वस्तुएँ अथवा सेवाऐं क्रय करने के लिए आग्रहपूर्वक निवेदन किया जाता है।

7- वैयक्तिक विक्रय वह प्रक्रिया है जिसमें ग्राहक अथवा ग्राहको के समूह (यदा-कदा) तथा विक्रेता अथवा उसका प्रतिनिधि आपस में संदेषो, भावनाओं विचारों का आदान प्रदान करते है।

8- इस प्रक्रिया में संभावित क्रेताओं की आवश्यकताओं की पहचान करके उन्हे संतुश्ट करने का कार्य किया जाता है।

9- विपणन संचार के एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में व्यक्तिगत विक्रय को माना जाता है। विपणन संचार के अन्य घटको जैसे विज्ञापन प्रचार, जनसंपर्क एवं प्रत्यक्ष विपणन ही प्रभावशीलता में अभिवृद्धि भी वैयक्तिक विक्रय के माध्यम से की जाती है।

10- वैयक्तिक विक्रय प्रक्रिया का सर्वोत्तम उद्देष्य वस्तुओं अथवा सेवाओं के संबंधमें जानकारी देकर उन्हें क्रय करने हेतु प्रोत्साहित करना है जिससे वस्तु अथवा सेवा की स्वीकार्यता में अभिवृद्धि हो सके।

विपणन क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान देने वाले विद्वानों बेल्च एवं वेल्य ने ठीक की कहा है कि वैयक्तिक विक्रय में एक दूसरे व्यक्ति के मध्य संप्रेषण किया जाता हैं इसमें विक्रेता संभावित ग्राहको को अपनी संस्थान के उत्पाद अथवा सेवा को क्रय करने में सहायता अथवा सविनय आग्रह करता है। वस्तुत: वैयक्तिक विक्रय में जिज्ञासाओं की संतुष्टि करने का प्रयास किया जाता है।

2. जन सम्पर्क - विपणन संचार मिश्रण के एक अभिन्न अंग के रूप में जनसंपर्क को देखा जाता है। जनसंपर्क एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी संगठन/संस्था द्वारा जनता में अपनी वस्तुओं अथवा सेवाओं के संबंधमें छवि निर्माण का कार्य किया जाता हैं जनता के समक्ष वस्तुओं एवं सेवाओं अथवा विचारों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का निर्माण किया जाता हैं जनसंपर्क के अन्तर्गत वस्तुओं अथवा सेवाओं के प्रति सकारात्मक एवं प्रतिष्ठा वृद्धि हेतु प्रयास सम्मिलित किये जाते है। प्रत्येक संगठन अपनी कार्यकुशलता में वृद्धि करने के लिए जनसम्पर्क करता है। जन संपर्क एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें आम जनता के विचारों एवं प्रवृति को किसी संस्था द्वारा बनायी जाने वाली वस्तुओं अथवा सेवाओं के प्रति अनुकूल दृष्टिकोण का निर्माण किया जाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी वस्तु अथवा सेवा के संबंधमें उसकी ख्याति अथवा प्रतिश्ठा का निर्माण करने, अभिवृद्धि करने के सम्मिलित प्रयास किये जाते है। मूलत: जनसंपर्क एक व्यापक शब्द है।

जिसमें प्रचार को सम्मिलित किया जाता है। जनसंपर्क के माध्यम से किसी संस्था के संबंधमें ऐसे संदेशों का निर्माण एवं प्रसारण किया जाता है जिससे जनसाधारण के मध्य किसी संस्था द्वारा निर्मित की जाने वाली वस्तुओं अथवा सेवाओं के संबधं में छवि का निर्माण किया जाना संभव हो सके। वास्तव में जनसाधारण के समक्ष सकारात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न करना ही मुख्य उद्देश्य होता है।

परिभाषाएँ -

मेस्टोन के मतानुसार ''जन संपर्क में उन समस्त क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनसे किसी संस्था की ख्याति अथवा प्रतिष्ठा में सकारात्मक वृद्धि होती है।''

डब्ल्यू जे. स्टेन्टन के मतानुसार ''जन संपर्क किसी संगठन का व्यापक एवं समग्र संवाद संप्रेषण प्रयास है, जिसका उद्देष्य विभिन्न समूहों के विचार अथवा व्यवहार को उस संगठन के संबंधमें प्रभावित करता है।

निष्कर्ष - यह कहा जा सकता है कि जनसंपर्क एक व्यापारिक कला एवं विज्ञान है जिसके द्वारा संगठन अपनी वस्तुओं अथवा सेवाओं के प्रति जनसाधारण के विचारों अथवा दृष्टिकोण को अनूकूल बनाने का प्रयास करती है।

जनसंपर्क की विशेषताएँ -

जन संपर्क की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है-

1- जन संपर्क का संबंध आंतरिक एंव बाहय जन समूहों से होता है। आंतरिक समूह में अधिकारी, कर्मचारी तथा बाहय समूह में निवेशक ग्राहक पूर्तिकर्ता प्रतिस्पर्द्धी संस्थाऐं सामाजिक संस्थाऐं र्राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक संस्थाऐं सम्मिलित की जाती है।

2- जनसंपर्क के माध्यम से विभिन्न जन समूहों से संपर्क स्थापित किया जाता है। यह वह माध्यम है जिससे संगठन अपने उत्पादों अथवा सेवाओं को स्थापित छवि प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करता है।

3- जन संपर्क के लिए विभिन्न विज्ञापन एवं प्रचार के साधनों का प्रयोग किया जाता है। इनमें नाटक, संपादकीय/फीचर आलेख प्रेस विज्ञप्तियां एवं संवाददाता सम्मेलनों को सम्मिलित किया जाता है।

4- जनसंपर्क के माध्यम से विभिन्न संगठनों तथा आंतरिक एवं बाहय समूहों के बीच समझ का विकास किया जाता है।

5- भावनाओं विचारो संदेशों के आदान-प्रदान का कार्य जनसंपर्क के अंतर्गत किया जाता है।

6- आधुनिक विपणन जगत में जनसंपर्क ने एक पेशे का रूप ग्रहण कर लिया है।

7- जनसंपर्क के माध्यम से विभिन्न संगठन अपने सामाजिक दायित्वों की पूर्ति करते है।

8- जनसंपर्क को व्यावहारिक कला एवं विज्ञान के रूप में भी देखा जाता है। इसके माध्यम से विभिन्न जन समूहों के मध्य संपर्क स्थापित करने में सहायता मिलती है।

9- आजकल जनसंपर्क की दृष्टि से विभिन्न व्यावसायिक एवं सामाजिक संगठन विवरण पुस्तिकाओं फोल्डर्स तथा प्रगति विवरण प्रकाशित करके वितरित करते है। इसके अतिरिक्त

विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों फैशन शेष, खेल शिविरों एवं अन्य सामाजिक अवसरों पर बहुतायत से जनसंपर्क का प्रयोग करके संवर्द्धनात्मक कार्य किये जाते है।

10- जनसंपर्क वास्तव में जनसाधारण को सूचनाएं एवं शिक्षा प्रदान करने का कार्य करता है।

9.10 विक्रय संवर्द्धन

विक्रय संवर्द्धन क्रियाओं का संबंधन केवल ग्राहको को माल क्रय करने हेतु प्रेरित करने से है वरन इसमें व्यापारिक मध्यस्थों जैसे थोक व्यापारियों फुटकर व्यापारियों, औद्योगिक ग्राहको को अधिकाधिक बिक्री हेतु प्रोत्साहित करने की क्रियाएँ सम्पन्न की जाती है। कुछ विशिष्ट क्रियाओं जैसे उपभोक्ता प्रीमियम विशिष्ट विज्ञापन, नमूने, छूटे, प्रतियोगिताओं, प्रदर्षनी एवं सजावट अपनाकर अधिकाधिकक क्रय करने हेतु प्रोत्साहित करने का कार्य इसमें सम्मिलित किया जाता है। वास्तव में विक्रय संवर्द्धन के द्वारा विभिन्न विक्रयकर्ताओं वितरको एवं उपभोक्ताओं को प्रेरणाएँ प्रदान की जाती है जिनसे उपभोक्ता बिक्री में वृद्धि होती है।

विक्रय संवर्द्धन की विभिन्न तकनीके

उपभोक्ता संवर्द्धन

1 मेले एवं प्रदर्शवियाँ

2 क्रय बिन्दु सजावट

3 प्रतिभाओं का सम्मान

4 किस्तो पर विक्रय सुविधा

5 मूल्यों में कटौती का प्रस्ताव

6 बदली प्रस्ताव

7 क्रियात्मक प्रदर्शन

व्यापारी संवर्द्धन

1. अल्पकालीन छूट का प्रस्ताव
2. डाक द्वारा प्रत्यक्ष विज्ञापन
3. स्टोर की सजावट
4. ब्राहय विज्ञापन का प्रयोग
5. मरम्मत सुविधा का प्रस्ताव
6. विक्रयकर्ताओं को प्रशिक्षण

औद्योगिक ग्राहक संवर्द्धन

1. तकनीकी पुस्तिकाओं का प्रयोग
2. क्रय प्रतिनिधियों को गिफ्ट देना
3. अल्कालीन छूट देना
4. वित्तीय सहायता देना
5. किस्तों में भुगतान

निर्माता विक्रयफल संवर्द्धन

1. सभाऐं एवं सम्मेलनों का प्रयोग।
2. साहित्य का प्रयोग
3. बोनस वितरण
4. उपहार का प्रयोग
5. प्रतियोगिताओं का आयोजन
6. तकनीकी एवं बाजार संबंधी

विक्रय संवर्द्धन की तकनीकें

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विपणन संचार के उपर्युक्त तत्वों/घटको का उपयोग करके कृषि उत्पादों की बिक्री में अपेक्षित वृद्धि की जा सकती है। बाजारों का अध्ययन करके समय स्थान एवं परिस्थिति के अनुकूल तकनीक अपनाकर उद्देष्यों की पूर्ति संभव है।

विक्रय संवर्द्धन की परिभाषा :-

अमरीकी विपणन संघ के मतानुसार विक्रय संवर्द्धन जन संचार माध्यमों तथा बिना माध्यमों का पूर्व निर्धारित सीमित अवधि के लिए विपणन दबाव है, ताकि जांच एवं मनोवेग क्रम को प्रोत्साहित किया जाता है। जिससे वस्तुओं की मांग में वृद्धि एवं उत्पाद की गुणवता में सुधार हो सके।

बर्नेट के मतानुसार - विक्रय संवर्द्धन एक विपणन क्रिया है जो उत्पाद की मूलभूत उपयोगिता में अभिवृद्धि करता है। इससे विक्रयकर्ता की प्रभावशीलता में प्रत्यक्ष वृद्धि होती है।

निष्कर्षत - विक्रय संवर्द्धन में उन समस्त अल्पकालीन क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जिसके माध्यम से उपभोक्ताओं व्यापारियों विक्रयदल के सदस्यों मध्यस्थों को प्रोत्साहित किया जा सके। इससे वस्तुओं एवं सेवाओं के तत्काल विक्रय को बल मिलता है। विक्रय संवर्द्धन में प्रीमियम भेंट पुरस्कार, लाटरियों, प्रदर्षन, सजावट मुफ्त नमूनों एवं क्रियात्मक प्रदर्शन को सम्मिलित किया जाता है। प्रारंभ में विक्रय संवर्द्धन विज्ञापन एवं वैयक्तिक विक्रय का पूरक माना जाता था। आधुनिक विश्व में इसकी उपादेयता बढ़ती ही जा रही है। आज विक्रय संवर्द्धन को वैयक्तिक विक्रय विज्ञापन के समान ही बहुलायत से प्रयोग किया जाने लगा है। विक्रय संवर्द्धन प्रेरक तकनीकों का वह प्रयोग है जिसका संबंध अधिकाधिक विक्रय को प्रोत्साहित करना है।

विक्रय संवर्द्धन की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित है -

1- विज्ञापन एवं व्यक्तिगत विक्रय में समन्वय उत्पन्न करने वाली क्रिया।

2- विक्रय संवर्द्धन अनावर्ती क्रिया है।

3- विक्रय संवर्द्धन कला एवं विज्ञान दोनों है।

4- विक्रय संवर्द्धन ने पेषा का स्वरूप ग्रहण कर लिया है।

5- यह संवर्द्धनात्मक मिश्रण का एक अभिन्न अंग है।

6- विक्रय संवर्द्धन से माल/सेवा की अधिकाधिक बिक्री को प्रोत्साहित किया जाता है।

विक्रय संवर्द्धन के उद्देश्य : विक्रय संवर्द्धन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है -

1- वस्तुओं एवं सेवाओं के अधिकाधिक क्रय हेतु प्रेरित करना।

2- नये उत्पादों को बाजार में प्रस्तुत करना।

3- बाजार के उच्चावचनों पर नियंत्रण स्थापित करना।

4- प्रतिस्पर्धा की स्थिति में उपयोगिता में वृद्धि करना।

5- संगठन के उत्पादों की ख्याति का निर्माण करना।

6- मध्यस्थों का सहयोग प्राप्त करना।

7- ग्राहको को अधिकाधिक प्रेरित एवं प्रोत्साहित करना।

भारत जैसी अर्थव्यवस्था वाले देश में आज अधिकांष प्राकृतिक संसाधन अप्रयुक्त स्थिति में बने हुए है। कृषि विपणन की दृष्टि कृषक वर्ग सीधे ही विपणन संवर्द्धन घटको का समुचित प्रयोग करके अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर सकता है। हमारे देश में आर्थिक दृष्टि से कई सस्थाएं विद्यमान है जैसे -

1- उद्योगों की कमजोर स्थिति।

2- रोजगार के सांधनों की सीमितता।

3- जनसंख्या का निम्न जीवन स्तर।

4- पूंजी निर्माण की धीमी गति।

5- बाजारों में विक्रेताओं का अधिक प्रभाव।

9.11 सारांश

हमारे देश की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं कृषि से जुड़ी सहायक क्रियाओं जैसे मछली पालन, कुक्कुट पालन, रेशम कीट पालन जैसे उद्योगों पर आधारित है।

वृहद उत्पादन के परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर बिक्री होना आवश्यक हो गया। अधिकाधिक बिक्री के लिए वस्तुओं के संबंधमें जानकारी देना और लोगों को वस्तुओं के प्रति आकर्षित करना महत्त्वपूर्ण हो गया। इसके लिए विज्ञापन एवं प्रचार अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

विज्ञापन वह व्यावसायिक शक्ति है जिससे मुद्रित शब्दों द्वारा विक्रय में सहायता मिलती है, साख का निर्माण होता है और ख्याति बढ़ती है।

विपणन संचार में विज्ञापन, व्यक्तिगत विक्रय -विक्रय संवर्द्धन प्रचार जन सम्पर्क प्रत्यक्ष विपणन आदि समस्त कियाएँ सम्मिलित की जाती है। वास्तव में इन सभी क्रियाओं के माध्यम से ही किसी संस्था के उत्पादो अथवा प्रदान की जाने वाली सेवाओं को ग्राहको के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। विपणन संचार क्रियाओं का प्रयोग करके कृषि उत्पादों का प्रभावी विपणन किया जा सकता है।

भारत जैसी अर्थव्यवस्था वाले देश में आज अधिकांश प्राकृतिक संसाधन अप्रयुक्त स्थिति में बने हुए है। कृषि विपणन की दृष्टि कृषक वर्ग सीधे ही विपणन संवर्द्धन घटको का समुचित प्रयोग करके अपने उ्देश्यों की पूर्ति कर सकता है।

9.12 अभ्यास प्रश्न

1 विज्ञापन में आप क्या समझते है? इससे होने वाले लाभों का वर्णन कीजिए।

2 विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों को विस्तार से समझाइये।

3 ''विज्ञापन एवं कानून'' विषय पर टिप्पणी लिखिये।

4 विपणन संचार से क्या आशय है? इसके विभिन्न माध्यमों को विस्तार से समझाइये।

5 विक्रय संवर्द्धन क्या है? विक्रय सर्वर्द्धन की विभिन्न तकनीकों को विस्तार से समझाइये।

9.13 संदर्भ ग्रंथ

- S. S. Acharya and N. L. Agrawal (2007) Agricultural Marketing in India. Oxford & IBH Publishing co. Pvt. Ltd. New Delhi
- S. Subha Reddy, P. Raghu Rani, T. V.Neelakanta Sastry and J. Bhawani Devi (2007) Agricultural Economics. Oxford & IBH Publishing co. Pvt. Ltd. New Delhi
- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

इकाई -10

कृषि उत्पादन साधनों का विपणन

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 उत्पादन साधनों का वर्गीकरण

10.2.1 कृषि में उत्पादन साधनों की विशेषताएं

10.2.2 कृषि में उत्पादन साधनों की विपणन दक्षता

10.3 रासायनिक उर्वरक

10.3.1 रासायनिक उर्वरकों का विपणन एवं दोष

10.3.2 रासायनिक उर्वरकों की विपणन प्रणाली को दक्ष बनाने के लिए सुझाव

10.4 उन्नत किस्म के बीज एवं गुण

10.4.1 बीजों की मांग, पूर्ति एवं कीमत

10.4.2 बीजों का विपणन

10.4.3 बीजों के विपणन में समस्याए

10.5 पौध संरक्षण रासायन एवं नियंत्रण के लिये अधिनियम

10.5.1 कीटनाशी रासायनों का उत्पादन, मांग एवं पूर्ति

10.5.2 कीटनाशी रासायनों का विपणन एवं कीमतें

10.5.3 कीटनाशी रासायनों के विपणन में समस्याएं एवं सुझाव

10. 6 विद्युत व डीजल-आयल तेल

10.6.1 विद्युत का उपयोग, मांग, पूर्ति, कीमतें, विपणन एवं विपणन समस्याएं

10.6.2 डीजल व आयल तेल

10.7 फार्म मशीनरी निर्माण, मांग एवं विपणन

10.8 मानव श्रम

10.9 कृषि ऋण

10.10 सारांश

10.11 अभ्यास प्रश्न

10.12 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

कृषि क्षेत्र में उत्पादन साधनो की जानकारी, उत्पादन साधनों का वर्गीकरण एवं उनकी विशेषताएं के बारे में जानकारी, उत्पादन साधनों का कृषि में महत्त्व, कृषि उत्पादन को बढावा देने वाले उत्पादक साधनों जैसे-उर्वरक, उन्नत किस्म के बीज, पौध सरंक्षण हेतु रासायन, विद्युत एवं ड़ीजल व आयल तेल, फॉर्म मशीनरी, मानव श्रम तथा कृषि ऋण की जानकारी।

10.1 प्रस्तावना

कृषि उत्पादों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए सही गुणवत्ता वाले विभिन्न कृषि उत्पादन साधनों का सही कीमत पर उपलब्ध होना महत्वपूर्ण है। वर्तमान में देश के सभी क्षेत्रों एवं सभी फसलों के उत्पादक कृषक विभिन्न उत्पादन साधनों का उपयोग करते है एवं आवश्यक सभी उत्पादन साधन बाजार से क्रय करते है। कृषि क्षेत्र में उत्पादित उत्पादों की दक्ष विपणन व्यवस्था के समान ही कृषि के उत्पादन साधनों की दक्ष विपणन व्यवस्था का होना आवश्यक है। दोनों ही विपणन व्यवस्थाओं के दक्ष होने पर कृषक प्रत्यक्ष रुप में अधिक आय प्राप्त करके एवं उत्पाद साधनों के दक्ष विपणन से अप्रत्यक्ष रुप से उत्पादन लागत में कमी करके लाभान्वित होते है। कृषि क्षेत्र में उत्पादन साधनों के उपयोग में वृद्धि से कृषि आधारित उद्योगों का विकास एवं अर्थव्यवस्था के सहायक क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्तियों को अधिक व्यवसाय प्राप्त होता है। उत्पादन साधनों की दक्ष विपणन व्यवस्था कृषकों को लाभ प्राप्त कराते हुए देश के विकास में भी सहायक होती है, क्योंकि इसके होने से देश में उद्योगों विशेष कर रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी रासायनों, फार्म मशीनरी एवं बीज

10.2 कृषि उत्पादन में उत्पादन साधनों का वर्गीकरण

कृषि क्षेत्र में उपयोग किये जाने वाले उत्पादन साधनों की उपलब्धता के आधार पर दो वगों में विभाजित किया जाता है।

1- फार्म से पूर्ति किए जाने वाले उत्पादन साधन जैसे- परम्परागत बीज, कार्बनिक खाद, सिंचाई का पानी, मानव श्रम, कृषि औजार आदि।

2- बाजार से पूर्ति किए जाने वाले उत्पादन साधन जैसे- रासायनिक उर्वरक, उन्नत एवं संकर

आधुनिक युग में कृषकों के द्वारा फार्म से उत्पादित पूर्व वर्ष फसल के बीज के स्थान पर उन्नत एवं संकर किस्म के बीज, कार्बनिक खाद के स्थान पर रासायनिक उर्वरक, सिंचाई के लिए पशुशक्ति के स्थान पर विद्युत एवं डीजल चलित पम्प सैट एवं स्थानीय कृषि औजारों के स्थान पर आधुनिक फार्म मशीनरी का उपयोग किया जाने लगा है। फार्म से पूर्ति किए जाने वाले उत्पादन साधनों की मात्रा में कमी होने के साथ उनकी उत्पादकता का स्तर भी बाजार से पूर्ति किए जाने वाले उत्पादन साधनों की अपेक्षा कम ही हो रहा है। अत: वर्तमान में सभी स्तर के कृषक बाजार से क्रय किए गए उत्पादन साधनों जैसे- बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी दवाइयाँ, विद्युत एवं फार्म मशीनरी इत्यादि ही कृषि उत्पादन के लिए उपयोग करते है।

कृषि क्षेत्र में उपयोग किये जाने वाले प्रमुख उत्पादन साधन निम्न है-

1- रासायनिक उर्वरक एवं खाद,

2- उन्नत एवं संकर किस्म के बीज,

3- पौध संरक्षण के लिए कीटनाशी एवं कवकनाषी दवाइयाँ,

4- फार्म औजार तथा फार्म मशीनरी एवं उनकी मरम्मत सेवा,

5- विद्युत एवं डीजल व आयल तेल,

6- मानव श्रम, एवं

7- कृषि ऋण।

10.2.1 कृषि में उत्पादन साधनों की विशेषताएं

कृषि क्षेत्र में उपयोग किये जाने वाले विभिन्न उत्पादन साधनों की माँग में निम्न विशेषताएँ होती है-

उत्पादन साधनों की माँग व्युत्पन्न श्रेणी की होना:- रासायनिक उर्वरक एवं कीटनाशी दवाइयॉ की माँग उपभोक्ताओं की प्रत्यक्ष न होकर, व्युत्पन्न श्रेणी की होती है।

संयुक्त रुप में उत्पादन साधनों की माँग होना:-कृषि क्षेत्र में उत्पादन साधनों की सामान्यत: माँग संयुक्त रुप में होती है परन्तु वैयक्तिक मांग कम होती है। उदाहरण- फार्म पर उन्नत एवं संकर किस्म के बीज की मांग होने पर रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशी दवाइयों, सिंचाई के पानी, विद्युत, डीजल व आयल तेल, मानव श्रम एवं पूँजी की आवश्यकता में भी वृद्धि होती है।

उत्पादन साधनों की कीमतों एवं पूर्ति में सम्बन्ध :- सामान्यत: उत्पादन साधनों की कीमतों के बढ़ने के साथ उनकी पूर्ति की मात्रा में वृद्धि होती है। उद्योग व्यवसायी कीमतों के बढ़ने से अधिक मात्रा में उत्पादन करके उनकी पूर्ति में वृद्धि करने का प्रयास करते है। कृषि क्षेत्र में उपयोग किये जाने वाले अनेक उत्पादन साधनों जैसे- बीज, श्रम, पानी, विद्युत की उपलब्धि में वृद्धि, कीमत में वृद्धि के साथ करना सम्भव नही है। जैसे- उन्नत बीज के उत्पादन में समय लगता है एवं उसका उत्पादन निश्चित मौसम में ही होना सम्भव है, विद्युत एवं नहर से उपलब्ध सिंचाई का पानी सीमित मात्रा में होता है। यह साधन सार्वजनिक क्षेत्र में होने से सभी कृषकों को विवेकपूर्ण वितरण प्रणाली से उपलब्ध कराये जाते है। श्रम उत्पादन साधन की पूर्ति, कीमतों के बढ़ने से कम हो जाती है। श्रम साधन की पूर्ति रेखा पश्चानु झुकाव स्थिति में होती है तथा नहर के सिंचाई पानी की पूर्ति रेखा समस्तर सरल रेखा के रुप में होती है तथा कीमतों में वृद्धि होने पर भी नहर से उपलब्ध सिंचाई के पानी की पूर्ति अपने पूर्व स्तर पर ही रहती है।

10.2.2 कृषि में उत्पादन साधनों की विपणन दक्षता

कृषि क्षेत्र में विभिन्न उत्पादों के उत्पादन में तकनीकी ज्ञान एवं बाजार से उत्पादन साधनों का क्रय करके उनका फार्म पर उपयोग कृषि उत्पादन में आशातित वृद्धि पूर्व के दषकों में देखी गयी है। नए उत्पादन साधनों का आविश्कार एवं उनका कृषकों के द्वारा प्रयोग किए जाने से विभिन्न फसलों की उत्पादकता एवं कुल उत्पादन की मात्रा में 4-5 गुना वृद्धि हुई है। इस वृद्धि को वैज्ञानिकों ने **'हरित**

क्रान्ति' का नाम दिया है। हरित क्रान्ति के उपरान्तकाल में कृषि उत्पादन साधनों का उपयोग तीव्र गति से बढ़ा है। इससे उत्पादन साधनों की माँग एवं पूर्ति में असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

कृषि के उत्पादन साधनों का बाजार, कृषि उत्पादों के बाजार से पूर्णतया भिन्न है। कृषि उत्पादन के साधनों का बाजार पूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक प्रकृति का नही रहा है। उत्पादन साधनों की पूर्ति करने वाले विक्रेताओं की संख्या सीमित है लेकिन उत्पादन साधनों के पूर्तिकर्ता विभिन्नता लिए हुए उत्पादन साधन उत्पादित करते है। इसके विपरीत फार्म क्षेत्र के उत्पादों के बाजार पूर्ण प्रतिस्पर्धात्मक श्रेणी के होते है क्योंकि उनके उपभोक्ता एवं उत्पादकों की संख्या अधिक होती है।

कृषि क्षेत्र में उत्पादन साधनों की पूर्ति विशेष महत्व की होती है क्योंकि-

1- कृषि क्षेत्र में उत्पादन साधनों के उपयोग का फसलों में निष्चित समय होता है। समय के उपरान्त उत्पादन साधनों का उपयोग करने से वांछित परिणाम प्राप्त नही होता है। कभी-कभी तो फसल पूर्णरुप से नष्ट हो जाती है। उदाहरण के रुप में बीज, उर्वरक एवं कीटनाशी रासायनों की उपलब्धि समय से पूर्व नही होने की स्थिति में उत्पादन की मात्रा में कमी होना।
2- कृषि क्षेत्र में उत्पादन साधनों का सही गुणवत्ता का होना जैसे-बीजों का जमाव क्षमता तथा कीटनाशी रासायनों में उचित मात्रा में तत्वों का होना इत्यादि।
3- उपलब्ध उत्पादन साधनों की उपयोग विधि का ज्ञान होना- किसानों को उपलब्ध उत्पादन साधनों के उपयोग से वांछित परिणामों की प्राप्ति के लिए उनका विभिन्न फसलों में विभिन्न समय में उपयोग की मात्रा एवं विधि का उचित ज्ञान होना भी आवश्यक है। उत्पादन साधनों का सही विधि एवं मात्रा में उपयोग नही करने की अवस्था में उत्पाद की उत्पादन में वृद्धि के स्थान पर उत्पादन की मात्रा में गिरावट होने की आशंका होती है। कीटनाशी रासायनों के उचित उपयोग नही होने से पूर्ण फसल नष्ट हो जाती है एवं मानव हानि भी होने की आशंका होती है।
4- उत्पादन साधनों की कीमतों में भी पूर्तिकर्ता विभिन्न श्रेणी के उत्पादन साधनों का निर्माण करते है। अत: कृषकों को उत्पादन साधनों की कीमतों, गुणवत्ता एवं उपयोग विधि की पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है।

10.3 रासायनिक उर्वरक

कृषि क्षेत्र से उत्पादों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए उर्वरक प्रमुख उत्पादन साधन है। पूर्व में कृषक फसलों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए देशी खाद (गोबर का खाद, कम्पोस्ट एवं विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जैविक खाद) का उपयोग करते थे लेकिन वर्तमान में कृषि क्षेत्र में उत्पादन में द्रुत गति से वृद्धि की आवश्यकता के कारण रासायनिक उर्वरकों का उपयोग प्रारम्भ हुआ। रासायनिक उर्वरकों की पूर्ति के दो प्रमुख स्रोत है- आन्तरिक उत्पादन, एवं आयात करके फसल उत्पादन की मांग की पूर्ति की जा रही है। विभिन्न तत्वों वाले उर्वरकों के उत्पादन के कारखाने सार्वजनिक, सहकारी एवं निजी क्षेत्रों में स्थापित किए गए तथा वर्ष 2005-06 में उर्वरकों का उत्पादन 15.60 मिलियन टन रहा जिसमें 11.48 मिलियन

टन नत्रजन एवं 4.12 मिलियन टन फॉस्फोरस उर्वरक है। देश में पोटाश उर्वरकों का उत्पादन नही हो रहा है अत: पोटाश उर्वरक की सम्पूर्ण मात्रा विदेशों से आयात की जाती है।

देश में उर्वरकों की कुल उपलब्धता (आन्तरिक उत्पादन + आयात) वर्ष 2005-06 में 19.32 मिलियन टन तथा कुल उर्वरका उपयोग 20.34 मिलियन टन रहा था, इसमें से 12.72 मिलियन टन नत्रजन उर्वरक, 5.20 मिलियन टन फॉस्फोरस उर्वरक एवं 2.41 मिलियन टन पोटाश उर्वरक था। उर्वरकों का अधिक उपयोग खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली फसलों की तुलना में रबी मौसम की फसलों में अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसी प्रकार वाणिज्यिक फसलों एवं सब्जियों के उत्पादन में उर्वरकों का उपयोग, अन्य फसलों जैसे- खाद्यान्न, तिलहन एवं मसाला की अपेक्षा अधिक होता है।

रासायनिक उर्वरकों की खपत (कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर):-

देश में उर्वरकों के उपयोग में हुई तीव्र वृद्धि के बावजूद भी हमारे देश में उर्वरकों का उपयोग स्तर विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। भारत का कुल उर्वरकों के उपयोग की दृष्टि से विष्व में चौथा स्थान (अमेरिका, रुस एवं चीन के बाद) है। भारत में उर्वरकों का प्रति हैक्टेयर खपत विश्व के औसत उपयोग से कम ही है तथा वर्ष 2004-05 में 104.50 किलोग्राम हुआ।

देश के अनेक राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में उर्वरकों के उपयोग का स्तर भारत के औसत स्तर से अधिक है। वर्ष 2004-05 के आंकड़ो के अनुसार प्रति हैक्टेयर समग्र कृषित क्षेत्र पर सर्वाधिक उर्वरक उपयोग पाण्डीचेरी (1100.2 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर), पंजाब (210.1 कि.ग्रा.) आन्ध्रप्रदेश (203.6 किलोग्राम), हरियाणा (166.7 कि.ग्रा.) तमिलनाडु (183.7 किलोग्राम), बिहार (152.3 कि.ग्रा.) एवं उत्तरप्रदेश (140.4 कि.ग्राम) एवं कर्नाटक, गुजरात एवं पश्चिमी बंगाल राज्यों में भी देश के औसत उपयोग से अधिक है। इसके विपरीत राजस्थान, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर राज्यों में उर्वरकों का उपयोग भारत के औसत उपयोग से कम है।

रासायनिक उर्वरकों का विपणन:-

उर्वरकों का विपणन तीनों ही क्षेत्रों की उत्पादित इकाइयों सरकारी, सहकारी एवं निजी क्षेत्र द्वारा किया जाता है तथा इसे आवश्यक उत्पाद की श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है। अत: उर्वरकों की विपणन व्यवस्था अन्य उत्पादन साधनों के विपणन से पूर्णतया भिन्न है।

1- **उर्वरकों के विक्रय केन्द्र** :- देश में प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में उर्वरकों का विपणन दायित्व सहकारी समितियों एवं राज्य सरकार के कृषि विभाग पर था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में उर्वरक वितरण करने का एकाधिकार सहकारी समितियों को दे दिया गया। तत्पश्चात वर्ष 1968 से उर्वरकों के वितरण का अधिकार पंजीकृत उर्वरक उत्पादक कम्पनियों को अपने माध्यम से एवं सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं को दिया गया। इसके फलस्वरुप देश में उर्वरक विक्रय केन्दों की संख्या में विस्तार हुआ है। सरकार से लाइसेन्स प्राप्त केन्द्र ही उर्वरकों के विक्रय का कार्य कर सकते है। इनमें से 70 प्रतिशत विक्रय केन्द्र निजी क्षेत्र में एवं शेष 30 प्रतिशत विक्रय केन्द्र सहकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में है। उर्वरकों का उत्पादन देश में स्थापित कारखानों में होता है एवं विक्रय केन्द्रों के माध्यम से कृषकों तक पहुंचाया जाता है।

2- **उर्वरकों के विपणन माध्यम** :- सहकारी विपणन समितियों के माध्यम से सरकारी एवं सहकारी क्षेत्र में उत्पादित एवं सरकार द्वारा आयातित उर्वरक का विपणन कृषकों को किया जाता है। निजी क्षेत्र में उत्पादित उर्वरक का विपणन लाइसेन्स प्राप्त कम्पनियों के वितरकों द्वारा राज्य, जिला एवं ग्राम पंचायत स्तर पर किया जाता है। निजी क्षेत्र के विक्रय केन्द्र भी सहकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के कारखानों से उर्वरक प्राप्त करके कृषकों को गांवों में उर्वरक उपलब्ध करा रहे है।

3- **उर्वरकों का विपणन** :- सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र में उर्वरकों के उपयोग में वृद्धि करने के उद्देश्य से उर्वरकों के उपयोग विशेष कर लघु एवं सीमान्त कृषकों एवं विशिष्ट फसलों के उत्पादक कृषकों को सिफारिश की गई मात्रा में उर्वरक पर अनुदान दिया जाता है ताकि कृषि उत्पादन के साधनों से कृषि उत्पादन में वृद्धि कर सकें। सरकार द्वारा देश में उत्पादित उर्वरक एवं आयातित उर्वरक की कीमतों को कम करने के लिए अनुदान राशि प्रदान की जाती है।

4- **उर्वरकों की कीमतें** :- उर्वरकों का उत्पादन देश में विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित कारखानों में विभिन्न प्रकार की सामग्री के उपयोग के द्वारा होता है, जिससे उर्वरकों की उत्पादन लागत में बहुत भिन्नता होती है। सरकार की नीति रही है कि उर्वरकों की कीमतों में समान्ता रहे। इस नीति के अनुसार भारत सरकार विभिन्न श्रेणियों के उर्वरकों की वैंधानिक कीमतें निर्धारित करती है।

10.3.1 रासायनिक उर्वरकों का विपणन एवं दोष

सरकार ने उर्वरकों के उत्पादन, पूर्ति, वितरण एवं कीमतों को आवश्यकतानुसार नियंत्रण करने के लिए निम्न अधिनियम पारित किए है जैसे- आवश्यकता उत्पाद अधिनियम (1955)- इसके उर्वरक आवश्यक उत्पाद की श्रेणी में आते है उर्वरक (नियंत्रण) आदेश (1957)- इस आदेश के अन्तर्गत उर्वरकों के उत्पादन, विक्रय, वितरण, कीमत एवं गुणवत्ता को नियंत्रित किया गया है। इस आदेश में उर्वरक विक्रेताओं को भी लाइसेन्स प्राप्त करना होता है तथा उर्वरक (संचालन-नियंत्रण) आदेश (1973)- इस आदेश के द्वारा विभिन्न राज्यों में उर्वरकों के समान रुप से वितरण करने के लिए उर्वरकों का एक राज्य से दूसरे राज्य में संचालन का नियंत्रण सरकार द्वारा किया जाता है। उर्वरकों का व्यापार स्वतन्त्र व्यापार की श्रेणी में नही है। देश में उर्वरकों का वितरण सरकारी, सहकारी एवं निजी क्षेत्रों के अनुज्ञापत्र प्राप्त विक्रय केन्द्रों द्वारा संचालित होता है। कृषकों को उर्वरकों की प्राप्ति के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना होता है जिससे कृषकों को असुविधा के अतिरिक्त धन एवं समय का बहुत व्यय होता है। अत: सहकारी एवं निजी क्षेत्र में उर्वरकों के वितरण में दोष व्याप्त है। जैसे-

1- उर्वरकों के विक्रय केन्द्रों की संख्या अपर्याप्त होना।

2- पर्याप्त मात्रा में मौसम में सभी श्रेणी के उर्वरक उर्वरक विक्रय केन्द्रों पर उपलब्ध नही होना।

3- उर्वरकों में अनावश्यक निष्क्रीय वस्तुओं का अपमिश्रण पाया जाना।

4- निर्धारित मात्रा से कम मात्रा में उर्वरकों का होना।

5- ब्रान्ड उर्वरकों के साथ अन्य तत्वों वाले उर्वरकों को विक्रेता द्वारा कृषकों को देना।

6- उपयोग मौसम में उर्वरकों की कालाबाजारी एवं अधिक कीमत का वसूला जाना।

7- संस्थागत ऋण स्रोतों से उर्वरक क्रय के लिए पर्याप्त मात्रा में समय पर ऋण उपलब्ध नही होना।

8- विक्रय केन्द्रों के संचालकों को उर्वरकों के उपयोग की सही मात्रा, समय एवं विधि का ज्ञान नही होना एवं उपलब्ध ज्ञान को कृषकों को समझाने में रुचि नही लेना, तथा।

9- कृषकों को सरकार की उर्वरकों के विपणन व कीमतों की नीति का पूर्ण ज्ञान नही होना।

10.3.2 रासायनिक उर्वरकों की विपणन प्रणाली को दक्ष बनाने के लिए सुझाव

कृषकों को समय पर सही गुणवत्ता वाले उर्वरक उचित कीमत पर उपलब्ध कराने के लिए विपणन में व्याप्त दोशों का निवारण करना अति आवश्यक है। इसके लिए प्रमुख सुझाव निम्न है-

1- उर्वरकों के विक्रय केन्द्रों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि करना एवं पहाड़ी, रेगिस्तान एवं सड़क से दूर-दराज के गांवों में विक्रय केन्द्रों की स्थापना में वृद्धि करने के लिए क्षेत्रिय व्यक्तियों को लाइसेन्स स्वीकृत करना।

2- उर्वरकों के विक्रय केन्द्रों की अनुज्ञापत्र प्रदान करने हेतु केवल कृषि स्नातक एवं कृषि में प्रक्षिशित युवाओं को प्राथमिकता देना।

3- सरकारी, सहकारी एवं निजी क्षेत्रों के विक्रय केन्द्रों में समन्वय स्थापित करना जिससे उर्वरकों की किसी भी एक संस्था में कमी के समय कृषकों को उर्वरक उपलब्धि में समस्या उत्पन्न नही हो।

4- उर्वरकों की उपलब्धता में वृद्धि करने के लिए दुर्गम एवं कम उपयोग वाले क्षेत्रों में विक्रय केन्द्रों को सहकारी-निजी क्षेत्र को बढावा देना।

5- लघु कृषकों को ध्यान में रखकर उर्वरकों के 50 कि.ग्राम थैलों के बजाय 20 एवं 30 कि.ग्राम के गुणवत्तायुक्त उर्वरक उपलब्ध कराए जावे।

6- उर्वरकों के विक्रय केन्द्रों को कृषि सेवा केन्द्रों के रुप में विकसित किया जावे।

7- मानकीकरण योजना को बढ़ावा देकर विभिन्न ब्रान्ड नाम एवं प्रतिशत मात्रा के तत्वों वाले उर्वरकों में एकरूपता की जावे।

8- उर्वरकों में अपमिश्रण एवं निर्धारित स्तर से कम तत्वों वाले उर्वरकों की बाजार में उपलब्धि को कानून द्वारा नियंत्रित किया जावे।

9- संस्थागत स्रोतो से आवश्यक मात्रा में समय पर उर्वरकों हेतु ऋण उपलब्ध कराने के प्रयास किए जाये।

10-विभिन्न कम्पनियों द्वारा विभिन्न प्रतिशत तत्वों वाले उर्वरकों एवं उनकी कीमतों में उचित सम्बन्ध के लिए समुचित प्रयास किए जाने चाहिए।

10.4 उन्नत किस्म के बीज एवं गुण

कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए उपयुक्त विभिन्न उत्पादन साधनों में उन्नत किस्म के बीज सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते है क्योंकि कृषि उत्पादन प्रमुखतया: उपयोगित बीज की गुणवत्ता पर निर्भर होता है। अत: कृषि उत्पादन में वृद्धि करने में उन्नत एवं उचित गुणवत्ता वाले बीजों का होना अपरिहार्य

है। किसी भी फसल के उत्पादन में होने वाली कुल उत्पादन लागत में बीजों पर होने वाली लागत प्रतिशतता (मूंगफली, चना, मटर, सब्जियों के अतिरिक्त) के रुप में बहुत कम होती है, लेकिन उत्पादित उत्पाद की मात्रा एवं गुणवत्ता पूर्णतया उपयोगित बीजों की किस्म एवं उनमें पाए जाने वाले गुणों पर निर्भर करती है। विभिन्न फसलों के लिये उपयोगित बीजों में निम्न गुणों का होना अति आवश्यक है जैसे- बीज आनुवांक रुप में अच्छी किस्म, भूमि में उगने की तीव्र शक्ति, अच्छी ओजस्विता, बाहरी वस्तुओं एवं खरपतवारों के बीजरहित तथा बीज किस्म के अनुसार सत्यता वाले होने चाहिए।

10.4.1 बीजों की मांग, पूर्ति एवं कीमत

बीजों की कुल मांग, कृषि त किए जाने वाली भूमि के क्षेत्र पर निर्भर होती है। भारत में वर्तमान में 200 मिलियन हैक्टेयर भूमि के क्षेत्र पर प्रतिवर्ष कृषि की जाती है। अत: इस भूमि के लिए क्षेत्र की जलवायु एवं कृषकों द्वारा ली जाने वाली विभिन्न फसलों के लिए बीजों की निरन्तर मांग होती है। बीजों की पूर्ति प्रमुख्यतया: से सार्वजनिक क्षेत्र जैसे- राष्ट्रीय बीज निगम, राज्यों के फार्म निगम एवं राज्य बीज निगम आदि है तथा निजी क्षेत्र में प्रगतिशील कृषकों के फार्म पर राष्ट्रीय /राज्य/इफको/कृभको/राज्यों के फार्म निगम की देखरेख में उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का उत्पादन करके पूर्ति करना सम्मिलित है। वर्तमान में वाणिज्यिक स्तर पर विक्रय किये जाने वाले उन्नत बीजों की 46 प्रतिशत मात्रा की पूर्ति निजी क्षेत्र की बीज कम्पनियां कर रही है। सामान्यत: बीज के लिए उपयोगित उत्पाद की कीमतें उसके अन्य कार्यो में उपयोगित उत्पाद की अपेक्षा अधिक होती है। संगठित क्षेत्र में बीजों की पूर्ति करने वाली संस्थाओं द्वारा बीजों की कीमतें उनके उत्पादन में आने वाली लागत के आधार पर सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। यह कीमत सामान्य किस्म के बीजों की अपेक्षा कई गुना (2-4 गुना) अधिक होती है। निजी उत्पादक एवं बीज उत्पादक कम्पनियां, अपने बीजों के अधिक प्रचार-प्रसार एवं साख के कारण बीजों की कीमतें वास्तव उत्पादन लागत से बहुत अधिक स्तर पर निर्धारित करती है। इसमें विभिन्न स्तर पर नियुक्त एजेन्टों के लाभ की राशि भी सम्मिलित होती है।

10.4.2 बीजों का विपणन

उन्नत बीजों के विपणन में प्रमुखता से संगठित एवं असंगठित क्षेत्र है अत: उन्नत बीजों का विक्रय माध्यम उनकी पूर्ति के स्रोतों के अनुसार होते है। संगठित क्षेत्रों में उत्पादित बीजों के वितरण के लिए राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय बीज निगम अपने विक्रय केन्द्रो के माध्यम से कृषकों को बुवाई से पूर्व बीज उपलब्ध कराते है। संगठित क्षेत्रों के विक्रय केन्द्र मुख्यतया शहरों एवं बड़े कस्बों में होते है। गांवों में संगठित संस्थाओं के विक्रय केन्द्र नही होने से कृषकों को समय पर उन्नत बीज प्राप्ति में अनेक समस्याएं होती है। असंगठित क्षेत्र के बीजों की पूर्तिकर्ता प्रमुखतया विक्रेता निजी व्यवसायी, बीज कम्पनियां, कृषि उद्योग केन्द्र तथा कृषि व्यवसाय केन्द्र होते है। ये व्यवसायी अपनी दुकानों अथवा विक्रय केन्द्रो के माध्यम से कृषकों को विभिन्न फसलों के उन्नत बीज उपलब्ध कराते है। असंगठित क्षेत्रों के बीज विक्रय केन्द्र गांवों में भी होते है, जो कृषकों को विभिन्न फसलों के उन्नत बीज उपलब्ध कराते है। इनके द्वारा अपनाई गई बीज विपणन व्यवस्था की अनेक क्षेत्रों में अलोचना की जाती है। अधिक लाभ की प्राप्ति के लिए निजी क्षेत्र की बीज विपणन व्यवस्था में विपणन कुरीतियों का पाया जाना सामान्य प्रक्रिया है। अत:

बीजों के विपणन को नियंत्रित करने के बीज कानून आवश्यक उत्पाद की श्रेणी में वर्गीकृत है। बीज के उत्पादन, बीजों की गुणवत्ता बनाए रखने एवं उनके विपणन के लिए सरकार ने निम्न अधिनियम पारित किए है जैसे- आवश्यक उत्पाद अधिनियम (1955), बीज अधिनियम (1966), बीज नियन्त्रण आदेश (1983) एवं बीज नीति कानून (1988) इत्यादि।

10.4.3 बीजों के विपणन में समस्याएं

बीजों की विपणन प्रक्रिया अन्य उत्पादन साधनों की विपणन प्रक्रिया से अनेक कारकों में भिन्नता लिए हुए होती है। बीजों के विपणन में प्रमुख समस्याएं इस प्रकार है।

1- **सामयिक पूर्ति** :- बीजों की पूर्ति कृषकों को सही समय पर करना आवश्यक है क्योंकि बीजों की बुवाई के लिए उचित मौसम, तापक्रम व नमी का भूमि में होना आवश्यक है। कुछ समय की देरी से उनकी अंकुरण क्षमता में कमी हो जाती है इससे उत्पादन प्रभावित होता है।

2- **क्षेत्रनुसार बीजों की पूर्ति** :- विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं भूमि पाई जाती है उसी के अनुसार विभिन्न फसलों की किस्मों के बीजों की क्षेत्रनुसार पूर्ति करना आवश्यक है।

3- **उचित परिवहन व्यवस्था** :- बीजों का उत्पादन फार्मो पर होता है। अत: उत्पादन स्थान से उपभोग स्थान तक सुरक्षित रुप में बीजों को समय पूर्व परिवहन करना होता है।

4- **उचित भंड़ारण व्यवस्था** :- कृषकों को समय पर बीज उपलब्धि की निश्चितता के लिए उनको उत्पादन मौसम से उपभोग समय तक उचित विधि से संग्रहण करना होता है। संग्रहण काल में भण्डारणगृह का उचित तापक्रम बनाए रखना आवश्यक है अन्यथा अंकुरण क्षमता की प्रतिशतता में कमी आ जाती है।

5- **संस्थाओं का आपस में समन्वय** :- बीजों के उत्पादन से वितरण काल के मध्य में विभिन्न संस्थाओं द्वारा अनेक कार्य सम्पन्न किए जाते है जैसे बीज अधिप्राप्ति, विक्रय प्रोत्साहन एवं ऋण। अत: इन कार्यो को करने वाली संस्थाओं से भी बीज विपणन संस्था को समन्वय बनाना आवश्यक है।

6- **कीमत निर्धारण** :- उन्नत किस्मों के बीजों की कीमतों का अधिक होना।

7- **विक्रेताओं की साख** :- कृषक विपणनकर्ताओं के विश्वास से बीजों को क्रय करते है। किसानों को उचित परिणाम बीजों के उपयोग करने के पश्चात प्राप्त होते है। बीजों का अंकुरण सही नही होने से कृषक को कम उत्पादन प्राप्त होता है जिससे उनकों आर्थिक हानी उठानी पड़ती है।

10.5 पौध संरक्षण रासायन एवं नियंत्रण के लिये अधिनियम

कृषि क्षेत्र में उत्पादन की उत्पादित होने वाली मात्रा की रक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के पौध संरक्षण रासायनों का उपयोग करना होता है। फसलों के उत्पादन काल में पौधों पर अनेक बीमारियों, कीडों-मकोड़ों, खरपतवार, फंफूद आदि लगने के कारण उत्पादन में कमी होने की आशंका बनी रहती है तथा कई बार पूरी फसल नष्ट हो जाती है। अत: पौध संरक्षण उपायों को अपनाकर फसल की रक्षा की जाती है। उत्पादों के उत्पादन के पश्चात उत्पादित उत्पादों में विभिन्न कारणों से होने वाली मात्रात्मक एवं

गुणात्मक हानि से रक्षा के लिए भी विभिन्न रासायनों का उपयोग किया जाता है। फसल उत्पादन में फसल की रक्षा, उत्पादित उत्पादों की रक्षा के समान ही महत्वपूर्ण होता है। पौधा संरक्षण के लिए उपयोगित रासायन, उनके द्वारा रक्षित किए जाने वाले स्रोतों के अनुसार विभिन्न वर्गो में विभक्त किए जाते है। जैसे :- कीटनाशक, फंफूदनाशक, खरपतवारनाषक, कृन्तकनाषक, घूमकनाषक एवं पौध-वृद्धि नियंत्रक रासायन इत्यादि।

कीटनाशक रासायन अधिनियम (1968) के द्वारा कीटनाशक रासायनों का उत्पादन, वितरण, उपभोग एवं आयात का नियन्त्रण किया जाता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत रासायनों के निर्माता एवं वितरकों को राज्य के कृषि विभाग से लाइसेन्स का अनुज्ञापत्र लेना होता है

10.5.1 कीटनाशी रासायनों का उत्पादन, मांग एवं पूर्ति

भारत में कीटनाशक रासायनों का उपयोग वर्ष 1952 में बी.एच.सी. रासायन के आयात के उपरान्त प्रारम्भ हुआ, जबकि देश में विभिन्न रासायनों का उत्पादन वर्ष 1958 में प्रारम्भ हुआ था तथा वर्ष 2001 में पौध संरक्षण रासायनों का उत्पादन 80 हजार टन था। वर्ष 1955-56 में कीटनाशक रासायनों का कुल उपयोग 2.35 हजार टन तथा प्रति हैक्टेयर उपयोग मात्र 16 ग्राम था, जो बढकर वर्ष 1990-91 में 75 हजार टन एवं उपयोग 433 ग्राम प्रति हैक्टेयर था। नब्बे के दशक में जैविक नियंन्त्रण एवं समन्वित कीट-प्रबन्धन पर अधिक जोर दिए जाने के कारण कीटनाशक रासायनों का उपयोग कम होकर वर्ष 1999-2000 में 44 हजार टन ही रह गया है जिसके कारण प्रति हैक्टेयर कृषित क्षेत्र पर रासायनों के उपयोग की मात्रा में कमी हुई है। भारत में कीटनाशी रासायनों के उपयोग का स्तर विश्व के विकसित देशों (जापान 10790 ग्राम, यूरोप 2000 ग्राम, एवं अमेरिका 1600 ग्राम प्रति हैक्टेयर) की अपेक्षा बहुत कम है। भारत में सर्वाधिक कीटनाशी रासायनों के कुल उपयोग का आन्ध्रप्रदेश (33.6 प्रतिशत), कर्नाटक (16.2 प्रतिशत), गुजरात (15.2 प्रतिशत), एवं पंजाब (11.4 प्रतिशत) राज्यों का हिस्सा है। भारत में कीटनाशी रासायनों का उत्पादन, मांग के अनुरुप नही होने के कारण करीब 40 प्रकार के कीटनाशी रासायनों का आयात किया जा रहा है। यह आयात निकट भविष्य में खाद्यान्नों, सब्जियों एवं फलों आदि की नई किस्मों के आविश्कार के साथ-साथ बढ़ने के आसार है।

10.5.2 कीटनाशी रासायनों का विपणन एवं कीमतें

कीटनाशक रासायनों का बाजार पूर्ण प्रतिस्पर्धा का नही होकर एकाधिकारात्मक एवं अल्पाधिकारी श्रेणी का है। इन रासायनों के उत्पादकों की संख्या कम है लेकिन अनेक निर्माता विभिन्न नाम से एक ही तत्व वाले कीटनाशी रासायनों का उत्पादन कर रहे है। कीटनाशक रासायनों के वितरण के लिए विभिन्न निर्माता शहरों एवं गावों में अपने-अपने वितरक नियुक्त करते है। सहकारी क्षेत्र में निर्मित कीटनाशी रासायनों का विपणन सहकारी विपणन समितियों के माध्यम से एवं निजी क्षेत्र की कम्पनियों द्वारा निर्मित कीटनाशी रासायनों का वितरण लाइसेन्स प्राप्त विक्रेताओं, विक्रय केन्द्रों एवं कृषि सेवा केन्द्रो के माध्यम से किया जाता है। इसके साथ ही निजी क्षेत्र के विक्रेता, कृषि सेवा केन्द्र एवं कृषि व्यापार केन्द्र कृषकों को कीटनाशी रासायनों के उपयोग के लिए मशीनें भी किराये पर उपलब्ध कराते है। चूंकि इन मशीनों का क्रय करना लघु एवं सीमान्त कृषकों के लिए लाभकर नही होता है।

पौध संरक्षण हेतु उपयोग में लिये लाने वाले विभिन्न रासायनों की कीमतें निर्माता कम्पनी उनकी उत्पादन-लागत, मांग व पूर्ति की स्थिति एवं बाजार में प्रतिस्पर्धा की स्थिति के आधार पर अधिकतम खुदरा कीमत निर्धारित करती है। कम्पनी अपने वितरकों को विक्रय कार्य के लिए निर्धारित दर पर कमीशन देती है। रासायनिक उत्पादों की कीमतों के निर्धारण करने में सरकार प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नही करती है बल्कि कीमतों के नियंत्रण के लिए सरकार ने कीटनाशक रासायन अधिनियम, 1968 पारित किया है। सरकार द्वारा कृषि विभाग के माध्यम से कुछ चुनी हुई फसलों जैसे-दलहन एवं तिलहन के उत्पादन में आवश्यक वृद्धि के लिये लघु एवं सीमान्त कृषकों के द्वारा उपयोग में लिये जाने वाले कीटनाशक रासायनों पर अनुदान दिया जाता है। यह सहायता राशि अनुदान के रुप में सरकार सीधे ही विक्रेता/निर्माता को भुगतान करती है।

10.5.3 कीटनाशी रासायनों के विपणन में समस्याएं एवं सुझाव

इन रासायनों के क्रय करने में कृषकों को निम्न समस्याओं का सामना करना होता है।

1- कीट एवं कीटनाशक रासायनों के विक्रय केन्द्र कृषकों के गांव एवं फार्म के निकट नही होना।

2- प्राय: विक्रय केन्द्रों पर कृषकों द्वारा उपयोग किए जाने वाले कीटनाशी रासायनों का उपलब्ध नही होना।

3- फसल पर बीमारी एवं कीड़ों के आक्रमण का सही पहचान नही कर पाने के कारण उनके नियन्त्रण हेतु उचित रासायन की मात्रा, उपयोग, समय एवं विधि का कृषकों को सही ज्ञान नही होना।

4- विक्रेताओं के द्वारा कृषकों को पुराने एवं अवधिपार कीटनाशी रासायनों का बेचना जिनके उपयोग से अच्छा परिणाम नही मिलना।

5- कीटनाशी रासायनों की कीमतों का कम्पनी द्वारा ऊँचे स्तर पर निर्धारित करना एवं स्थानीय विक्रेताओं द्वारा वृहत प्रकोप के समय अधिक कीमत वसूलना।

6- कीटनाशी रासायनों के उपयोग के लिए स्प्रेयर एवं डस्टर्स मशीनों का छिड़काव समय पर किराये पर उपलब्ध नही होना।

7- कीटनाशी रासायनों के उपयोग के समय असावधानी बरतने पर उपयोगकर्ता के स्वास्थ्य पर विपरीत असर होना एवं कभी-कभी मृत्यु तक भी हो जाना।

8- कीटनाशी रासायनों के अधिक मात्रा में उपयोग करने से फसल का जल जाना।

कीटनाशक रासायनों की वर्तमान विपणन व्यवस्था में अनेक दोष व्याप्त है। इनका निराकरण करके विपणन को दक्ष बनाना आवश्यक है। पौध संरक्षण रासायनों की विपणन व्यवस्था में सुधार के लिए निम्न सुझाव प्रेषित है -

1- पौध संरक्षण रासायनों के विक्रय केन्द्रो की ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि क्लिनिक एवं कृषि व्यापार केन्द्र की स्थापना के प्रयास किए जाने चाहिएँ।

2- पौध संरक्षण रासायनों के विक्रय के लिए सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यक ता है क्योंकि सहकारी समितियाँ पंचायत स्तर पर स्थापित है उन्हे विकसित करने के प्रयास करने चाहिये।

3- विक्रय केन्द्रों पर कृषकों को स्प्रेयर्स एवं डस्टर्स उचित किराये पर सही स्थिति में उपलब्ध होने की व्यवस्था होनी चाहिए।

4- प्रक्षिशित तकनीकी सलाहकार की सेवाएँ प्रत्येक विक्रय केन्द्र पर कृषकों को उपलब्ध होने की व्यवस्था होनी चाहिए।

5- नए कारखानों की स्थापना के लिए उद्यमियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि कीटनाशी रासायनों के उत्पादन में वृद्धि मांग के आधार पर हो सके।

6- खरीफ एवं रबी मौसम में कृषकों के लिए फसलों में कीटनाशी रासायनों के उपयोग के बारे में प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

7- कीटनाशी रासायनों के उपयोग के कुप्रभावों से कृषकों की रक्षा के लिए रासायनों के डिब्बे पर स्थानीय भाषा में मोटे अक्षरों में सावधानियाँ अंकित की जानी चाहिएँ।

8- कीटनाशी रासायनों के फसल पर आने वाले कुप्रभावों से रक्षा के लिए जैविक या समन्वित कीट-व्याधि प्रबन्धन विधि को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए इससे उत्पादों की उत्पादन लागत में भी कमी होगी।

10.6 विद्युत व डीजल-आयल तेल

कृषि उत्पादों की उत्पादन प्रक्रिया में विद्युत, डीजल व आयल तेल भी प्रमुख उत्पादन साधन के रुप में उपयोगित किए जाते है। इनका उपयोग कृषि कार्यो के करने में उपयोगित मशीनें जैसे सिंचाई के लिए पानी उठाने की मोटर, जुताई, बुवाई एवं कटाई के लिए उपयोगित ट्रेक्टर चालित कल्टीवेटर, सीड़ड्रील, थ्रेसर, औसाई के यन्त्र एवं कुट्टी काटने की मशीन आदि के संचालन में काम आता है।

10.6.1 विद्युत का उपयोग, मांग, पूर्ति, कीमतें, विपणन एवं विपणन समस्याएं

वर्तमान कृषि में विद्युत महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य उत्पादन साधन है। विद्युत शक्ति का उपयोग कृषि क्षेत्र में विभिन्न कृषि कार्यो को समय पर एवं उचित दक्षता से करने के लिए होता है जैसे- कुओं/ट्यूब वैल से सिंचाई हेतु पानी उठाने के पम्प, थ्रेसर एवं औसाई की मशीनों , कृषि आधारित उद्योग (आटा-चक्की, तेल निकालने का कोल्हू एवं मशीनें, दाल-मिल, फल एवं सब्जी परिक्षण उद्योग, दुध उद्योग व शीत संग्रहगृह) के संचालक में किया जाता है। विद्युत से मशीनों के संचालन में अन्य साधनों जैसे- डीजल व आयल तेल, पशुशक्ति एवं मानव शक्ति की अपेक्षा प्रति इकाई कार्य पर लागत कम आती है।

विद्युत शक्ति की आपूर्ति गैर कृषि क्षेत्र के स्रोतों से होती है। विद्युत उत्पादन के तीन प्रमुख स्रोत जल, उशणीय एवं नाभिकीय है। इन स्रोतों में से सर्वाधिक विद्युत उत्पादन उशणीय स्रोत से करीब 75 प्रतिशत होकर पूर्ति की जाती है। देश मे विद्युत का उत्पादन (वर्ष 2004-05) में 594.4 बिलियन किलोवाट था

उसमें से 492.8 बिलियन किलोवाट विद्युत का उत्पादन थर्मल (82 प्रतिशत) स्रोत से एवं 84.6 बिलियन किलोवाट विद्युत जलीय एवं वायु (14 प्रतिशत) क्षेत्र से हुआ था। विद्युत का उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में सरकार द्वारा प्रत्यक्ष रुप में एवं सरकार द्वारा स्थापित कम्पनियों द्वारा किया जाता है। प्रारम्भ से वर्तमान समय तक सरकार ही इसकी उत्पादक एवं वितरण का कार्य करती रही है। अत: विद्युत का एकाधिकार बाजार था। एकाधिकार बाजार के होने से इसकी पूतिकर्ता (सरकार) एवं उपभोक्ता-कृषकों के मध्य मध्यस्थ नही है।

विद्युत का उपयोग अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में हो रहा है। अत: उत्पादित विद्युत का उपयोग कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त घरेलू वाणिज्यिक, औद्योगिक एवं रेलवे क्षेत्र में भी होता है। कृषि क्षेत्र में विद्युत के उपयोग में वृद्धि करने के लिए विद्युत का प्रसारण गांवों तक करना होता है। विद्युत की प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ती मांग को पूरा करना सरकार के लिए सम्भव नही होने से सरकार ने निजी क्षेत्र की कम्पनियों को विद्युत उत्पादन करने की वर्तमान में अनुज्ञा प्रदान की है। निजी क्षेत्र की कम्पनियों द्वारा उत्पादित विद्युत के वितरण का कार्य सरकार करती है। देश में कुछ राज्य सरकारों ने विद्युत उत्पादन एवं वितरण में सुधार के विशेष कार्यक्रम प्रारम्भ किए है, जिनके अन्तर्गत विद्युत उत्पादन, प्रसारण एवं वितरण कार्य को सुचारु रुप में कार्यन्वित करने के लिए पृथक विद्युत कम्पनियाँ स्थापित की गई है।

विद्युत उत्पादन एवं वितरण का सरकार द्वारा एकाधिकारी बाजार के रुप में होने के कारण, इसकी कीमतें सरकार द्वारा नियत की जाती है। विद्युत की कीमतों के निर्धारण में सरकार विभेदक कीमत नीति अपनाती है, जिसके कारण विभिन्न क्षेत्रों में विद्युत आपूर्ति की दर भिन्न-भिन्न होती है। इस नीति के अन्तर्गत देश का प्रमुख कृषि क्षेत्रों को विद्युत न्यूनतम कीमत पर उपलब्ध कराई जाती है। वर्तमान में सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र में विद्युत की आपूर्ति, उत्पादन लागत से भी कम कीमत पर की जाती है। अत: विद्युत बोर्ड एवं कम्पनियों को कृषि क्षेत्र में विद्युत आपूर्ति से हो रही हानि को सरकार सहायता राशि के रुप में उपलब्ध कराती है। विभिन्न राज्यों में विद्युत दर अलग-अलग है क्योंकि विद्युत दरें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है।

विद्युत आपूर्ति, मांग की अपेक्षा कम होने के कारण इसके वितरण में अनेक समस्याएं व्याप्त है। इनमें से कृषकों को आवश्यक मात्रा में समय पर विद्युत उपलब्ध नही होना प्रमुख है। उत्पादन मौसम में फसलों की सिंचाई के लिए कृषकों को आवश्यक मात्रा में बिजली उपलब्ध नही होने से सिंचाई कार्यक्रम बाधित होता है और उत्पादों के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव आता है।

10.06.02 डीजल व आयल तेल

कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में आज भी विधुत की उपलब्धता नही होने से कुओं/ट्यूबवैलों से पानी उठाने के लिये पम्प को चलाने, ट्रेक्टर से खेत की जुताई, बुवाई, कटाई तथा मंड़ाई एवं परिवहन कार्यो के करने एवं अन्य गतिशील यन्त्रों को कार्यरत रखने में डीजल व आयल तेल की आवश्यक ता होती है। डीजल व आयल तेल का बाजार अल्पक्रेताधिकार की श्रेणी में आता है। डीजल व आयल तेल की पूर्तिकर्ता तीन कम्पनियां प्रमुख्यतया: हिन्दुस्तान पैट्रोलियम, भारत पैट्रोलियम एवं भारतीय तेल निगम है। यह कम्पनियां अपने संग्रहण स्थानों से पूर्तिकेन्द्र/पैट्रोल पम्प के माध्यम से निर्धारित कीमत पर डीजल व

आयल तेल कृषकों को उपलब्ध कराती है। डीजल व आयल तेल की कीमतें, तेल उत्पादक कम्पनियां अपने संघ के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय बाजार की कीमतों के आधार पर निर्धारित करती है। विभिन्न राज्यों में डीजल व आयल तेल की कीमतों में सीमान्त अन्तर उनके संग्रहण स्थान से दूरी के कारण परिवहन लागत, बिक्रीकर, चुंगीकर में विभिन्नता के कारण पाया जाता है। डीजल व आयल तेल के सुनियोजित वितरण के लिए सरकार विभिन्न कम्पनियों के पेट्रोल पम्पों से बिक्री प्रारम्भ करने के लिए लाइसेन्स जारी करती है। स्वीकृत पम्पों पर डीजल व आयल तेल की कीमतों के नियन्त्रण, अपमिश्रण एवं नाप की बेइमानी को रोकने के लिए निरन्तर जांच की जाती है तथा अनियमितताएँ पाए जाने पर आवश्यक कानूनी कार्यवाही में लाइसेन्स रद्द करना भी सम्मिलित है।

10.7 फार्म मशीनरी निर्माण, मांग एवं विपणन

फार्म पर विभिन्न कृषि कार्यो के करने जैसे खेत की जुताई, बुवाई, कटाई, गहाई व मंड़ाई करने, कुओं/ट्यूबवैल से पानी उठाने, कीटनाशी रासायनों के छिड़काव करने एवं प्राप्त उत्पाद को मंडी में परिवहन करने के लिए विभिन्न फार्म मशीनों की आवश्यक ता होती है। उपरोक्त कृषि कार्यो के करने के लिए ट्रैक्टरचालित सीडड्रील, हार्वेस्टर, थ्रेसर, विनोवर, विद्युत/डीजल चलित पम्पसैट, कुट्टी काटने की मशीन , दवा छिड़कने के लिए स्प्रेयर एवं डस्टर, ट्रैक्टर ट्राली एवं अन्य मशीनों की आवश्यक ता होती है। इन फार्म मशीनों की सहायता से कृषि कार्यो को समय पर एवं उचित स्तर तक कर पाना सम्भव होता है। फार्म मशीनरी का बाजार एकाधिकारात्मक अथवा अल्पक्रेताधिकार श्रेणी का होता है। विभिन्न फार्म मशीनों के निर्माताओं की संख्या सीमित होती है एवं प्रत्येक निर्माता विभिन्न प्रकार की मशीनों का निर्माण करता है। विभिन्न निर्माताओं द्वारा एक ही कार्य करने की फार्म मशीन द्वारा किए जाने वाले कार्य एवं मशीन में उपयोगित विद्युत शक्ति अथवा डीजल व आयल तेल की खपत का स्तर भिन्न-भिन्न होता है।

फार्म मशीनों की मांग प्रत्यक्ष श्रेणी की नही होकर, व्युत्पन्न श्रेणी की होती है। अत: फार्म मशीनों की मांग फसल एवं फसल में किए जाने वाले कार्यो के करने की आवश्यक ता पर निर्भर करती है। अधिकांश फार्म मशीनों की मांग फार्म पर निरन्तर नही होकर, उत्पादन मौसम में कुछ ही समय के लिए होती है और शेष समय मशीने बेकार रहती है। मशीनों के उपयोग में नही आने के समय, कृषकों द्वारा उनकी देखभाल नही की जाती है एवं फार्म पर उन्हे खुले में रख दिया जाता है, जिससे उनमें जंग लगने से वे खराब हो जाती है। अत: कृषकों द्वारा आगामी फसल में उपयोग से पूर्व इनकी मरम्मत कराना आवश्यक होता है। सभी प्रकार की जोत के फार्म पर उपयोग के लिए उचित मशीनों का अभाव होता है। फार्म मशीनों का किराए पर उपलब्धि का स्तर भी आवश्यक ता के अनुरुप नही है। फार्म मशीनों का उत्पादन पूर्णतया: निजी क्षेत्र एवं उनका विपणन कम्पनी द्वारा नियुक्त वितरकों द्वारा किया जाता है। कम्पनी ने नियुक्त विक्रेताओं के व्यवसाय केन्द्र बड़े शहरों में होते है। विभिन्न कम्पनियों के वितरकों द्वारा ग्राम स्तर पर विक्रय थोक एवं खुदरा व्यापारियों के द्वारा किया जाता है। प्रत्येक वितरक फार्म मशीनों के साथ-साथ उनके पुर्जे भी रखते है तथा फार्म मशीनों का विक्रय कार्य करने के लिए लाइसेन्स लेने की आवश्यक ता नही होती है। गांव में व्यापारिक कृषि यन्त्रों एवं उनके पुर्जो जैसे- ट्रैक्टर, थ्रेसर, सीड ड्रील,

पम्पसेट आदि विक्रय की जाती है तथा वितरकों को निर्धारित दर से कमीषन मिलता है। वितरक फार्म मशीनों के अतिरिक्त, उनके पुर्जे एवं मशीनों की मरम्मत के लिए वर्कषाप का भी संचालन करते है। वर्कषाप में प्रषिक्षित मैकेनिकों द्वारा मशीनों की मरम्मत का कार्य किया जाता है। फार्म मशीनरी में कृषकों द्वारा सर्वाधिक उपयोग खेत की जुताई, बुवाई, कटाई, सिंचाई के लिए पम्प सैट एवं परिवहन आदि कार्य ट्रैक्टर से किया जाता है।

निजी क्षेत्र में मशीनों की निर्माता कम्पनियों के द्वारा संचालित वर्कशॉप में खराब हुए मशीनों एवं उनके पुर्जो की मरम्मत सेवाएँ आदि कृषकों को उचित कीमत पर दक्षतापूर्ण गारण्टी के साथ करते है। बड़े कस्बों में निजी क्षेत्रों में कार्यरत वर्कशॉप अव्यवस्थिति श्रेणी की है तथा फार्म मशीनों के आवश्यक पुर्जो एवं मरम्मत की मजदूरी वर्कशॉप स्वामी इच्छानुसार लेते है। अत: मशीन के खराब होने पर कृषक अपने विश्वास के मिस्त्री अथवा वर्कशॉप में मशीन को ठीक करवाने के लिए ले जाता है।

10.8 मानव श्रम

कृषि क्षेत्र में मानव श्रम का भी प्रमुख स्थान है। खेतों पर विभिन्न फसलों के उत्पादन में किए जाने वाले कार्यो में मानव श्रम की आवश्यकता होती है जिसे कृषकों के द्वारा स्वंय परिवार के सदस्यों की सहायता से की जाती रही है। वर्तमान में कृषकों द्वारा सघन कृषि प्रणाली अपनाने एवं वाणिज्यिक फसल लेने से मानव श्रम की मांग में वृद्धि हुई है। इस बढ़ी हुई मांग की पूर्ति कृषक आकस्मिक एवं स्थायी श्रम सेवाए प्राप्त करके पूरी करते है। कृषि क्षेत्र में रबी की फसलों में श्रम साधन की मांग खरीफ फसलों की अपेक्षा अधिक होती है। इसी प्रकार फसल की बुवाई, कटाई एवं मंड़ाई के समय मौसम में श्रम साधन की आवश्यक ता अन्य समय की अपेक्षा अधिक होती है। भारत में सामान्यत: कृषि क्षेत्र में श्रम की उपलब्धता मांग से अधिक है अत: श्रम साधन की बाजार कीमत का स्तर कम ही रहता है। कृषि क्षेत्र में श्रमिकों के द्वारा श्रम साधन की पूर्ति करने पर भुगतान की जाने वाली राशि को मजदूरी कहते है। मजदूरी की दर का निर्धारण उनकी मांग एवं पूर्ति के आधार पर होता है। आकस्मिक श्रमिकों को दैनिक आधार पर एवं स्थायी श्रमिकों को फसल मौसम, अर्द्ध-वार्षिक अथवा वार्षिक के आधार पर तय दर से मजदूरी का भुगतान किया जाता है। श्रमिकों को उचित मजदूरी का भुगतान करने के लिए सरकार ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948) पारित किया है इसमें समय-समय पर सरकार पुन: मुल्यांकन करके मजदूरी की दर निर्धारित करती रही है तथा उपयोगकर्त्ता को इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक को मजदूरी का भुगतान करना अनिवार्य है।

10.9 कृषि ऋण

कृषि क्षेत्र में विभिन्न उत्पादों के उत्पादन करने के लिए कृषि ऋण भी प्रमुख उत्पादन साधन है। फार्म पर आवश्यक विभिन्न उत्पादन साधनों जैसे-उन्नत बीज, रासायनिक उर्वरक, कीट एवं फफूंदीनाषक रासायन, फार्म मशीनरी, डीजल/विद्युत एवं अन्य साधनों के क्रय करने के लिए वित्त की आवश्यक ता होती है। कृषक इन उत्पादन साधनों को क्रय हेतु आवश्यक वित्त की पूर्ति स्वयं के स्रोतों से पूरी करने में समर्थ नही होते है अत: आवश्यक वित्त राशि ऋण के रुप में कृषक संस्थागत एवं गैर संस्थागत स्रोतों से

प्राप्त करते है। कृषि क्षेत्र में ऋण की आवश्यक ता में निरन्तर वृद्धि हो रही है, क्योंकि वर्तमान में उत्पादन करने के लिए सभी उत्पादन साधनों एवं उनकी बढ़ती कीमतों के कारण बाजार से ही क्रय करना होता है। कृषि क्षेत्र में ऋण उपलब्धि कम होने के कारण पूर्व में कृषक ऋण की पूर्ति गैर संस्थागत स्रोतों से अधिक ब्याज पर लेकर पूरी करते थे। सरकार ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण वर्ष 1966 के उपरान्त कृषि क्षेत्र को अधिक ऋण कम ब्याज पर उपलब्ध कराने की अनेक योजनाएँ प्रारम्भ की है। इन योजनाओं के प्रारम्भ होने के पष्चात् कृषि क्षेत्र में ऋण उपलब्धता में आषातीत वृद्धि हुई है। कृषकों के द्वारा ऋण प्राप्ति पर ऋणदात्री संस्था को भुगतान हेतु की जाने वाली अतिरिक्त राशि को ब्याज कहते है। विभिन्न संस्थाएँ विभिन्न अवधि के लिए लिये गए ऋण पर नियमानुसार दर से ब्याज लेती है। कृषकों को समय पर उचित दर पर ऋण प्राप्त होने में अनेक परेशानियां हो रही है जिनके निराकरण के लिए सरकार प्रयासरत है तथा लघु एवं सीमान्त कृषकों को कृषि क्षेत्र में संस्थागत स्रोतों से कम ब्याज दर पर विभेदक ब्याज दर नीति के अन्तर्गत सरकार द्वारा ऋण उपलब्ध कराया जाता है।

10.10 सारांश

कृषि उत्पादन को बढावा देने हेतु कृषि क्षेत्र में उत्पादन हेतु साधनों का सामयिक प्रबन्धन से कृषि लागत को कम करके किसानों को अधिकाधिक लाभ मिल सके इस हेतु उत्पादन प्रति इकाई क्षेत्र बढ़ाने में संस्थागत एवं निजी क्षेत्र की भागीदारी का आपस में सामन्जस्य बनाकर किसानों को एकल खिड़की से साधनों की सुनिश्चित उपलब्धता करानी होगी। इससे सुविधा से कृषकों को कम लागत, समय एवं अच्छी गुणवत्तायुक्त कृषि आदान मिलने से कृषक अपना बेहतर प्रबंधन अपना उत्पादन की आशातित वृद्धि भविष्य में कर सकता है।

10.11 अभ्यास प्रश्न

1- कृषि में हरित क्रान्ति किसे कहा गया है।

(क) संसाधन बढ़ाने को (ख) अन्न उत्पादन को

(ग) विधुत उत्पादन को (घ) संसाधन एवं विधुत उत्पादन को

2- देश में सबसे ज्यादा कौनसे रासायनिक उर्वरकों का उत्पादन किया जाता है।

(क) नत्रजन (ख) फॉस्फोरस

(ग) पोटाश (घ) फॉस्फोरस एवं पोटाश

3- भारत कौनसे रासायनिक उर्वरक का आयात करता है।

(क) नत्रजन (ख) फॉस्फोरस

(ग) पोटाश (घ) गंधक

4- भारत में बीज अधिनियम किस वर्ष पारित किया था।

(क) 1955 (ख) 1966

(ग) 1983 (घ) 1975

5- स्रकार ने किस वर्ष न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पारित किया था।

(क) 1935 (ख) 1960

(ग) 1940 (घ) 1948

प्रश्नों के उत्तर

1- (ख) 2. (क) 3. (क) 4. (ख़) 5. (घ)

10.12 संदर्भ ग्रन्थ

- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर। पेज संख्या 387-413
- S. S. Acharya and N. L. Agarwal. 2007. Agricultural Marketing in India. Oxford & IBH Publications, Calcutta. pp. 205-255.
- S. Subba Reddy, P. Raghu Ram, T. V. Neelakanta Sastry and I. Bhavani Devi. 2006. Agricultural Economics. Oxford & IBH Publications, Calcutta. pp. 61-80.
- K. K. Dewett. 1999. Modern Economic Theory. pp. 97-105.

इकाई - 11

कृषि-कीमतें

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 कृषि-कीमतों के कार्य
11.3 कृषि-कीमतों के ज्ञान की आवश्यकता
11.4 कृषि-कीमतों में उतार-चढ़ाव
11.5 कृषि-कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ावों के कारण
11.6 कीमत-स्फीति (मुद्रा-स्फीति)
11.7 कृषि-कीमत स्थरीकरण
11.8 कृषि-कीमत-नीति
11.9 निर्देशित कीमतें
11.10 सारांश
11.11 अभ्यास प्रश्न
11.12 संदर्भग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

इस अध्याय में कृषि-कीमतों से सम्बनिधत विभिन्न पहलुओं का संक्षिप्त में विवेचन किया गया है। कृषि-कीमतों के इस ज्ञान के आधार पर कृषि-उत्पादों के विपणन से सम्बनिधत विभिन्न पहलुओं को समझने में आसानी रहती है।

11.1 प्रस्तावना

कृषि-व्यवसाय की सफलता का मापदण्ड अन्य व्यवसायों की भांति व्यवसाय से प्राप्त लाभ की राशि होती है। कृषि-व्यवसाय से प्राप्त होने वाले लाभ की राशि, कृषि-उत्पादों की उत्पादित मात्रा एवं उनकी बाजार में प्राप्त होने वाली कीमत पर निर्भर करती है।

11.2 कृषि-कीमतों के कार्य

कृषि-कीमतें अनेक कार्य सम्पन्न करती हैं, जिनमें से कुछ देश के आर्थिक विकास मे विशेष महत्व रखते हैं। कृषि-कीमतों के प्रमुख कार्य निम्नलिखितत हैं -

(1) कृषि-कीमतें विभिन्न उत्पादों के विनिमय-मूल्य एवं उनमें पारस्परिक सम्बन्ध को प्रदर्शित कती है।

(2) कृषि-कीमतें, कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति की शकितयों में साम्यवस्था सन्तुलन स्थापित करती है।

(3) कीमतें विभिन्न कृषि-उत्पादों के उत्पादन की मात्रा का निर्धारण करती है।

(4) कीमतें कृषि-उत्पादों के उपभोक्ताओं द्वारा उपभोग की मात्रा का निर्धारण कने में सहायक होती है।

(5) कृषि-कीमतें कृषि व्यवसाय में पूँज निवेश की राशि को प्रभावित करती है।

(6) कीमतें औधोगिक संस्थाओं, विभिन्न व्यवसायों एवं फार्म पर विभिन्न उधमों के अन्तर्गत साधन-आवंटन का कार्य सम्पन्न करती है।

(7) कृषि-उत्पादों के विपणन एवं स्वामित्व सम्बन्धी समस्याओं को सुविधाजनक तरीकों से हल करने के निर्णय लेने में कीमतें सहायक होती है।

(8) कीमतें विभिन्न कृषि-उत्पादों के संग्रहण एवं विभिन्न स्थानों पर परिवहन सम्बन्धी निर्णय लेने में सहायक होती है।

(9) कृषि-कीमतें समाज के विभिन्न वर्गो एवं अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में आय-वितरण को प्रभावित करती है।

(10) कीमतें मौसममापी यन्त्र की भाँति भावी आर्थिक परिसिथतियों का ज्ञान प्रदान करती है।

11.3 कृषि-कीमतों के ज्ञान की आवश्यकता

समाज के विभिन्न वर्गो के लिए कृषि-कीमतों के ज्ञान की महत्ता निम्नांकित है -

1. कृषकों के लिए :

(1) कृषकों को फार्म पर विभिन्न उधमों के चयन एवं उत्पादन सम्बन्धी निर्णय लेने में।

(2) चुने हुए उधमों से अधिकतम लाभ की प्रापित के लिए उनके प्रबन्धन से सम्बनिधत निर्णय लेने।

(3) सीमित उत्पादन-साधनों को किस उधम के उत्पादन में उपयोग किया जाये, जिससे लाभ की अधिकतम राशि प्राप्त हो सके।

(4) कृषि-उत्पादों के विक्रय एवं उत्पादन-साधनों के क्रय के लिए समय, स्थान एवं विपणन-माध्यम के चयन का निर्णय लेने।

(5) कृषि-कीमतों का ज्ञान कृषकों को फार्म-योजना बनाने में सहायक होता है।

2. उपभोक्ताओं के लिए :

कृषि-कीमतों का ज्ञान देश के उपभोक्ताओं को भी उपभोग के लिए आवश्यक वस्तुओं के चुनाव, उनकी मात्रा का निर्धारण एवं क्रय करने के निर्णय लेने में सहायक होता है। कीमतों का ज्ञान

उपभोक्ताओं को सीमित आय से अनुकूलतम स्तर का जीवन-यापन करने हेतु विभिन्न निर्णय, जैसे - उत्पादों के क्रय के लिए मण्डी, समय एवं विपणन-माध्यम का चुनाव करने, विभिन्न उत्पादों का चुनाव एवं उनकी क्रय की मात्रा निर्धारण करने में सहायक होता है।

3. उद्योगपतियों एवं व्यवसायियों के लिए :

कृषि-कीमतों का ज्ञान उद्योगपतियों एवं व्यवसायियों को निम्न निर्णय लेने में सहायक होता है -

(1) विभिन्न उधोगों के लिए आवश्यक कच्चा माल क्रय करने के लिए समय एवं मण्डी का चुनाव एवं कच्चे माल की क्रय मात्रा का निर्णय लेना।

(2) विभिन्न उधोगों से निर्मित उत्पादों के विक्रय से अधिकतम लाभ की प्रापित के लिए समय, मण्डी, विपणन-माध्यम एवं विपणन-विधि के चुनाव के सम्बन्ध में निर्णय लेना।

(3) विभिन्न उधोगों को स्थापित करने के लिए स्थान के चुनाव, उधोगों की क्षमता आदि के निर्णय लेना।

(4) उद्योगों द्वारा निर्मित माल की उत्पादन-लागत को कम करने के लिए तकनीकी ज्ञान के स्तर का उपयोग, विभिन्न उत्पादन-विधियों एवं क्रियाओं के प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में निर्णय लेना।

4. सरकारी संस्थाओं एवं नीति निर्धारकों के लिए :

कृषि-कीमतों का ज्ञान विभिन्न संस्थाओं को निम्न निर्णय लेने में सहायक होता है -

(1) कृषि-विकास कार्यक्रमों को सुचारू रूप से कार्यानिवत करना।

(2) कृषि-विकास कार्यक्रमों के परिणामों का मूल्यांकन करना।

(3) कृषि-विकास के लिए आवश्यक पूरक संस्थाओं, जैसे - कृषि सूचना-सेवा, सिंचाई परियोजनाओं का निर्माण, परिवहन सुविधाओं का विकास आदि से सम्बनिधत निर्णय लेना।

(4) देश में सघन कृषि-योजना उन्नत किस्में के बीजों का अधिकाधित उपयोग, बहुफसलीय कार्यक्रम, लघु कृषक विकास योजना, नियनित्रत मणिडयों के विकास से सम्बनिधत निर्णय लेना।

11.4 कृषि-कीमतों में उतार-चढ़ाव

कृषि-कीमतों में होने वाले परिवर्तनों अर्थात उतार-चढ़ाव को कृषि-कीमतों के उतार-चढ़ाव कहते हैं। कृषि-कीमतों में प्रतिवर्ष, मौसम, माह दिन व एक ही दिन में विभिन्न समयों में परिवर्तन अर्थात उतार-चढ़ाव हाते रहते है। भारत में कृषि-कीमतों में उतार-चढ़ाव सर्वप्रथम वर्ष 1914 से 1920 की अवधि में पाये गये।

कृषि-कीमतों में उतार-चढ़ाव के रूप :

कृषि-कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव को समय के अनुसार मुख्यत: 6 भागों में विभक्त किया जाता है -

1. अल्पकालीन कीमत उतार-चढ़ाव :

कृषि-उत्पादों की कीमतों में होने वाले वे उतार-चढ़ाव जो कुछ समय के लिए ही प्रभावशाली होते हें, अल्पकालीन कीमत उतार-चढ़ाव कहलाते है।

(1) कृषि-उत्पादों की पूर्ति की मात्रा में निरन्तर परिवर्तन होते रहना।

(2) कृषि-उत्पादों की माँग में भी अस्थायी परिवर्तन होते रहते है।

(3) कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति की मात्रा के आधार पर कीमत-निर्धारण की प्रायोगिक विधि में भी समय लगता है।

2. मौसमी कीमत उतार-चढ़ाव :

कृषि-उत्पादों के उत्पादन व उपभोग में मौसम का प्रभाव होने से उनमें मौसमी कीमत उतार-चढ़ाव पाये जाते है। प्राय: सभी कृषि-उत्पादों के उत्पादन का विशेष मौसम होता है। कीमतों के मौसमी उतार-चढ़ाव उन कृषि-उत्पादों में अधिक पाये जाते हैं जो शीघ्रनाशी होते हैं और जिनकी पूर्ति को संग्रहण करके नियमित नहीं किया जा सकता है, जैसे - सब्जी, फल, दूध।

3. वार्षिक कीमत उतार-चढ़ाव :

कृषि-उत्पादों के उत्पादन एवं पूर्ति की मात्रा में उनके अन्तर्गत क्षेत्रफल, उत्पादकता, बीमारी आदि कारणों से प्रतिवर्ष परिवर्तन होता रहता है, जिसके कारण उनकी विभिन्न वर्षो की कीमतों में भिन्नता होती है।

4. चक्रीय कीमत उतार-चढ़ाव :

कुछ कृषि-उत्पादों के उत्पादन एवं कीमतों में चक्रीय गति के विधमान होने के कारण उनकी कीमतों में चक्रीय उतार-चढ़ाव अर्थात उतार-चढ़ाव नियमित समयान्तर पर पाये जाते हैं। चक्र से तात्पय नियमित आवर्ती परिवर्तन से है। कुछ कृषि-उत्पादों के उत्पादन एवं कीमतों का प्रभाव एक वर्ष में प्रदर्शित नहीं होकर अनेक वर्षो, जैसे 3-4 वर्ष के अन्त से प्रदर्शित होता है।

5. सदीर्घकालीन कीमत उतार-चढ़ाव :

लम्बे समय तक कृषि-उत्पादों की कीमतों में निरन्तर वृद्धि अथवा कमी होने को सुदीर्घकालीन कीमत उतार-चढ़ाव कहते हैं।

6. अनियमित कीमत उतार-चढ़ाव :

कृषि-उत्पादों की कीमतों में उतार-चढ़ाव ऐसे कारणों से भी होते हैं जिनके विषय में कोई निशिचतता नहीं होती है, जैसे - युद्ध, सुखा, बाढ़ आदि।

11.5 कृषि-कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ावों के कारण

कृषि-उत्पादों की कीमतों में अन्य-उत्पादों की कीमतों की अपेक्षा उतार-चढ़ाव अधिक होते हैं, जिसके मुख्य कारण निम्न है -

(1) कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति की मात्रा में असन्तुलन होना।

(2) जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होना।

(3) कृषि-उत्पादों के विपणन की सभी क्षेत्रों में दक्ष व्यवस्था का नहीं होना।

(4) कृषि-उत्पादों की उचित एवं दीर्घकालीन कृषि-कीमत नीति का नहीं होना।

(5) समाज विरोधी तत्वों द्वारा खाधान्नों की जमाखोरी एवं कालाबाजारी करना।

(6) सरकार की मौद्रिक नीति-मुद्रा-संचलन एवं रिजर्व बैंक की ऋण विस्तार नीति में परिवर्तन।

(7) सरकार की राजकोषीय नीति - घाटे की व्यवस्था, करारोपण नीति विकास कार्यो पर धन व्यय करने की नीति में परिर्वन

(8) सरकार की व्यापार एवं प्रशुल्क नीति - आयात-निर्यात नीति में परिवर्तन।

(9) देश में होने वाली आर्थिक एवं राजनीतिक घटनाओं जैसे रूपये का अवमूल्यन, पड़ोसी देशों के आक्रमण एवं युद्ध का प्रभाव।

(10) श्रमिकों द्वारा हड़ताल, औधोगिक अशानित, परिहन-साधनों के कार्यान्वियन में व्यवधान, व्याप्त भ्रष्टाचार आदि विविध कारण।

11.6 कीमत-स्फीति (मुद्रा-स्फीति)

कीमत-स्फीतिमुद्रा-स्फीति वह सिथति है, जिसमें उत्पादों की कीमतों में सामान्य स्तर से अधिक गति से वृद्धि होती है तथा मुद्रा का मूल्य गिर जाता है। कीमत-स्फीति शब्द का उपयोग सर्वप्रथम रैडक्लीफ रिपोर्ट में वर्ष 1931 में किया गया था।

कीमत-स्फीति के प्रकार :

कीमत-स्फीति को निम्न आधारों के अनुसार वर्गीकृत किया जात है -

1. कीमत-स्फीति उत्पन्न होने के कारणों के आधार पर -

(1) माँगजन्य-स्फीति : उत्पादों की माँग में वृद्धि, पूर्ति में वृद्धि की अपेक्षा अधिक दर से होने को माँगजन्य-स्फीति कहते हैं। उत्पादों की माँग में यह अत्यधिक वृद्धि उपभोक्ताओं की आय में वृद्धि, मुद्रा पूर्ति में वृद्धि अथवा सरकार द्वारा लम्बी अवधि के विकास कार्यक्रमों पर अधिक धन व्यय करने की सिथति में होती है।

(2) लगातजन्य-स्फीति : उत्पादों की उत्पादन-लागत में अत्यधिक वृद्धि होने से लागतजन्य-स्फीति उत्पन्न होती है। आवश्क उत्पादन-साधनों-उर्वरक, डीजल-तेज, बीज, कीटनाशी दवाइयाँ एवं श्रम की लागत में वृद्धि अधिक होने पर कृषि-उत्पादों की कीमतों में लागतजन्य-स्फीति उत्पन्न होती है।

2. कीमत वृद्धि के नियन्त्रण के उपाय अपनाने के आधार पर -

(1) अनियनित्रत कीमत-स्फीति : कीमत-स्फीति की वह सिथति जिसमें कीमतों में वृद्धि बिना किसी नियन्त्रण के उपाय अपनाने से होती रहती है। कीमतों में निरन्तर वृद्धि के होते रहने पर यह स्फीति अति-स्फीति का रूप ले लेती है।

(2) दबी हुई कीमत-स्फीति : कीमतों में वृद्धि की सिथति विधमान होने की अवस्था में नियन्त्रण् के उपाय अपनाये जाने के कारण परोक्ष रूप में कीमत-स्फीति की सिथति उत्पन्न नहीं हो पाती है, लेकिन नियन्त्रण के उपायों में ढिलाई देने पर कीमतों में असामान्य दर से वृद्धि होती है। इस प्रकार क कीमत-स्फीति को दबी हुई कीमत-स्फीति कहते है।

3. कीमतों में वृद्धि की गति के आधार पर -

(1) क्रमिक-स्फीतिमन्द-स्फीति : कीमत-स्फीति की प्रथम अवस्था, जिसमें कीमतों में धीमी गति से वृद्धि होती है, मन्द्र-स्फीति कहलाती है।

(2) द्रु त-स्फीति : कीमतों में तीव्र गति से वृद्धि होने को द्रु त-स्फीति कहते हैं। स्फीति की यह अवस्था खतरे का सूचक होती है।

(3) गति-स्फीति : कीमतों में अत्यधिक तेज गति से वृद्धि को अतिस्फीति कहते है। कीमत-स्फीति की यह अवस्था नागरिकों में सरकार के प्रति अविश्वास एवं भ्रानितयाँ उत्पन्न करती है, जो कालान्तर में आन्दोलन एवं अशानित में परिणत हो जाती हैं। इस अवस्था के उत्पन्न होने के पूर्व ही कीमत-स्फीति पर नियन्त्रण करना आवश्यक है।

11.7 कृषि-कीमत स्थरीकरण

कृषि-कीमत सिथरीकरण से तात्पर्य कीमतों में होने वाले अत्यधिक उतार चढ़ावों को कम करने अर्थात कीमतों को निर्धारित सीमा के अन्तर्गत नियमित करने से है, जिससे समाज के विभिन्न वर्गो के व्यकितयों को कृषि-उत्पादों की कीमतों के उतार-चढ़ाव से होने वाली हानि से रक्षा की जा सके।

कृषि-कीमत सिथरीकरण के उद्देश्य -

कृषि-कीमत-सिथरीकरण के प्रमुख उद्देश्य निम्न है -

(1) कृषकों को फार्म पर उत्पादित विभिन्न उत्पादों की उचित कीमत प्राप्त कराना जिससे उनके पास उत्पादन-लागत का भुगतान करने के उपरान्त पर्याप्त आय शेष रहे।

(2) देश के उपभोक्ताओं को आवश्यक मात्रा में उचित कीमतों पर खाधान्न उपलब्ध कराना, जिससे वे सीमित आय से निशिचत उपभोग-स्तर प्राप्त कर सकें।

(3) उत्पादक-कृषकों को उपभोक्ताओं द्वारा दी गई कीमत में से अधिकाधिक भाग प्राप्त कराना, जिससे विपणन में दक्षता आये। साथ ही विपणन-मध्यस्थों को प्राप्त होने वाले लाभ की राशि को कम करना।

(4) कृषि एवं औधोगिक क्षेत्र उत्पादों तथा कृषि-क्षेत्र में विभिन्न-फसलों के समूहों की कीमतों में उचित समता सम्बन्ध बनाये रखना, जिससे विभिन्न क्षेत्रों के व्यापार पर विपरीत प्रभाव नहीं आये।

(5) मुद्रा-स्फीति पर नियन्त्रण बनाये रखना।

(6) देश में उत्पादित की जाने वाली विभिन्न फसलों के निर्धारित उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करना।

(7) औधोगिक क्षेत्र के उत्पादों का उत्पादन स्तर बनाये रखना, क्योंकि कृषि-क्षेत्र विभिन्न उधोगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की पूर्ति करता है तथा औधोगिक क्षेत्र में उत्पादित अनेक उत्पादों का कृषि-क्षेत्र में उपयोग होता है।

(8) कृषकों द्वारा क्रय किये जाने वाले उत्पादन-साधनों एवं उनके द्वारा उत्पादित उत्पादों की कीमतों में उचित सम्बन्ध बनाये रखना, जिससे कृषकों में उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा बनी रहे।

(9) देश में नियोजित आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को सुचारू रूप से कार्यानिवत करना।

कृषि-कीमत सिथरीकरण के उपाय :

कृषि-कीमतों में होने वाले अत्यधिक उतार-चढ़ावों को निम्न उपाय अपनाकर कीमत-सिथरीकरण के उपयुक्त उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं -

(1) कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करना।

(2) कृषि-उत्पादों की अधिकतम एवं न्यूनतम कीमतें नियत करना।

(3) खाधान्नों के संचालन पर नियन्त्रण लगाना एवं खाध-क्षेत्रों की निर्माण करना।

(4) राशनिंग द्वारा खाधान्नों की मांग नियंत्रित करना।

(5) लेवी पद्धति से खाधान्नों की अधिप्रापित करके सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ बनाना तथा बफर-स्टाक का निर्माण करना।

(6) सरकार की मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति में आवश्यकतानुसार संशोधन करना।

(7) देश की कृषि-कीमत नीति को दूरदर्शी बनाना।

(8) कृषि-उत्पादों के व्यापार को सरकार द्वारा अधिग्रहण करना।

(9) देश में कृषि-उत्पादों की कृत्रिम कमी को समाप्त करके के उपाय (कालाबाजारी, जमाखोरी, मुनाफाखोरी करने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाते हुए देश के नागरिकों का नैतिक स्तर उपर उठाना) अपनाना।

11.8 कृषि-कीमत-नीति

एक सफल एवं आदर्श कृषि-कीमत-नीति से तात्पर्य देश के कृषकों को उत्पादित उत्पादों की उचित कीमत दिलाने, उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर आवश्यक मात्रा में खाधान्न उपलब्ध कराने एवं देश की अर्थव्यवस्था को विकास की ओर अग्रसार करने वाली नीति से है। साथ ही यह नीति उत्पादन एवं बाजार-प्रधान भी हो।

सफल कृषि-कीमत-नीति के उद्देश्य :

एक सफल एवं आदर्श कृषि-कीमत-नीति के निम्न उद्देश्य होते है -

(1) कृषि-उत्पाद एवं निर्मित औधोगिक उत्पादों की कीमतों में उचित सम्बन्ध बनाये रखना।

(2) विभिन्न कृषि-उत्पादों की कीमतों में परस्पर उचित सम्बन्ध बनाये रखना।

(3) कृषि-उत्पादों के लिए उपभोक्ता द्वारा दी गई कीमत एवं कृषक को उसी इकाई के लिए प्राप्त कीमत के अन्तर को न्यूनतम करना।

(4) कृषि-उत्पादों की कृषकों को उचित कीमत दिलाकर उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा देना।

(5) कृषि-उत्पादों की कीमतों में होने वाले चक्रीय एवं मौसमी उतार-चढ़ावों को कम करना।

(6) कृषि-उत्पादों की कीमतों में सिथरता लाना।

(7) विभिन्न क्षेत्रों में कृषि-उत्पादों की कीमतों में पायी जाने वाली असमानता को कम करना।

(8) कृषि-उत्पादों एवं कृषि क्षेत्र में आवश्यक उत्पादन-साधनों की कीमतों में उचित समता बनाये रखना।

(9) उपभोक्ता को उचित कीमत पर खाधान्न उपलब्ध कराना।

(10) कृषि-उत्पादों की माँग एवं पूर्ति में समन्वय स्थापित करना।

11.9 निर्देशित कीमतें

सामान्यत: कृषि-उत्पादों की कीमतों का निर्धारण बाजार में उत्पादों की माँग एवं पूर्ति की शकितयों के आपसी प्रभाव के प्रतिफल के रूप में होता है। अनेक परिसिथतियों में कृषि-उत्पादों की कीमतों का नियतन सरकार करती है। सरकार द्वारा नियत की जाने वाली कीमतों को निर्देशित कीमत कहते हैं। कृषि-उत्पादों की निर्देशित कीमतों की घोषणा उत्पादक-कृषकों को बाजार में कीमतों के न्यूनतम स्तर तक गिर जाने से होने वाली हानि से रक्षा करने अथवा उपभोक्तओं को उचित कीमतों पर खाधान्नों की उपलबिध कराने के उद्देश्य से सरकार करती है।

निर्देशित कीमतें निम्न प्रकार की होती है -

(1) न्यूनतम-समर्थित कीमत

(2) अधिप्रापितवसूली कीमत

(3) नियत बिक्री कीमतें

(4) लेवी कीमत

(5) उच्चतम कीमत

1. न्यूनतम-समर्थित कीमत :

न्यूनतम-समर्थित कीमत कृषकों के लिए बीमा कीमत के रूप में होती है। यह कीमत कृषकों को विश्वास दिलाती है कि बाजार में कृषि-उतपादों के अधिक उत्पादन होने की अवस्था में उनकी बाजार में प्रचलित कीमत के कम होने पर, सरकार नियत की गई न्यूनतम-समर्थित कीमत पर उनके यहाँ उपलब्ध उत्पाद की अधिशेष मात्रा को क्रय करेगी। वर्तमान में सरकार 23 कृषि-उत्पादों की न्यूनतम-समर्थित कीमते नियत करती है।

सरकार वर्तमान में 7 अनाज की फसलें (गेहूँ, जौ, धान, ज्वार, बाजरा, मक्का एवं रागी), 4 दलहन फसलों (चना, अरहर, मूँग, उड़द), 8 तिलहन फसलों (सरसों, मूँगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी के

बीज, कुसुम के बीज, तिल, रामतिल एवं खोपरा) एवं चार नकदी फसलों (कपास, जूट, गन्ना एवं तम्बाकू) की न्यूनतम समर्थित कीमतों की घोषणा कृषि-लागत एवं कीमत आयोग की स्थापना वर्ष से कर रही है। गन्ने की फसल के लिए सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम-समर्थित कीमत को वैधानिक न्यूनतम समर्थितकीमत कहते है।

2. प्रधिप्रापितवसूली कीमत

अधिप्रापितवसूली कीमत वह है जिस पर सरकार खाधान्नों के बफर स्टाक के निर्माण अथवा उचित कीमत की दूकानों द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुचारू रूप से कार्यानिवत करने अथवा संसाधनकर्ताओं की आवश्यकता की पूर्ति हेतु क्रय करती है। सरकार कमजोर वर्ग के उपभोक्ताओं को उचित कीमत पर न्यूनतम आवश्यक मात्रा में खाधान्न उपलब्ध कराने के लिए वचनबद्ध है। अत: सरकार कृषकों अथवा मिल-मालिकों से नियत अधिप्रापित कीमत पर खाधान्न क्रय करती है। सरकार 6 प्रमुख खाधान्नों (गेहूँ, जौ, बाजरा, मक्का एवं रागी) की वसूली कीमत नियत करती रही है। वर्तमान में वसूली कीमत, न्यूनतम-समर्थित कीमत के समतुल्य है।

3. लेवी कीमत

लेवी कीमत सरकार द्वारा वर्तमान में चावल, गेहूँ एवं चीनी उत्पाद के लिए नियत की जाती है। लेवी कीमत पर सरकार कृषकों से गेहूँ एवं मिल मालिकों से चावल एवं चीनी, निर्धारित मात्रा में उत्पादित अथवा संसोधित मात्रा के प्रतिशत के रूप में अथवा फसल के अन्तर्गत लिए गए क्षेत्रफल के आधार पर अनिवार्य रूप में प्राप्त करती है।

4. नियत बिक्री कीमत

नियत बिक्री कीमतें वे हैं जिन पर सरकार द्वारा उपभोक्ताओं को उचित कीमत की दुकानों, राशन की दुकानों के माध्यम से खाधान्न (गेहूँ, चावल, मोटे अनाज, चीनी) निर्धारित मात्रा में उपलब्ध कराया जाता है।

5. उच्चतम कीमत

उच्चतम कीमत सरकार द्वारा प्रमुख कृषि-उत्पादों (प्रमुखतया खाधान्नों) की कीमतों के बढ़ने से उपभोक्ताओं के रहन-सहन पर आने वाले विपरीत प्रभाव प्रभाव से रक्षा करने के उ‌ेश्य से नियत की जाती है। उत्पादों की अधिकतम कीमत नियत करके सरकार उत्पादकों एवं व्यापारियों पर नियत उच्चतम कीमत से अधिक वसूल करने पर प्रतिबन्ध लगाती है।

11.10 सारांश

कृषि-व्यवसाय से अधिकतम लाभ की प्राप्ति के लिए कृषकों को उत्पादन-वृद्धि के नए तकनीकी ज्ञान के उपयोग के साथ उत्पाद के समुचित विपणन से अधिकतम कीमत प्राप्त करने की विधियों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। उत्पादों के विपणन के सम्बन्ध में उचित निर्णय नहीं लेने की सिथति में कृषकों को उत्पादित उत्पादन की उचित कीमत प्राप्त नहीं होने, कृषि-व्यवसाय से अधिकतम आया प्राप्त नहीं हो

पाती है। अत: कृषि-व्यवसाय की सफलता के लिए कृषि-उत्पादों की कीमतों का ज्ञान, उत्पादन वृद्धि के लिए तकनीकी ज्ञान के समान ही महत्वपूर्ण होता है।

11.11 अभ्यास प्रश्न

1. कृषि-कीमतों के ज्ञान की आवश्यकता निम्न में से किसको हैं ?

   (अ) कृषकों (ब) उपभोक्ताओं

   (स) उद्योगपतियों एवं व्यवसायियों (द) उपरोक्त सभी

2. भारत में कृषि-कीमतों में उतार-चढ़ाव सर्वप्रथम किस वर्ष की अवधि में पाये गये?

   (अ) 1914 से 1920 (ब) 1921 से 1926

   (स) 1927 से 1932 (द) 1933 से 1939

3. लम्बे समय तक कृषि-उत्पादों की कीमतों में निरन्तर वृद्धि अथवा कमी होने को .... कीमत उतार-चढ़ाव कहते हैं।

   (अ) सुदीर्घकालीन (ब) चक्रीय

   (स) अनियमित (द) वार्षिक

4. ……………….. कीमतें वे हैं जिन पर सरकार द्वारा उपभोक्ताओं को उचित कीमत की दुकानों, राशन की दुकानों के माध्यम से खाधान्न (गेहूँ, चावल, मोटे अनाज, चीनी) निर्धारित मात्रा में उपलब्ध कराया जाता है।

   (अ) नियत बिक्री (ब) उच्चतम

   (स) लेवी (द) इनमें से कोई नहीं

5. .... कीमत सरकार द्वारा वर्तमान में चावल, गेहूँ एवं चीनी उत्पाद के लिए नियत की जाती है।

   (अ) नियत बिक्री (ब) उच्चतम

   (स) लेवी (द) इनमें से कोई नहीं

11.12 संदर्भ ग्रन्थ

- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
- S. S. Acharya and N. L. Agarwal. 2007. Agricultural Marketing in India. Oxford & IBH Publications, Calcutta.
- S. Subba Reddy, P. Raghu Ram, T. V. Neelakanta Sastry and I. Bhavani Devi. 2006. Agricultural Economics. Oxford & IBH Publications, Calcutta.
- K. K. Dewett. 1999. Modern Economic Theory.

इकाई -12

प्रसार शिक्षा की मूल बातें

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 प्रसार शिक्षा की अवधारणा

12.3 प्रसार शिक्षा उद्देश्य

12.4 प्रसार शिक्षा के सिद्धांत

12.5 प्रसार शिक्षा के कार्य

12.6 प्रसार शिक्षा की प्रक्रिया

12.7 प्रसार शिक्षा विधियाँ

12.8 प्रसार शिक्षण के चरण

12.9 सारांश

12.10 अभ्यास प्रश्न

12.11 प्रश्नों के उत्तर

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पड़ने के पश्चात आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे:

- कृषि विस्तार का अर्थ और अवधारणा का वर्णन करने
- किसानों तक प्रभावी ढंग से पहुंचने के लिए उद्देश्यों और सिद्धांतों पर चर्चा करने
- प्रसार शिक्षा की प्रक्रिया और चरणों का वर्णन करने।

12.1 प्रस्तावना

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का अभिन्न और सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग होने के साथ साथ यह देश की बहुत बड़ी आबादी के लिए रोजगार, व्यवसाय और आय का साधन भी है। तेजी से परिवर्तित होती सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, कृषि उत्पादन और विपणन संबंधी रणनीतियों को कृषक परिवारों के अनुकूल बनाने की आवश्यकता है ताकि वे आगे चलकर अपनी प्रथमिकताओं के अनुसार अपने जीवन को ढाल सकें। हमारे देश ने कृषि शिक्षा, कृषि अनुसंधान और कृषि की नई तकनीक तथा फसलों की उन्नत प्रजाति को विकसित करने में महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की हैं। परन्तु इनकी सार्थकता तभी है जब ये उपयुक्त समय पर उपयुक्त लोगों के पास

पहुंचें। सभी कृषकों के लिए अनुसंधान केन्द्रों पर जाना और कृषि से संबंधित आवश्यक जानकारी हासिल करना कठिन होता है। अत: लोगों को नई-नई जानकारियाँ, नई तकनीकों, नई खोजों, नये उत्पादों एवं बेहतर कार्य नि’’पादन विधियों जैसी महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्रसार शिक्षा द्वारा प्राप्त होती है। प्रसार कार्यकर्ता लोगों के पास जाकर उन्हें नई जानकारियों से अवगत कराते हैं, उनकी कार्य संबंधीसमस्याओं को दूर करने में उनकी सहायता करते हैं। समस्त संसार में हो रहे शोधों तथा तकनीकी विकास की जानकारियाँ प्रसार द्वारा ही कृषकों को प्राप्त होती हैं। प्रसार शिक्षा के परिणामस्वरूप कृषकों को अपनी समस्याओं को दूर करने और अपने व्यवसाय को सुधारने के अवसर प्राप्त होते हैं।

12.3 प्रसार शिक्षा की अवधारणा

प्रसार शिक्षा एक अनौपचारिक शिक्षा पद्धति है जो लोगों को अपने स्वयं के प्रयासों से अपनी समस्याओं का समाधान करना सिखाती है। यह सीखने व सीखाने की एक अत्यन्त सरल एवं उपयोगी विद्या है। प्रसार शिक्षा जनजिवन के सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक जीवन के उत्थान एवं कल्याण की शिक्षा है जो विद्यालयी वातावाण से परे जीवन की स्वाभाविक परिस्थितियों में दी जाती है। प्रसार शिक्षा स्वयं कृषकों की रूची तथा उनके द्वारा अनुभव की गई आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाती है। प्रसार शिक्षा का उपयोग कृषकों को खेती व उससे जुड़े व्यवसायों के विषय में शिक्षित करने में किया जाता है। अत: प्रसार शिक्षा का अर्थ लोगों को ज्ञान प्रदान करना, उनके कार्य करने की तकनीक में सुधार करना तथा उनमें व्यवस्थित, वैज्ञानिक व स्वतंत्र रूप से विचार करने की शक्ति का विकास करना है।

प्रसार शिक्षा एक दोहरी प्रणाली है जिसके द्वारा अनुसंधान केन्द्रों से वैज्ञानिक जानकारियां लोगों तक पहुंचाई जाती है तथा इसी प्रकार किसानों की कठिनाइयां एवं समस्याएं अनुसंधान केन्द्रों में लाई जाती हैं ताकि उनका हल निकाला जा सके।

12.4 प्रसार शिक्षा के उद्देश्य

प्रसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य लोगों की इस प्रकार सहायता करना जिससे वे उपलब्ध संसाधनों व तकनीकियों द्वारा अपना व समुदाय का विकास कर सकें। प्रसार शिक्षा के सामान्य उद्देश्य निम्न हैं :

1. लोगों की समस्याओं का पता लगाने और उनका विश्लेषण करने तथा उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं का पता लगाने के लिए उनकी सहायता करना।
2. लोगों के मध्य नेतृत्व का विकास करना तथा उनकी समस्याओं का समाधान करने के लिए समूहों का संगठन करना।
3. आर्थिक और व्यावहारिक शोध जानकारियों का इस प्रकार से प्रचार करना कि लोग उन्हें समझ सकें और प्रयोग कर सकें।
4. लोगों के संसाधन, जो उनके पास हैं तथा जो उन्हें बाहर से चाहिए, को जुटाने और उनका प्रयोग करने में सहायता करना।
5. समस्याओं के समाधान हेतु प्रतिपुष्टि जानकारी संग्रहित और संप्रेषित करना।

12.5 प्रसार शिक्षा के सिद्धांत

सिद्धांत सामान्य दिशा-निर्देश हैं, जो एक सुसंगत प्रकार से निर्णय और कार्रवाई का आधार निर्मित करते हैं। प्रसार शिक्षा के कार्य को प्रभावी बनाने के कुछ निश्चित सिद्धान्त होते हैं। किसी भी प्रसार कार्यक्रम को शुरू करने से पूर्व इन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

1- रूचि एवं आवश्यकता का सिद्धांत **:** लोगों के रूचि और आवश्यकताएं प्रसार शिक्षा कार्य का आरंभिक बिंदु है। प्रसार शिक्षा कार्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्य है कि यह लोगों की वास्तविक आवश्यकताओं और रुचि पर आधारित होना चाहिए।

2- सांस्कृतिक भिन्नता का सिद्धांत **:** प्रसार कार्यकर्ताओं तथा किसानों के बीच एक सांस्कृतिक अंतर होता है। ये अंतर उनकी आदतों, विचारधारा, रीति-रिवाजों, मूल्यों, अभिवृत्ति और जीवन के ढंग में हो सकते हैं। प्रसार कार्यकर्ता को अपने कार्य को सफल बनाने के लिए लोगों के सांस्कृतिक प्रतिमान के साथ सौहार्द में संचालित किए जाने चाहिए।

3- सांस्कृतिक परिवर्तन का सिद्धांत **:** प्रसार शिक्षा कार्य के समय लोगों की संस्कृति परिवर्तित होती है। अत: लोगों के सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ साथ प्रसार कार्य में भी परिवर्तन आवश्यक है।

4- निचले स्तर का सिद्धांत **:** प्रसार शिक्षा के कार्यक्रम को स्थानीय लोगों, स्थानीय परिस्थितियों और स्थानीय समस्याओं सें प्रारंभ करना चाहिए तथा यह स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल होने चाहिए। परिवर्तन सदैव विद्यमान स्थिति से आरंभ होना चाहिए।

5- करके सीखने का सिद्धांत **:** प्रसार शिक्षा का कार्य मुख्यत: करके सीखने अथवा प्रयोगात्मक सिद्धांत पर आधारित होता है। शिक्षण तब तक सटीक नहीं हो सकता है जब तक लोग वास्तविक रूप से कार्य करने में शामिल न हों।

6- नेतृत्व का सिद्धांत **:** प्रसार कार्य की गती को बढ़ाने के लिए स्थानीय नेतृत्व को उपयोग में लेना चाहिए। विभिन्न प्रकार के नेतृत्वकर्ताओं की पहचान कर उनके माध्यम से प्रसार कार्य करवाया जाना चाहिए। लोगों के मध्य नेतृत्व की विशिष्टताएं विकसित की जानी चाहिए ताकि वे स्वयं ही कम वांछनीय स्थिति से अधिक वांछनीय स्थिति के लिए परिवर्तनों की अपेक्षा कर सकें। नेतृत्वकर्ता को गांवों में परिवर्तन के वाहक के रूप में कार्य करने के लिए प्रशिक्षित और तैयार किया जाना चाहिए। स्थानीय नेतृत्वकर्ताओं की सहभागिता तथा उनके द्वारा प्रदान किया गया वैधीकरण प्रसार कार्यक्रम की सफलता के लिए अनिवार्य है।

7- सहभागिता का सिद्धात **:** लोगों की सहभागिता किसी भी प्रसार शिक्षा कार्यक्रम की सफलता के लिए आधारभूत महत्व रखती है। ग्रामीण समुदाय के लोगों को कार्यक्रम विकसित करने व उनके क्रियान्वित करने में भागीदारी करनी चाहिए तथा यह महसूस करना चाहिए कि यह उनका अपना कार्यक्रम है।

8- सम्पूर्ण परिवार का सिद्धांत **:** परिवार समाज की प्राथमिक इकाई है। अत: प्रसार शिक्षा का लक्ष्य परिवार का समग्र रूप से आर्थिक और सामाजिक विकास करना है। अत: कृषकों, कृषक महिलाओं और कृषक युवाओं को भी प्रसार शिक्षा के कार्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए।

9- स्वदेशी ज्ञान का सिद्धांत **:** स्वदेशी ज्ञान की प्रणालियां अनेक पीढ़ियों के कार्य अनुभवों तथा उनकी स्वयं की विशिष्टस्थितियों में समस्याओं का समाधान करने से विकसित हुई हैं। स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों में जीवन के सभी पहलू शामिल हैं तथा लोग अपने उत्तरजीविता के लिए इसे अनिवार्य मानते हैं। अत: प्रसार कार्यकर्ताओं को लोगों को किसी नई बात की सिफारिश करने से पूर्व उन लोगों और उनके जीवन में उनके प्रभावों को समझने का प्रयास करना चाहिए।

10- अनुकुलता का सिद्धांत **:** लोगों की जैव भौतिक व सामाजिक आर्थिक स्थिति, उनके संसाधन और समस्याएं प्रत्येक स्थान पर और समय-समय पर भिन्न होती जाती है। अत: प्रसार शिक्षा कार्यक्रम तथा प्रसार शिक्षण विधियां लचीली तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बनाई जानी चाहिए।

11- संतुष्टि का सिद्धांत **:** प्रसार कार्य में लोगों की संतुष्टि का ध्यान रखना बहुत ही आव’’यक है। जब तक अन्तिम लाभ से लोग संतुष्ट नहीं हैं तो उस कार्यक्रम को सफल नहीं माना जायेगा। संतुष्टिजनक परिणाम शिक्षण को पुन:प्रवर्तित करते हैं तथा लोगों को आगे के विकास में शामिल करने के लिए प्रेरित करते हैं।

12- मूल्यांकन का सिद्धांत **:** एक निश्चित समय के बाद प्रसार कार्य का मूल्यांकन करना बहुत जरूरी है। मूल्यांकन से प्रसार कार्य की प्रगति के साथ साथ कमियों व अच्छाइयों का पता चलता रहता है और उसी के अनुसार कार्यक्रम को परिवर्तित किया जा सकता है। मूल्यांकन से सम्बम्धित लोगों में विश्वास पैदा होता है।

12.6 प्रसार शिक्षा के कार्य

लोगों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना प्रसार शिक्षा का मुख्य कार्य है। व्यवहार में ये परिवर्तन निम्न प्रकार से हैं:

1- ज्ञान में परिवर्र्तन अथवा उस बात में परिवर्तन जो लोग जानते हैं,
2- कौशल में परिवर्तन अथवा कार्य को करने की तकनीक में परिवर्तन,
3- समझ में परिवर्र्तन अथवा बोध में परिवर्तन,
4- लक्ष्य में परिवर्तन,
5- कार्रवाही में परिवर्तन अथवा निष्पादन या चीजों को करने में परिवर्तन,
6- आत्मविश्वास में परिवर्र्तन,
7- अभिवृत्ति में परिवर्तन लाना।

लोगों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना प्रसार शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य है। जिसके लिए प्रसार कार्यकर्ता को निरन्तर नवीन सूचनाओं की तलाश करते रहना चाहिए ताकि प्रसार कार्य को प्रभावी बनाया जा सके।

12.7 प्रसार शिक्षा की प्रक्रिया

प्रसार शिक्षा एक प्रक्रिया है जो विभिन्न चरणों में पूरी होती है। प्रसार शिक्षा की प्रक्रिया में पाँच अनिवार्य एवं परस्पर संबद्ध चरण शामिल हैं।

प्रथम चरण : प्रसार शिक्षा की प्रक्रिया के पहले चरण में तथ्यों का संग्रहण करना तथा स्थिति का विश्लेषण शामिल है। लोगों तथा उनके उद्यमों के बारे में तथ्य जैसे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक और प्रौद्योगिकीय परिवेश जिसमें वे रहते हैं और कार्य करते हैं। इन्हें उपयुक्त सर्वेक्षण द्वारा तथा लोगों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंधस्थापित करके प्राप्त किया जाएगा।

दूसरा चरण **:** दूसरा चरण उन वास्तविक उद्देश्यों का निर्धारण करना जिन्हें समुदाय द्वारा पूरा किया जाना है। स्थानीय लोगों को शामिल करते हुए सीमित संख्या में उद्देश्यों को चुनना चाहिए। उद्देश्य विशिष्टऔर स्पष्ट होने चाहिए तथा उनकी पूर्ति से समुदाय में संतुष्टि आनी चाहिए। उद्देश्यों में लोगों में व्यवहार संबंधी परिवर्तन तथा साथ ही उनसे अपेक्षित आर्थिक और सामाजिक बदलाव स्पष्ट होना चाहिए।

तीसरा चरण **:** इस चरण में यह शामिल कि क्या पढ़ाया जाना चाहिए (विषयवस्तु) तथा लोगों को किस प्रकार पढ़ाया जाना चाहिए (प्रयोग की जाने वाली विधियां और उपकरण)। इसमें समुदाय के लिए प्रसंगिक आर्थिक एवं व्यावहारिक महत्व के अनुसंधान निष्कर्षों को शामिल किए जाने तथा उपयुक्त शिक्षण विधियों और उपकरणों के चयन और संयोजन की आवश्यकता होती है।

चौथा चरण **:** चौथा चरण शिक्षण का मूल्यांकन है अर्थात यह निर्धारण करना कि किस हद तक उद्देश्यों की प्राप्ति की गई है। परिवर्तित व्यवहार का साक्ष्य संग्रहित किया जाना चाहिए जो केवल सफलता का ही विवरण प्रदान न करे अपितु कमियां, यदि कोई हैं, को भी दर्शाए।

पाँचवाँ चरण : पांचवां चरण मूल्यांकन के परिणामों के परिप्रेक्ष्य में समस्त विस्तार शैक्षणिक कार्यक्रम का पुनर्विचार है। मूल्यांकन प्रक्रिया में पहचानी गई समस्याएं, विस्तार शैक्षणिक कार्यक्रम के आगामी चरण में तब तक प्रारंभिक बिंदु बन जाती है, जब तक कि नई समस्याएं उत्पन्न न हो जाएं अथवा नई स्थितियां न पैदा हों।

अत: विस्तार शिक्षा की सतत प्रक्रिया निरंतर चलती रहनी चाहिए, जिसके परिणामस्वरूप लोगों की कम वांछनीय स्थिति से अधिक वांछनीय स्थिति में प्रगति हो सके।

12.8 प्रसार शिक्षा की विधियाँ

प्रसार शिक्षा एक अनौपचारिक शिक्षा है जो लोगों के व्यवहार में वांछनिय परिवर्तन लाती है। इसके लिए कुछ तरीकों की आवश्यकता पड़ती है। इन तरीकों को प्रसार शिक्षण विधियां अथवा प्रसार शिक्षा की विधियाँ कहा जाता है। प्रसार शिक्षण विधियों को उन उपस्करों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनका प्रयोग ऐसी परिस्थितियां सृजित करने के लिए किया जाता है, जिनमें विस्तार कार्यकर्ता और शिक्षणार्थी के बीच प्रभावी संप्रेषण हो सके। शिक्षण विधियों की प्रभावकारिता इसके संयोजन पर निर्भर करती है। विभिन्न अध्ययनों के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि अभिनवता का अंगीकरण शिक्षण की विभिन्न अवस्थाओं पर विभिन्न प्रसार शिक्षण विधियों के संयोजन के साथ सकारात्मक रूप से संबंधित है। प्रसार शिक्षण हेतु कई प्रकार की विधियों को प्रयोग में लाया जाता है जिनको व्यक्तिगत, समूह अथवा जन सम्पर्क विधियों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। किसी प्रसार शिक्षण विधि का चुनाव, शिक्षण का उद्देश्य, लोगों की संख्या, स्थान, उपलब्ध समय, प्रसार कार्यकर्ता की योग्यता पर निर्भर करता है। प्रसार

कार्यकर्ता को स्थिति की आवश्यकता के अनुसार किसी एक विधि को अथवा विधियों के संयोजन को चुनना चाहिए है।

वैयक्तिक विधियां

वैयक्तिक विधियों में, प्रसार कार्यकर्ता लोगों के साथ एक-एक करके बातचीत करता है और प्रत्येक व्यक्ति की पृथक पहचान रखता है। इस विधि का अनुपालन तब किया जाता है, जब संपर्क किए जाने वाले व्यक्तियों की संख्या कम होती है, और संप्रेषण के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध होता है। वैयक्तिक विधि के कुछ उदाहरण हैं: खेत और घर पर भ्रमण, किसान द्वारा बुलाया जाना, व्यक्तिगत पत्र, अनुकूलन अथवा मिनी किट ट्रायल तथा फार्म क्लीनिक।

वैयक्तिक विधियों के लाभ **:**

- छवि निर्माण करने में विस्तार एजेंट की सहायता करती है।
- फार्म और घर की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करने में सुविधा प्रदान करती है।
- स्थानीय नेतृत्वकर्ताओं की पहचान व चयन में मदद करती है।
- लोगों की अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने में सहायता करती है।
- जटिल प्रक्रियाओं को पढ़ाने में सहायता करती है, और
- प्रौद्योगिकी के प्रभावी अंतरण में मदद करती है।
- वैयक्तिक विधि की सीमाएं **:**
- यह विधि अधिक समय लेने वाली तथा अपेक्षाकृत महंगी है।
- इसकी दर्शकों पर निम्न कवरेज है, और
- प्रसार कार्यकर्ता कुछ लोगों के प्रति भेदभाव की भावना रख सकते हैं।

वैयक्तिक विधियां :

खेत और घर पर भ्रमण : यह किसानों अथवा गृहणियों के साथ प्रसार कार्यकर्ता द्वारा उनके खेतों अथवा घरों पर किया जाने वाला प्रत्यक्ष संपर्क है। इसका प्रमुख उदेश्य किसानों और गृहणियों से परिचित होना और उनका विश्वास अर्जित करना, खेत अथवा घर से संबंधित मुद्दों पर प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त करना अथवा देना, विशिष्टसमस्याओं के समाधान हेतु पराम''र देना तथा कौशल सिखाना तथा रूचि पैदा करना।

कृषक की कॉल **:** यह सूचना अथवा सहायता प्राप्त करने के लिए कृषक अथवा गृहणियों द्वारा प्रसार कार्यकर्ता के कार्यस्थल पर की गई कॉल है। इस कॉल के माध्यम से कृषक खेत अथवा घर से संबंधित समस्याओं का तत्काल समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

व्यक्तिगत पत्र : यह पत्र प्रसार कार्य के संबंधमें प्रसार कार्यकर्ता द्वारा विशिष्ट कृषक अथवा गृहणी को लिखा जाता है। यह पत्र किसी समस्या के संबंधमें चाहा गया समाधान या कोई नई जानकारी के संबंधमें हो सकता है।

अनुकुलन अथवा मिनीकिट परीक्षण : यह कृषक की स्थिति में किसी नई पद्धति की उपयुक्तता अथवा अन्यथा का निर्धारण करने की प्रक्रिया है। अनुकुलन अथवा मिनीकिट परीक्षण में कृषक के संसाधनों, बाधाओं और योग्यता के अंतर्गत नई और उपयोगी प्रक्रियाओं का परीक्षण किया जाता है।

फार्म क्लीनिक : फार्म क्लीनिक कृषि संबंधितसमस्याओं के निदान और उपचार के लिए तथा व्यक्तिगत कृषकों को कतिपय विशेषीकृत सलाह उपलब्ध कराने के लिए कृषकों के लिए विकसित और उन्हें प्रदान की गई सुविधा है। फार्म क्लीनिक पर प्रासंगिक विषय-वस्तु के विशेषज्ञ प्रसार कार्यकर्ता के सहयोग से कृषकों की समस्याओं पर चर्चा कर उनका निदान और उपचार करने के लिए निर्धारित स्थान, दिन और समय पर उपलब्ध होते हैं।

समूह विधि

किसी समूह को कुछ संख्या में एकत्र लोगों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो किसी समान हित के लिए परस्पर चर्चा और एकीकरण करते हैं। इस विधि में, प्रसार कार्यकर्ता लोगों के समूह के साथ बातचीत करता है, उनसे अलग-अलग नहीं। इस विधि को तब अपनाया जाता है जब अनेक ऐसे लोगों के साथ एक ही समय पर बात करना आवश्यक हो, जो संप्रेषणकर्ता से अधिक दूरी पर स्थित नहीं हो, तथा बातचीत के लिए पर्याप्त समय उपलब्ध हो। समूह विधियों के उदाहरण हैं: परिणाम प्रदर्शन, विधिप्रदर्शन, समूह बैठक विधि, छोटे समूह का प्रशिक्षण, प्रक्षेत्र दिवस अथवा कृषक दिवस और अध्ययन दौरे या अनुभव दौरे।

समूह विधियों के लाभ :

- प्रसार कार्यकर्ता को एक ही समय पर अनेक लोगों के साथ आमने-सामने बात कर सकता है।
- लक्षित समूह के चयनित भाग तक पहुंचा सकता है।
- ज्ञान और अनुभव के आदान-प्रदान को सुगम बनाती है, जिसके परिणामस्वरूप समूह के सदस्यों का ज्ञान बढ़ता है।
- सामाजिक संपर्क के लिए लोगों की बुनियादी आव’’यकता की पूर्ति करती है।
- अधिक कवरेज के कारण वैयक्तिक विधि की तुलना में कम खर्चीली है।

समूह विधि की सीमाएं :

- समूह के सदस्यों के हितों में व्यापक विविधता होने के कारण कठिन शिक्षण स्थिति सृजित हो सकती है।
- बैठक आयोजित करना स्वयं में ही एक उद्देश्य माना जा सकता है।

- निहित स्वार्थ, जातिगत समूह तथा गांव के गुट मुक्त संपर्क और समूह के सदस्यों द्वारा निर्णय लिए जाने में बाधा डाल सकते हैं।

समूह विधियाँ :

परिणाम प्रदर्शन : यह अपने अत्यंत उत्कृट परिणामों का प्रदर्शन करते हुए नई प्रक्रियाओं को अंगीकृत करने के लिए लोगों को प्रेरित करने की विधि है। ये प्रदर्शन चयनित व्यक्तियों के खेत पर या घर पर प्रदर्शित किए जाते हैं तथा इनका उपयोग लोगों के समूह को उनके ही पड़ोस में शिक्षित और प्रेरित करने के लिए किया जाता है। यह किसी समुदाय में प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण के लिए अत्यंत प्रभावी विधि है। परिणाम प्रदर्शन कृषक की अपनी परिस्थिति में नई अनुशंसित तकनीकि के लाभों और प्रयोजनीयता को दर्शाने के लिए आयोजित किए जाते हैं। परिणाम प्रदर्शन के माध्यम से किसी नई पद्धति के परिणामों का प्रदर्शन करके उसे अपनाने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया जाता है।

विधि प्रदर्र्शन : विधि प्रदर्शन किसी समूह के सामने किसी नई पद्धति को किस प्रकार क्रियान्वित किया जाए अथवा किसी पुरानी पद्धति को बेहतर रूप में कैसे संचालित करके दिखाने के काम लाया जाता है। विधि प्रदर्शन यह दर्शाता है कि किसी वांछित कार्य को किस प्रकार किया जाए। कौशल शिक्षण का यह अत्यंत प्रभावी तरीका है।

समूह बैठक **:** यह सदस्यों के विचारों को ध्यान में रखते हुए लोगों के किसी समूह द्वारा लोकतांत्रिक रूप से किसी निर्णय पर पहुंचने की विधि है। समूह बैठकों और चर्चाओं का उद्देश्य सामूहिक निर्णय लेना तथा समूह के सदस्यों के ज्ञान और अनुभव का प्रयोग करते हुए वैयक्तिक निर्णय लेने को सुधारना है।

लघु समूह प्रशिक्षण : यह लोगों के ऐसे समूह को विस्तार कौशल प्रदान करने की तकनीक है जो उपयुक्त शिक्षण परिस्थिति का सृजन करते हुए उन्हें आवश्यक मानते हैं यह प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण के लिए एक प्रभावी विधि है।

प्रक्षेत्र दिवस अथवा कृषक दिवस **:** यह दर्शाकर कि क्षेत्र परिस्थितियों के अंतर्गत नई पद्धति का अनुप्रयोग करते हुए वास्तव में क्या हासिल किया गया है, यह नई प्रक्रिया को अपनाने के लिए लोगों को प्रेरित करने की विधि है। क्षेत्र दिवस अथवा कृषक दिवस का आयोजन किसी अनुसंधान फार्म में अथवा किसी कृषक के खेत या घर पर किया जा सकता है।

जन संपर्क विधि

इस विधि में, प्रसार कार्यकर्ता लोगों के अत्यंत व्यापक और विविधतापूर्ण समूह के साथ बातचीत करता है, जिसमें उनकी वैयक्तिक या सामूहिक पहचान को ध्यान में नहीं रखा जाता है। यह विधि केवल तभी वैध है जब कम समय में बड़ी जनता को सूचना संप्रेषित की जानी हो। इस स्थिति में संप्रेषक कम होते हैं, जैसे विस्तार एजेंट और विषय के कतिपय विशेषज्ञा लोगों की संख्या जन-बैठक में कुछ सौ, किसी अभियान में कुछ हजार तथा समाचारपत्र, रेडियो और टेलीविजन में कुछ लाख हो सकती है। जन संपर्क विधि के कुछ उदाहरण हैं- प्रकाशन, जन-बैठक, अभियान, प्रदर्शन, समाचारपत्र, रेडियो और टेलीविजन।

जन संपर्क विधि के लाभ :

- यह लोगों के मध्य सामान्य जागरूकता का सृजन करने के लिए उपयुक्त है। यह कृषि में ज्ञान का हस्तांतरण करने तथा राय में परिवर्तन करने में सहायक है।
- छोटी समयावधि के भीतर बड़ी संख्या में लोगों को संदेश संप्रेषित किये जा सकते हैं।
- आपातकाल के दौरान त्वरित संप्रेषण किया जा सकता है।
- व्यापक कवरेज के कारण कम महंगी है।
- जन संपर्क विधि की कुछ सीमाएं :
- यह कम गहन विधि है।
- दर्शकों की साथ वैयक्तिक संपर्क की कम संभावना है।
- सामान्य सिफारिशें व्यक्ति-विशेषद्वारा आवेदनों पर रूकावट डालती है।
- दर्शकों की प्रतिक्रियाओं पर कम नियंत्रण होता है, और
- फीडबैक जानकारी तथा परिणामों के मूल्यांकन में कठिनाई होती है।

कृषि संबंधिप्रकाशन : यह विस्तार एजेंसी द्वारा मुद्रित रूप में तैयार किया गया एक प्रकार का प्रकाशन है, जिसमें कृषि और घर में सुधार से संबंधितजानकारी शामिल होती है। फार्म प्रकाशन विभिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे पत्रक, फोल्डर, बुलेटिन, समाचारपत्र, जर्नल और प़ित्रकाएं। फार्म प्रकाशनों का प्रयोग एकल अथवा अन्य विस्तार विधियों के संयोजन में किया जा सकता हैं।

जन-बैठकें : इनका आयोजन एक ही समय में एक बड़ी संख्या में लोगों को रूचिकर और उपयोगी जानकारी संप्रेषित करने के लिए किया जाता है। जन-बैठकों के लोगों का आकार कुछ सौ हो सकता है, परंतु मेलों और त्योहारों के समय पर यह हजारों तक पहुंच सकता है।

अभियान : यह एक गहन शैक्षणिक क्रियाकलाप है जिसका उपयोग किसी समस्या का समाधान करने अथवा जनता द्वारा तत्काल महसूस की गई किसी आवश्यकता को सूचित करने के लिए समुदाय को प्रेरित करने और उन्हें संगठित करने के लिए किया जाता है। अभियान की अवधि एक दिन से लेकर कुछ वर्ष हो सकती है। कुछ विषयों पर अभियान (जैसे, पर्यावरण, रोग नियंत्रण आदि) पूरे विश्व में आयोजित किए जाते हैं। चूहा नियंत्रण गांवों के सभी किसानों को शामिल करके ही अभियान के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से क्रियान्वित किया जा सकता है।

प्रदर्शनी : यह समुदाय में जागरूकता और रूचि सृजित करने के लिए किसी विषय पर एक श्रृखंला बद्ध तरीके से मॉडलों, नमूनों, चार्टों, फोटोग्राफ, चित्रों, पोस्टरों, सूचनाओं आदि का व्यवस्थित रूप से प्रदर्शन करना है। यह विधि सभी प्रकार के लोगों तक पहुंचने के लिए उपयुक्त है। ग्राम प्रदर्शनियां, खण्ड, उप-प्रभाग, जिला, राज्य राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर आयोजित की जा सकती है।

समाचार-पत्र : यह अलग-अलग कागजों का समुचित रूप से फोल्ड किया गया एक समूह है जिसमें समाचार, दृष्टिकोण, घटनाएं, विज्ञापन आदि अतंर्निहित होते हैं तथा इसे नियमित अंतरालों पर, विशेषरूप से दैनिक अथवा साप्ताहिक आधार पर विक्रय के लिए रखा जाता है। समाचारपत्र सामान्यत: विशेषप्रकार के पत्र पर मुद्रित किया जाता है। प्रसार कार्यकर्ता बड़े अथवा छोटे समाचार पत्रों पर कोई नियंत्रण नहीं रखता है। तथापि, संपादक, रिपोर्टर के साथ अच्छे संबंधस्थापित करके प्रसार कार्य के लिए पर्याप्त सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। संकट और तात्कालिक परिस्थितियों के दौरान समाचार पत्र संचार का एक अच्छा माध्यम है। भारतीय भाषाओं के अधिकांश समाचार पत्र सप्ताह के किसी निश्चित दिन पर एक पृष्ठ अथवा उसका एक भाग कृषि और ग्रामीण विकास के लिए समर्पित करते हैं।

रेडियो : यह श्रोताओं के लिए कार्यक्रमों के प्रसारण हेतु एक इलेक्ट्रॉनिक श्रव्य माध्यम है। यह चारों ओर फैले लाखों लोगों के लिए संचार का उपयुक्त माध्यम है तथा सुदूरवर्ती क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त है। रेडियो लोगों के मध्य आम जागरूकता का सृजन करने के लिए उपयुक्त है, यह लोगों की अभिवृत्ति को बदलता है तथा शिक्षण को पुन: प्रवृत्त करता है। यह माध्यम संकट तथा तात्कालिक परिस्थितियों में संचार के लिए अत्यंत सुविधाजनक है। निरक्षर व्यक्ति अथवा अत्यंत कम शिक्षित व्यक्ति तथा ऐसे व्यक्ति जो निजी रूप से विस्तार कार्यक्रमों में भाग लेने की स्थिति में नहीं हैं, इस माध्यम का लाभ उठा सकते हैं तथा पर्याप्त ज्ञान और कौशल हासिल कर सकते हैं। यह कम लागत पर बड़ी संख्या में लोगों तक पहुंचता है। कार्यक्रमों को तब भी सुना जा सकता है जब व्यक्ति कृषि या घरेलू कार्य में व्यस्त हों।

टेलीविजन : टेलीविजन या दूरदर्शन प्रसार शिक्षा की बहुत ही प्रभावकारी विधि है। इसके अन्तर्गत श्रव्य-दृश्य दोनो का समवेश होता है। यह वास्तविक जीवन के कार्यो को प्रभावशाली ढ़ंग से लोगों तक पहुंचाने में सक्षम है। यह केवल नये ज्ञान को ही नहीं बल्कि कार्य कुशलता को भी सफलतापूर्व प्रर्दशित कर सकता है। प्रसार शिक्षण में यह माध्यम काफी लाभकारी सिद्ध हो सकता है। यह अपेक्षाकृत कम यूनिट लागत पर लंबी दूरियों तक भी संदेश संप्रेषित कर सकता है। इसका प्रयोग त्वरित जन-जागरूकता सृजित करने के लिए किया जा सकता है।

12.9 प्रसार शिक्षण के चरण

प्रसार शिक्षण, प्रसार कार्यकर्ता द्वारा किया लाने वाला एक विचारपूर्वक निश्चित एवं सुनियोजित कार्य है। कृषकों, कृषक महिलाओं व ग्रामीण युवाओं को शिक्षित करने हेतु प्रसार कार्यकर्ता एक वैज्ञानिक, तर्कसंगत व चरणबद्ध तरीके से कार्य करता है। प्रसार शिक्षण का यह कार्य कई चरणों में पूरा होता है। जिनका विवरण निम्न प्रकार है:

ध्यानाकरण : नये विचार या तकनीक की ओर लोगों का ध्यान आर्कषित करना प्रसार शिक्षण का प्रथम चरण है। जिससे कृषकों को नए विचार की मौजूदगी का पता चलता है। परंतु उसे इस विचार के बारे में पूरी जानकारी नहीं होती। उसे यह नहीं पता होता कि यह क्या है, इससे क्या लाभ होगा तथा यह कैसे कार्य करेगी।

रूची : कृषकों में **किसी** नए विचार की मौजूदगी की ओर ध्यान आकर्षित करने के पश्चात उसके लिये रूची पैदा करना प्रसार शिक्षण का दूसरा चरण है। इसके लिये प्रसार कार्यकर्ता किसी नवप्रवर्तन या

विचार के बारे में अधिक से अधिक जानकारी उपलब्ध कराता है कि नवप्रवर्तन/विचार क्या है, यह कैसे कार्य करता है तथा इसकी क्या संभावनाएं है।

इच्छा : **लोगों को बदलाव के लिए प्रेरित करना या** किसी नवप्रवर्तन या विचार के बारे में जानकारी हेतु **इच्छा जागृत करना** प्रसार शिक्षण का एक आवश्यक कदम है। इसके लिऐ विषय की उपयोगिता व लोगों के जीवन में महत्व के बारे में अवगत कराना चाहिये।

विश्वास : वास्तव में कृषक अपनी स्वयं की परिस्थितियों में इसकी उपयोगिता या संभावना और अनुप्रयुक्तता का निर्धारण करने के बाद ही नए विचार को अपनाता है। प्रदर्शन या अन्य प्रसार विधियों का प्रयोग कर लोगों में नए विचार के प्रति विश्वास पैदा किया जाना चाहिये।

प्रयोग : जब तक विश्वास कार्य में परिवर्तित नहीं होता, शिक्षण के सभी प्रयास बेकार हैं। यह प्रसार कार्यकर्ता का काम है कि वह लोगों द्वारा नवप्रवर्तन या विचार प्रयोग को सुगम बनाये।

संतुष्टि : कृषकों की संतुष्टि प्रसार शिक्षण कार्य की परिणाम होता है। प्रसार कार्य में लोगों की संतुष्टि का ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक है। जब तक अन्तिम लाभ से लोग संतुष्ट नहीं हैं तो उस कार्यक्रम को सफल नहीं माना जायेगा। संतुष्टिजनक परिणाम शिक्षण को पुन:प्रवर्तित करते हैं तथा लोगों को आगे के विकास में शामिल करने के लिए प्रेरित करते हैं।

12.10 सांराश

प्रसार शिक्षा एक अनौपचारिक शिक्षा पद्धती है जो लोगों को अपने स्वयं के प्रयासों से अपनी समस्याओं का समाधान करना सिखाती है। समस्त संसार में हो रहे शोधों तथा तकनीकी विकास की जानकारियाँ प्रसार द्वारा ही कृषकों को प्राप्त होती हैं। प्रसार शिक्षा के परिणामस्वरूप कृषकों को अपनी समस्याओं को दूर करने और अपने व्यवसाय को सुधारने के अवसर प्राप्त होते हैं। प्रसार शिक्षा द्वारा अनुसंधान केन्द्रों से वैज्ञानिक जानकारियां लोगों तक पहुंचाई जाती है तथा इसी प्रकार किसानों की कठिनाइयां एवं समस्याएं अनुसंधान केन्द्रों में लाई जाती हैं ताकि उनका हल निकाला जा सके। प्रसार शिक्षण हेतु कई प्रकार की विधियों को प्रयोग में लाया जाता है जिनको व्यक्तिगत, समूह अथवा जन सम्पर्क विधियों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

12.11 अभ्यास प्रश्न

1- प्रसार शिक्षा किस प्रकार की शिक्षा पद्धति है ?

क. अनौपचारिक शिक्षा पद्धति   ख. औपचारिक शिक्षा पद्धति

ग. विद्यालयी शिक्षा पद्धति   घ. विश्वविद्यालयी शिक्षा पद्धति

2- निम्न में से कौनसा प्रसार शिक्षा का कार्य है ?

क. ज्ञान में परिवर्र्तन   ख. कौशल में परिवर्तन

ग. अभिवृत्ति परिवर्तन   घ. उपरोक्त सभी

3- निम्न में से कौनसी विधि समूह विधि है ?

क. व्यक्तिगत पत्र ख. समाचार-पत्र

ग. प्रक्षेत्र दिवस घ. अभियान

4- लोगों के मध्य आम जागरूकता का सृजन करने के लिए उपयुक्त विधि है ?

क. व्यक्तिगत पत्र ख. प्रक्षेत्र दिवस

ग. खेत और घर पर भ्रमण घ. रेडियो

5- निम्न में से कौशल शिक्षण का यह प्रभावी तरीका है ?

क. खेत और घर पर भ्रमण ख. विधि प्रदर्शन

ग. मिनीकिट परीक्षण घ. टेलीविजन

12.13 प्रश्नों के उत्तर

1- (क) 2. (घ) 3. (ग) 4. (घ) 5. (ख)

12.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

- ए. आदवी रेड्डी 1993. प्रसार शिक्षा (पंचम संस्करण)। श्री लक्ष्मी प्रेस, बपाटला। पृष्ठ संख्या-344।
- वी. के. दूबे एवं एस. सिंह. 1985. भारत में प्रसार शिक्षा। हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़। पृष्ठ संख्या-326।
- जी. एल. राय. 1999. प्रसार संचार एवं प्रबंध (चतुर्थ संस्करण)। नया प्रॉकाश, कलकता। पृष्ठ संख्या- 324।
- बी. डी. हरपालानी. प्रसार शिक्षा (चतुर्थ संस्करण)। स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा। पृष्ठ संख्या-398।

इकाई -13

कृषि एवं ग्रामीण सेवा या कार्य

इकाई की रुपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 परिचय

13.2 ग्रामीण विकास हेतु प्रसार कार्य

13.2.1 गुड़गांव योजना

13.2.2 मार्थन्डम योजना

13.2.3 नीलोखेरी परियोजना

13.2.4 फिरका योजना

13.2.5 इटावा अग्रगामी योजना

13.2.6 सर्वोदय कार्यक्रम

13.2.7 सामुदायिक विकास योजना

13.2. 8 राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड

13.2.9 अन्त्योदय कार्यक्रम

13.2.10 ग्रामीण युवक स्वत: रोजगार प्रशिक्षण

13.2.11 स्पेशल कम्पोनेट प्लान

13.2.12 संशोधित बीस सूत्रीय कार्यक्रम

13.2.13 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम

13.2.14 जवाहर रोजगार योजना

13.3 कृषि विकास हेतु प्रसार कार्य

13.3.1 अधिक अन्न उपजाओं अभियान

13.3.2 सघन कृषि जिला कार्यक्रम या पैकेज प्रोग्राम

13.3.3 सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम

13.3.4 कमांड एरिया विकास कार्यक्रम

13.3.5 कृषि ज्ञान केन्द्र

13.3.6 अधिक उपज देने वाली प्रजाति कार्यक्रम
13.3.7 लघु तथा सीमान्त कृषकों एवं कृषि मजदूर विकास योजना
13.3.8 सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम
13.3.9 कृषि तकनीकी का स्थानान्तण
13.3.10 कृषि विज्ञान केन्द्र
13.3.11 प्रशिक्षण
13.3.12 प्रशिक्षण एवं भ्रमण व्यवस्था
13.3.13 सक्रियात्मक अनुसंधान परियोजना
13.3.14 प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम
13.3.15 एकीकृत ग्राम विकास योजना
13.4 अनुसंधान स्कीम/परियोजनाएं
13.4.1 अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना
13.4.2 राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परियोजना
13.4.3 प्रोफेसर ऑफ इमीनेन्स एंड़ नेशनल फेलो
13.4.4 तिलहन तकनीकी मिशन
13.4.5 राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना
13.4.6 राष्ट्रीय कृषि नवेनोमेशेषी परियोजना
13.5 सारांश
13.6 अभ्यास प्रश्न
13.7 प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रन्थ

13.0 उद्देश्य

ग्रामीण विकास हेतु विभिन्न कार्य योजनाओं के बारे में जानकारी करना, उनमें मुख्य योजनाये जैसे-गुड़गांव योजना, मार्थन्डम योजना, नीलोखेरी परियोजना, फिरका योजना, इटावा अग्रगामी योजना, सर्वोदय कार्यक्रम, सामुदायिक विकास योजना, राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड, अन्त्योदय कार्यक्रम, ग्रामीण युवक स्वत: रोजगार प्रशिक्षण, स्पेशल कम्पोनेट प्लान, संशोधित बीस सूत्रीय कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम एवं जवाहर रोजगार योजना इत्यादि। इसी प्रकार कृषि विकास हेतु प्रसार कार्य योजनायें जैसे-अधिक अन्न उपजाओं अभियान, सघन कृषि जिला कार्यक्रम या पैकेज प्रोग्राम, सघन

कृषि क्षेत्र कार्यक्रम, कमांड एरिया विकास कार्यक्रम, कृषि ज्ञान केन्द्र, अधिक उपज देने वाली प्रजाति कार्यक्रम, लघु तथा सीमान्त कृशकों एवं कृषि मजदूर विकास योजना, सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, कृषि तकनीकी का स्थानान्तण, कृषि विज्ञान केन्द्र, प्रशिक्षण, प्रशिक्षण एवं भ्रमण व्यवस्था, सक्रियात्मक अनुसंधान परियोजना, प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम, एकीकृत ग्राम विकास योजना, अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना, राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परियोजना, प्रोफेसर ऑफ इमीनेन्स एंड़ नेशनल फेलो, तिलहन तकनीकी मिशन, राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना एवं राष्ट्रीय कृषि नवेनोमेशी परियोजना आदि योजनाओं के बारे में जानकारी करना। उपरोक्त कार्य योजनाओं के द्वारा ग्रामीण युवकों एवं कृषकों का सर्वांगीण विकास करके देश को उन्त देशों की श्रेणी में सम्मिलित करना है।

13.1 परिचय

भारतीय गांव के लोग कच्चे मकानों में रहकर आस पास की भूमि पर कृषि एवं सम्बन्धित व्यवसाय सामाजिक एवं आर्थिक के रूप से जीविकोपार्जन करते है। गांवों का विकास नही होने के कारण ग्रामीण जनता गरीब ही बनी रही क्योंकि अधिक अन्न उत्पादन नही होने से उनको कपड़े एवं भरपूर भौजन नही मिलता था जबकि यूरोप, जापान, चीन ने कृषि में काफी उन्नति कर ली थी।

अंग्रेजो के शासनकाल 200 वर्षों में भारत की जनसंख्या 250-300 फीसदी बढ़ी किन्तु इस अनुपात में कृषि के उत्पादन में वृद्धि नही हुई। नकदी फसलों जैसे नील, चाय, गन्ना तथा कॉफी की खेती मुख्यतया अंग्रेजी व्यापारियों के हाथ में ही थी अत: कृशकों को उसका उचित पारिश्रमिक नही मिलता था। कृषि क्षेत्र में जो प्रयास हुआ उसमे उ0 प्र0 में कृषि विभाग की 1875 में स्थापना, 1905 में पहला कृषि शोध संस्थान खोला गया। गोदामों का निर्माण कर बीज एकत्रित कर कृषकों को सवाई पर देना आदि था। अंग्रेजी शासन में कुल खर्च का 1/3 भाग फौज पर, 1/2 भाग सिविल प्रकाशन पर तथा केवल 1/6 भाग ही कृषि एवं अन्य मदों पर होता था परीणाम यह हुआ कि गेहूँ व चावल भी बाहर से आयात करना पड़ता था तथा किसान को स्वयं एवं कृषि की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था तथा कहा गया कि किसान रुढ़िवादी है तथा नवीन तकनीकी को अपनाना नही चाहते लेकिन हकीकत यह थी कि उनके पास उन्नत बीज, उन्नत विधि की जानकारी तथा उत्पादन हेतु उचित मूल्य का संरक्षण नही था। रॉयल-एग्रीकल्चर सोसाइटी के कन्सेल्टेन्ट डॉ0 जे0 ए0 वाचलेकर ने वर्ष 1889 में अपनी रिर्पोट में लिखा है कि भारतीय किसान अन्य देशों के किसान से कम सक्षम नही है, उनकी गिरी दशा का मुख्य कारण सुविधाओं का अभाव तथा वर्ष 1770, 1812, 1824, 1832, 1834, 1866, 1868, 1874, 1886, 1907 तथा 1943 में पड़े अकाल के कारण हजारों गांवों के किसान बर्बाद हो गये। ऐसी स्थिति में उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार का प्रशान नही था। उनके लिए लगान तक देना कठिन हो गया, जिसके कारण बहुत से किसान आन्दोलन हुए। भारतीय गांवों एवं किसानों की दशा सुधारने हेतु अनेक योजनायें या कार्यक्रम चलाये गये जिससे उनका सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से सक्ष्म हो सकें।

इस हेतु ब्रिटिश सरकार ने लैण्ड इम्प्रूवमेण्ट एवं एग्रीकल्चर एक्ट 1888, सिंचाई आयोग 1900-01, सहकारी समिति अधिनियम 1904, कृषि सम्बन्धी शाही आयोग 1928, शिक्षासम्बन्धी शाही आयोग 1928, श्रम सम्बन्धी शाही आयोग 1931, स्वास्थ्य सर्वेक्षण विकास समिति 1946 तथा

'दुर्भिक्ष जांच आयोग' 1946 आदि चलाये इनके अतिरिक्त सामाजिक जीवन में सुधार के लिए सतीप्रथा उन्मूलन अधिनियम 1829, हिन्दु विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856, कृषि ऋण सहायता अधिनियम 1869, सहकारी समितियां अधिनियम 1904, बाल विवाह प्रतिबंध अधिनियम 1929 तथा वेतन भुगतान अधिनियम 1936 लागू किए गए।

13.2 ग्रामीण विकास हेतु प्रसार कार्य

13.02.01 गुड़गांवयोजना :-

सन् 1920 ई0 में श्री एफ0 एल0 ब्रायने के द्वारा यह योजना तत्कालीन पंजाब प्रदेश (अब हरियाणा प्रदेश) के गुड़गांव जिले में चलाई गयी। इस क्षेत्र के लोगों की गरीबी, अज्ञानता तथा बीमारी आदि को दूर करने के लिये उन्होने निम्न उद्देश्य रखे गये थे जैसे - उन्नत तरीके अपनाकर कृषि उत्पादन में वृद्धि करना, स्वास्थ्य सुधार, गृह सुधार व स्त्री शिक्षा पर बल देना एवं फिजूलखर्ची रोकना।

13.02.02 मार्थन्डम योजना :-

यह योजना डॉ0 स्पेन्सर हेच सन् 1928 के तत्वावधन में ग्रामोत्थान के उद्देश्य से यंग मेन क्रिश्चिन एसोसियेशन तथा क्रिश्चियन चर्च एसोसियेशन के द्वारा केरल प्रान्त के मार्थन्डम गांव को केन्द्र मानकर आस-पास के 40 गांवों में चलाई गई। श्री स्पेन्सर हेच ने ग्रामीणों के सामान्य विकास के लिये शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा सम्बन्धी बहुमुखी को आधार मानकर एक पंचसूत्री योजना का निर्माण किया जिसमें न केवल आत्मिक, मानसिक एवं शारीरिक पहलुओं को ही विकसित करने पर वरन् आर्थिक तथा सामाजिक पहलुओं को सुधारने पर बल दिया। यह परियोजना सामुदायिक विकास के लिए सामुदायिक स्थानीय संसाधनों के आदर्शत उपयोग को ध्यान में रखकर कार्य किया गया। इनको पांच भागों में वर्गीकृत किया गया जैसे-ग्रामीण समुदाय का सर्वागीण विकास करना, स्वयं सहायता समूह के द्वारा गरीब व्यक्ति को प्रोत्साहन देना, लोगों को जनसहभागित में स्वयं निर्णय लेने व कार्य योजना तैयार करने के लिए प्रोत्साहित करना, धर्म जाति के भेदभाव मिटाकर सब लोगों के लिये कार्य करना तथा ग्रामीण विकास के लिए आध्यात्मिक आधार तैयार करना।

उपरोक्त पांच उद्देश्य की पूर्ति के लिए परियोजना के अन्तर्गत छः सूत्रीय कार्यनीति अपनायी गयी। ये नीतियॉ ही कार्य की गति को प्रदान करती थी।

1- आवश्यक संसाधनों को जुटाने के लिए स्थानीय स्तर पर लोगों से धन प्राप्त करना।
2- कृषि तथा कृषि से सम्बन्ध क्रियाओं तथा पशुपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन तथा पशुओं की देखरेख के लिए नवीन पद्धतियों की जानकारी देना।
3- समुदाय की आय में वृद्धि के लिए कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना।
4- क्षेत्रीय उपभोग प्रारुप को ध्यान में रखते हुए अंडा विपणन समितियां व मधुमक्खी पालक सहकारी समितियां स्थापित करना।
5- प्राथमिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य शिक्षा देना।
6- ग्रामीणों के लिये नेतृत्व प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाना।

अत: कार्यक्रम संचालन की जिम्मेदारी जनता को ही दी गयी तथा कर्मचारी व अन्य वैज्ञानिक कार्यकर्त्ता केवल सलाह देने तक ही सीमित रखा गया। जनता ही अपना संगठन बनाकर विभिन्न विधियों तथा क्रियाकलाप आदि कार्य करते थे परन्तु कृषि पर समुचित ध्यान नही दिया गया। परियोजना दीर्घ काल तक आर्थिक रुप से निर्भर नही बन पायी अत: धीरे - धीरे स्थानीय लोगों की ओर से धन का योगदान कम होता चला गया।

13.02.03 नीलोखेरी परियोजना :-

यह योजना भारत सरकार के पुनर्वास मंत्रालय के अन्र्गत हरियाणा के करनाल जिले (तत्कालीन) में नीलोखेरी नामक स्थान पर पश्चिम पाकिस्तान से लाखो शरणार्थियों के पुनर्वास हेतु छोटा-छोटा पुनर्वास केन्द्र स्थापित करने की जिम्मेदारी श्री एस0 के0 डे को सुपुर्द हुई। इस परियोजना के द्वारा दलदली व ऊसर भूमि (जिस पर परियोजना चलायी गयी थी) सुधार कर कृषि योग्य बनाने तथा उसे शरणार्थियों के लिए शरणस्थल के रुप में विकसित करने की योजना थी। आरम्भ में लगभग 1,100 एकड़ में लगभग 7,000 शरणार्थियों को बसाने की योजना थी। इस योजना का आधार ''काम करके कमाओं तब खाओं'' वाला सिद्धान्त था बाद में इसे ''मजदूर मंजिल'' का नाम भी दिया गया। यह परियोजना विस्थापितों के पुनर्वास, शरणार्थियों के श्रम और प्रतिभा के उपयोग से आत्मानिर्भता प्राप्त करने तथा लोगों की मूल आव''यकताओं को पूरा करने जैसे लक्ष्यो से ओत-प्रोत थी।

इस परियोजना का मुख्य कार्यक्रम गृहनिर्माण, भूमि सुधार और कृषि कार्य संचालन, स्वास्थय सम्बन्धी सेवाये उपलब्ध कराना, पशुपालन एवं बागवानी का विकास, लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास तथा कृषि प्रसार कार्यक्रम आदि थे। शरणार्थियों को प्रशिक्षण व रोजगार के अवसर प्रदान करने के लिए ''मजदूर मंजिल'' नामक कस्बा बनाया गया जहां अस्पतालों, स्कूलों, प्रशिक्षण के लिये व्यावसायिक व तकनीकी संस्थानों, पशु चिकित्सालय, मनोरंजन जैसे सुविधाओं की व्यवस्था थी। प्रत्येक गांव में सामुदायिक केन्द्र के तौर पर कार्य करने वाला एक विद्यालय था जिसमें कृषि, पशुपालन व स्थानीय दस्तकारी का प्रशिक्षण दिया जाता था। उत्पादन आपूर्ति एवं बिक्री के लिए सहकारी समितियों का गठन किया गया। कार्यक्रम के सुचारु कार्यान्वयन के लिये प्रशासन का विकेन्द्रीकरण किया गया। परियोजना की सहायता से दलदल वाली इस ऊसर भूमि को शरणस्थल के रुप में विकसित किया गया।

इस परियोजना की विशिष्ट विशेषता यह थी कि प्रसार सेवायें इस कार्यक्रम का अभिन्न अंग था। इस परियोजना की अपनी डेयरी, मुर्गीखाना, सुअर पालन योजना इसके अलावा छापाखाना और अन्य कई संस्थायें थी जो सभी सहकारी संस्थाओं के रुप में कार्यरत थी इसके अलावा एक वर्कशाप तथा प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था भी थी। नीलोखेरी परियोजना ने सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के आगे आने वाली गलतियों को चिन्हित करते हुए उन्हे दूर करने का रास्ता दिखाया। लगभग 750 एकड़ दलदली भूमि को कृषि योग्य बनाया गया और 1,200 लोगों को उद्योगों में लगाया गया। धीरे - धीरे यह परियोजना वित्तीय रुप से आत्मानिर्भर हो गई और सरकार पर इसका भार नही रहा परन्तु डे के परियोजना से हटाने के बाद उसकी गति धीमी हो गयी।

13.02.04 फिरका योजना :-

यह योजना मद्रास सरकार द्वारा 1947 में ग्राम पुनर्निर्माण हेतु खादी एवं ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन देकर ग्रामीणों के आर्थिक विकास के लिए चलायी गई थी। सामुदायिक दृष्टिकोण के आधार ग्राम हितकारी योजनाओं के द्वारा ग्रामीणों का जीवन स्तर व हितों को ऊपर उठाने के लिये शिक्षक, पथ प्रदर्शन व प्रोत्साहन प्रदान किया जा सके तथा सरकार योजना को प्रोत्साहित करने का कार्य करे। इस योजना के उद्देश्यों में निम्नलिखित प्रमुख बिन्दु थे जैसे - कृषि तथा ग्रामोद्योगों का विकास, स्वास्थ्य शिक्षा एवं गृह विकास, ग्रामीण संस्कृति का विकास, ग्रामीण संगठन का विकास एवं ग्रामीणों में आत्मविश्वास पैदा करना। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्न कार्यक्रम चलाये गये जैसे -

1- फिरका क्षेत्र में समन्वित ढंग से यातायात के साधन जुटाना।

2- पेय जल की व्यवस्था करना।

3- नि:शुल्क प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रम।

4- संचार व्यवस्था बेहतर बनाना एवं चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करना।

5- कृषि तथा पशुधन विकास के कार्यक्रम चलाना।

6- खादी एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना करना।

7- पंचायत एवं सहकारी समितियों का गठन करना।

प्रशासनिक दृष्टिकोण से मुख्यमंत्री को इस परियोजना का अध्यक्ष तथा उनकी सहायता के लिए प्रान्तीय बोर्ड नियुक्त किया गया। प्रान्तीय स्तर पर कार्यक्रम के निर्देशन हेतु निदेशक ग्रामीण कल्याण की नियुक्ति की गयी। प्रान्तीय स्तर पर ही एक राज्य ग्राम कल्याण परिशद का गठन भी किया गया जिसमें सम्बन्धित विभागाध्यक्षों के अतिरिक्त प्रदेश के प्रमुख रचनात्मक कार्र्यकर्त्ता सदस्य के रुप में मनोनीत किये गये। जिला स्तर पर कार्य संचालन का उत्तरदायित्व जिलाधिकारी का रखा गया। प्रत्येक 2-3 फिरका का कार्य संचालन करने के लिए एक ग्राम कल्याण अधिकारी का पद सृजित किया गया उसके नीचे प्रत्येक 5-10 गांवों के लिए एक ग्राम सेवक का पद सृजित किया गया। प्रत्येक फिरके के लिए कृषि तथा सार्वजनिक कार्यो के लिए अलग प्रशिक्षित अधीनस्थ स्टाफ उपलब्ध कराया गया। ग्राम स्तर पर कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। प्रत्येक फिरके में विकास समितियाँ गठित की गई जिनकी यह जिम्मेदारी थी कि वह कार्य संचालन में सुझाव, सलाह व सहायता दे। इस परियोजना की मुख्य उपलब्धि आधारभूत सुविधाओं को जुटाना था लेकिन दूसरी ओर अधिकारियों व लोगों के मध्य समन्वय स्थापित नही हो पाने की वजह से तकनीकी व व्यवसायिक कुशलता की कमी रही जिससे लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने में कोई विशेष सहायता नही मिली।

13.02.05 इटावा अग्रगामी योजना :-

इन्जीनियर एल्बर्ट अपने विचार प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलाल नेहरु के समक्ष रखे तथा पं. नेहरु ने उनको उ. प्र. के मुख्यमंत्री पं. गोविन्दबल्लभ पन्त के पास भेजा। श्री मायर ने पंत जी से विचार-विमर्श करके उ. प्र. का इटावा जिले के महेबा ग्राम से इस योजना का प्रारम्भ सन् 1948 में किया। मायर ने अपने

तीन वर्षों में ग्रामीण विकास सम्बन्धी विचारों का गहनतम परीक्षण करके भारत में सामुदायिक विकास योजना का मार्गदर्शन किया अत: इसे इटावा अग्रगामी योजना कहते है। इस योजना का उद्देश्य था कि ग्रामीणों में विश्वास पैदा करना, ग्रामीणजनों में सामुदायिक जीवन की भावना का विकास करना, आत्म - निर्भरता की चेतना का सृजन करना, प्राप्त परिणामों की व्यापकता का परीक्षण करना, कृषि उत्पादन में वृद्धि करना एवं सामाजिक सुधार लाना। इस योजना को सफल बनाने हेतु निम्न कार्यक्रम चलाये गये जैसे - कृषि प्रदर्शनी आयोजित करना, ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ता द्वारा ग्रामीणों से जनसम्पर्क करना, अनिवार्य पदार्थो का निर्माण, ग्रामोद्योग, उन्नतशील बीज, खाद, दवाये उपलब्ध कराना, सार्वजनिक स्वास्थ्य, निरक्षरता विरोधी आन्दोलन तथा सामाजिक शिक्षा का विकास तथा ऊसर भूमि सुधार।

इस योजना की महत्वपूर्ण देन ग्रामसेवकों की नियुक्ति थी तथा इनकी भूमिका भिन्न दार्शनिक एवं पथ-प्रदर्शक की थी। इसके अतिरिक्त ग्रामीणजनों को विकास कार्यक्रमों में सम्मिलित करना, प्रसार-विधियों विशेषकर परीणाम विधि का आयोजन विशेष रुप से प्रभावकारी थे। इस योजना की सफलता पर देश के नीति-निर्धारकों ने इसे आधार मानकर पूरे देश में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का जाल बिछाने का निश्चय कर लिया परिणामस्वरूप महात्मा गांधी के जन्म दिन पर 2 अक्टूबर, 1952 को प्रथम बार 55 सामुदायिक विकास परियोजनाओं की स्थापना की गई।

13.02.06 सर्वोदय कार्यक्रम :-

यह कार्यक्रम श्री गांधी जी के विचारों पर आधारित था जो बोम्बे (मुम्बई) में 1950 से प्रारम्भ किया गया एवं इसकी मुख्य विशेषता-सादगी, अहिंसा, श्रम का महत्व तथा मानवीय मूल्यों पर बल देना था। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य गांव के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठाना, कृषि का वैज्ञानिक तरीके से विकास, कुटीर उद्योगों का विकास, साक्षरता प्रयास, स्वास्थय सुविधा एवं ग्राम पंचायत का विकास करना।

13.02.07 सामुदायिक विकास योजना :-

इस कार्यक्रम की शुरूआत 2 अक्टूबर, 1952 में फिसकल आयोग तथा ग्रो मोर फूड इन्क्वायरी कमेटी की संस्तुति के आधार पर हुई। इसका उद्देश्य स्वयं के प्रयत्नों तथा सहकारिता सहायता द्वारा लोगों का बहुमुखी विकास करना था। इस कार्यक्रम को स्थायित्व प्रदान करने के लिये सन् 1953 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड की विधि संगठनात्मक संरचना के रुप में शामिल किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य सामुदायिक विकास योजना के उद्देश्यों की प्राप्ति में मदद था। परन्तु अवधारणायें वर्ष 1959 तक साथ-साथ चली किन्तु सम्प्रति केवल सामुदायिक विकास की ही रही। इसके पश्चात सन् 1966-67 में देश को सामुदायिक विकास खण्डों में विभक्त कर दिया गया। सामुदायिक विकास योजना का मुख्य उद्देश्य लोगों का बहुमुखी विकास करना जिसमें प्राथमिक उद्देश्‍य-आर्थिक उन्नति के लिये अन्न तथा कृषि की अन्य चीजों का उत्पादन बढ़ाना तथा द्वितीयक उद्देश्य गांव में रहने वाले जिनके पास खेत नही है, उनको रोजगार देने हेतु लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास करना, स्वास्थ्य सुधार के लिये सफाई की व्यवस्था, गरीब लोगों के लिये आवासीय सुविधा उपलब्ध करना, शिक्षा के लिये विद्यालय खोलना तथा यातायात की सुविधा हेतु सड़क निर्माण करना, विभिन्न योजनाओं के संचालन हेतु कृषक, युवकों, प्रसारकर्त्ताओं

तथा अन्य लोग, जैसे- बढ़ई, नाई, धोबी, लुहार, कुम्हार आदि के लिये प्रशिक्षण व्यवस्था करना, लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना जिसमें वे अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठा सके एवं स्थानीय नेतृत्व का विकास करना।

13.02.08 राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड :-

ग्रामीण क्षेत्रों एवं समुदायों को विकसित करने हेतु संगठित एवं विकसित किया गया अभिकरण ही राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड़ है जिसकों 1953 में लागू किया गया। राष्ट्रीय प्रसार सेवा संगठन एक ऐसी ऐजेन्सी है जो विभिन्न प्रशासनिक स्तरों पर केन्द्र से लेकर प्रखण्ड तक सुसंगठित है। इनके ग्राम पंचायत से सीधे जुड़े होने के कारण प्रखण्ड स्तर की भूमिका विशेष उल्लेखनीय है तथा सरकार की समस्त विकास योजनायें ग्राम्यांचलों के सर्वांगीण विकास हेतु गांव में चलाई जाती है। विकास खण्डो की इकाइयों में सामुदायिक विकास योजनायें कार्यान्वित की जाती है।

बलवन्त राय मेहता दल (1957) की सिफारिशों के अनुसार, सरकार ने 1959 में विकास कार्यक्रमों का उत्तरदायित्व और उनकी कार्यक्रम बनाने तथा इन्हें कार्यन्वित करने की शक्ति जनता की संस्थाओं को सौंप दी। इसके तहत पंचायती राज संस्थायें, जैसे जिला परिषदों, पंचायत समिति (अब क्षेत्रीय समिति है) तथा ग्राम पंचायत क्रमश: जिला, खण्ड तथा ग्राम स्तर पर स्थापित किये गये। सन् 1979 तक देश में 262 जिला परिषद, 403 पंचायत समिति तथा 90 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या गांव पंचायत के अन्दर आ चुकी है।

13.02.09 अन्त्योदय कार्यक्रम :-

यह योजना अक्टूबर, 1977 में जनता सरकार के समय ग्रामीण उत्थान विचारधारा को ध्यान में रखकर चलाई गई जिसका ध्येय निम्नतम् आर्थिक स्थिति वाले लोगों का उत्थान करना था। सबसे पहले राजस्थान सरकार ने इस योजना का शुभारम्भ किया उसके बाद हिमाचल प्रदेश में लागू की गई। इस योजना में प्रत्येक गांव से सबसे गरीब 5 परिवारों की आय में वृद्धि करने हेतु उनकी वर्तमान रोजगार व्यवस्था में वित्तीय सहायता कृषि उद्यान तथा वन सम्पदा हेतु भूमि विकास तथा भूमि संरक्षण, लघु सिंचाई, जल निकास, पशुपालन, दुध उत्पादन, मछली उत्पादन, ग्रामीण व लघु उद्योग, तथा अन्य मदों (जो प्रान्तीय सरकार द्वारा समय-समय पर चुने जाये) पर दी जाती है।

13.02.10 ग्रामीण युवक स्वत: रोजगार प्रशिक्षण :-

इस प्रशिक्षण की व्यवस्था छठी पंचवर्षीय योजना में बेरोजगारों को रोजगार देने के उद्देश्य से वर्ष 1979 में की गई। इसके अन्तर्गत ग्रामीण युवकों को स्वत: रोजगार में लगाने के लिये आवश्यक दक्षता एवं तकनीकी की जानकारी देने पर विशेष जोर दिया गया। प्रशिक्षण करके सीखने के सिद्धान्त पर बल दिया जाता है। इस प्रशिक्षण योजना में प्रत्येक खण्ड से 40 प्रशिक्षार्थी जिनमें 20 प्रतिशत महिलाये तथा 20 प्रतिशत हरिजन वर्ग से होने आवश्यक है तथा उम्र 18-35 वर्ष और एक परिवार से एक व्यक्ति का ही चुनाव करना था। इनका चयन खण्ड स्तर पर बनी एक समिति द्वारा होता है जिसका अध्यक्ष पंचायत समिति विकास अधिकारी होता है एवं सहायक प्रबन्धक, जिला उद्योग केन्द्र, प्राविधिक संस्थान के प्रतिनिधि, बैक शाखा प्रबन्धक एवं स्थानीय कॉलेज के प्राचार्य आदि सदस्य होते है।

प्रक्षार्थी निम्न संस्थाओं जैसे-ग्राम सेवक प्रशिक्षण केन्द्र, ग्राम सेविका प्रशिक्षण केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र, खण्ड विकास प्रशिक्षण केन्द्र, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान एवं पालिटेक्निक प्रशिक्षण केन्द्र जो जनपद स्तरीय समिति द्वारा अनुमादित होते है पर प्रशिक्षण के लिये भेजे जाते है। उक्त प्रशिक्षार्थी को औधोगिक प्रशिक्षण हेतु उद्योग ऐसे ही चुने जाते है जिनके विपणन की स्थानीय व्यवस्था हो जैसे- कृषि यन्त्र, सिचाई यन्त्र, पेड़ों की कटाई-निराई, फर्नीचर, नर्सरी तैयार करना, आचार-मुरब्बा तैयार करना, आलू के चिप्स, पापड़, सूअर, भेड़, बकरी, मछली, मुर्गी पालन, दुग्ध तथा इससे सम्बन्धित पदार्थ, मक्खन, घी, कुटीर उद्योग तथा दस्तकारी जिनके वितरण में कोई समस्या न हो।

13.02.11 स्पेशल कम्पोनेट प्लान :-

यह योजना 2 अक्टूबर, 1980 को विशेषकर हरिजनों के विकास के लिये लागू की गई जिसका मुख्य उद्देश्य 59 प्रतिशत अनुसूचित जाति के परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर लाना है जिससे वे आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो सके। सभी प्रकार की आर्थिक योजनाओं को चलने के लिये अधिकतम 20,000 रुपये तक ऋण दिया जाता है। इस योजना में शर्त यह है कि अनावर्तक लागत 6,000 रुपये से अधिक न हो एवं छूट 25 से 33 1/2 प्रतिशत तक होती है जिसे एकीकृत ग्राम विकास योजना बैंक को दे देती है।

13.02.12 संशोधित बीस सूत्रीय कार्यक्रम :-

इस संशोधित कार्यक्रम की घोशणा स्व0 प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 14 जनवरी, 1982 को की थी। छठी पंचवर्षीय योजना में सभी केन्द्रीय मन्त्रालयों एवं राज्य सरकारों को विशेष रुप से निर्देशित किया गया कि इस कार्यक्रम का पूर्ण रुप से क्रियान्वयन किया जाये तथा साथ ही साथ इसकी प्रगति की रिर्पोट योजना आयोग को प्रस्तुत की जावें। इस संशोधित कार्यक्रम में निम्नवत् कार्यो की सूची इस प्रकार है-

1- सूखे क्षेत्रों में कृषि विकास हेतु सिंचाई साधन बढ़ाना, तकनीकी ज्ञान व आवश्यक सामग्री पहुँचाना।
2- दलहन तथा तिलहन की उपज बढ़ाने हेतु विशेष प्रयत्न करना।
3- समन्वित ग्रामीण विकास एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों को अधिक से अधिक क्षेत्रों तक बढ़ाना।
4- कृषि भूमि सीमा को लागू करना, फालतू भूमि का वितरण, भूमि सम्बन्धित कागजों को, सभी प्रबन्धात्मक एवं कानूनी कठिनाइयों को हटाकर पूरा करना।
5- कृषि मजदूरों के लिये न्यूनतम मजदूरी को प्रभावकारी ढंग से लागू करना।
6- बन्धक मजदूरों को पूर्ण अवस्था में लाना।
7- अनुसूचित जाति तथा जनजाति के विकास के कार्यक्रमों को बढ़ावा देना।
8- सभी समस्यायुक्त ग्रावों मे पीने के लिये पानी की सुविधा उपलब्ध कराना।
9- मकानरहित ग्रामीण परिवारों को आवास के लिये भूमि बाँटना।

10-गन्दी के वातावरण को सुधारना, आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गो के लोगों के लिये मकान बनाना तथा भूमि की कीमत में अनावश्यक बढ़ोत्तरी को रोकने के उपाय करना।

11-बिजली उत्पादन बढ़ाना, बिजली बोर्डो की कार्य - प्रणाली से सुधार तथा सभी ग्रामों में बिजली पहुँचाना।

12-वन लगाने हेतु प्रोत्साहित करना तथा बायों गैस एवं अन्य शक्ति साधनों का विकास करना।

13-स्वेच्छा से परिवार नियोजन को लोगों का कार्यक्रम बनाना।

14-सभी के लिये प्रारम्भिक स्वास्थय रक्षा सुविधाओं में वृद्धि करना।

15-सभी बच्चों के कल्याण के लिये कार्यक्रमों को बढ़ाना, गर्भवती स्त्रियों, दूध पिलाने वाली माताओं तथा बच्चो के लिये पोषण के कार्यक्रम को तेजी से चलाना।

16-सभी आयु-वर्ग (6-14 वर्ष) के बच्चे के लिये प्रारम्भिक शिक्षा को, विशेष तौर पर लड़कियों हेतु उपलब्ध कराना।

17-उचित मूल्य की दुकानों द्वारा सार्वजनिक वितरण को बढ़ाना तथा चल दुकानों की सुविधा भी प्रदान करना।

18-परियोजनाओं को समय पर पूरा करने के लिये उद्योग नीति तथा धन लगाने के तरीकों को आसान बनाना।

19-चोरी से माल का व्यापार करने वालों, सग्रंहकर्त्ताओं तथा कर चोरी करने वालों और काले धन को रोकने के लिए सख्ती से कार्य करना।

20-कार्यक्षमता, क्षमता के आधार पर उपयोग तथा निजी साधनों को बढ़ाकर सभी सरकारी क्षेत्र के कारखानों की कार्य प्रणाली में सुधार लाना।

13.02.13 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम :-

भारत सरकार ने छठी पंचवर्षीय योजना के तहत ग्राम्य विकास के लिये मूलभूत सुविधाओं की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए एक कार्यक्रम तैयार किया जिसका नाम ''न्यूनतम आवश्यक कार्यक्रम'' रखा गया। इसका मुख्य ध्येय शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, विद्युतीकरण, सड़कों तथा मकान बनाने की उचित समयावधि में सुविधा प्रदान करना है। इन सभी क्रियाकलापों को शिक्षा के माध्यम से शिक्षित करने के उपक्रम पर विशेष बल देना है। ग्राम स्तरीय कार्यकर्त्ताओं को यह जिम्मेदारी दी गयी है कि वे निर्बल वर्ग के लोगों को शिक्षित करे कि उनके लिये कौन सी योजनाऐ चल रही है जिसकी जानकारी कर वे अधिकाधिक लाभ ले सके क्योंकि योजनाओं का पूर्ण लाभ जरुरतमन्द लोगों तक न पहुँच पाने का मुख्य कारण शिक्षा का अभाव पाया गया है।

13.02.14 जवाहर रोजगार योजना :-

तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 28 अप्रैल, 1989 को 2,100 करोड़ रुपये की जवाहर रोजगार योजना की घोषणा की थी। इस योजना के अन्तर्गत पंचायतों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे वाले 4.40 करोड़ परिवारों के कम से कम एक सदस्य को रोजगार मिलेगा। इस योजना

की नीति में पंचायतो के माध्यम से योजना लागू होने से रोजगार कार्यक्रमों में व्याप्त भ्रष्ट्राचार कम होगा तथा सरकार द्वारा खर्च किया गया पैसा बिचौलियों व दलालों के स्थान पर जनसाधारण को लाभान्वित करेगा। इस योजना के अन्तर्गत 31 प्रतिशत रोजगार ग्रामीण क्षेत्रों की गरीब महिलाओं को दिये जायेगे। पंचायते स्थानीय आवश्यताओं और संसाधनों को देखकर स्वयं रोजगार कार्यक्रम बनायेगी। तीन से चार हजार जनसंख्या वाले गांव की पंचायत को जवाहर रोजगार योजना के लिये प्रति वर्ष 80 हजार से 1 लाख रुपये तक मिलेगें। इस कार्यक्रम का उद्देश्य देश्स भर में ग्रामीण पंचायतों के हाथों में पर्याप्त धनराशि देना है, जिससे वे भारी संख्या में ग्रामीण गरीबों के हित स्वयं अपनी ग्रामीण रोजगार योजनाये चला सके। जवाहर रोजगार योजना का लक्ष्य प्रत्येक पंचायत तक पहुँचना है और इसका 80 प्रतिशत कार्यक्रम केन्द्र की वित्तीय सहायता से चलाया जायेगा। इसके संचालन के चालू वित्त वर्ष में ही इस कार्यक्रम के लिये 2,100 करोड़ रुपये की केन्द्रीय सहायता दी जायेगी। विभिन्न प्रकार के प्रर्दशनों में सम्मिलत जैसे- बहुफसली प्रणाली प्रर्दशन, वर्षा-निर्भर कृषि फसल प्रर्दशन, विशेष समस्याओं वाली कृषि सम्बन्धी प्रदर्शन तथा समूची खेती पद्धति फसल प्रदर्शन आदि है। इस प्रदर्शनों से यह दर्शाया कि नई प्रौद्योगिक में आनुवांशिक उत्पादन क्षमता कितनी अधिक है और साथ ही कृशकों तथा प्रसार एर्जेसियों दोनो को ही प्रभावित करने की कोशिश की गई।

13.3 कृषि विकास हेतु प्रसार कार्य

13.03.01 अधिक अन्न उपजाओं अभियान :-

इस अभियान का श्री गणेश 1942 में हो चुका था किन्तु संगठित रुप से सरकार द्वारा 1947 में चलाया गया। इस कार्यक्रम के तहत जिला तथा पंचायत समिति स्तर (ताल्लुका) पर अतिरिक्त कर्मचारियों की नियुक्ति देकर कार्यक्रम को सुचारू रूप से चलाया गया लेकिन इसके प्रति कृशकों की अनुक्रिया बहुत असन्तोशजनक रही अत: इन पर इन्क्वायरी कमेटी बैठायी गई जिसने अपनी रिर्पोट में निरीक्षण एवं सुधार हेतु कुछ संस्तुतियाँ दी, जो इस प्रकार थी -

1- कार्यक्रम को चलाने के लिये सक्षम प्रशासनिक व्यवस्था की जाये।
2- कार्यक्रम में स्थानीय नेताओं का समावेश हो।
3- ग्रामीण कार्य हेतु प्रसार संगठन बनाया जाय।
4- 120 गांवों के लिये पंचायत समिति स्तर पर दो पंचायत समिति विकास अधिकारी, चार तकनीकी अधिकारी, 12 ग्राम सेवकों की संख्या रखी जाय।
5- जिला स्तर पर कलेक्टर सहयोग करे तथा सांसद, विधायक एवं जिला परिशद सदस्य आदि हो।
6- राज्य स्तर पर ग्रामीण विकास का इन्चार्ज विकास आयुक्त हो।
7- सामाजिक विकास कार्यो के साथ-साथ कृषि विकास कार्यक्रम भी अवश्य हो।

13.03.02 सघन कृषि जिला कार्यक्रम या पैकेज प्रोग्राम :-

यद्यपि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की आशातित प्रगति हुई किन्तु उत्पादन में अपेक्षित सफलता न मिलने के कारण फोंडऱ् फाउंड़ेसन को कृषि उत्पादन टीम, 1959 ने अपनी रिर्पोट में सिफारिश

की थी कि कृषि का उत्पादन बढ़ाने के सभी उपाय एक क्षेत्र (जहां सिंचाई की सुविधा हो, बाढ़ का भय न हो, जल निकास प्रबन्धक हो तथा सहकारी समितियां एवं पंचायत का अच्छा कार्य हो) में सघन रुप में अपनाये जायें तथा वहां कृषकों को सभी सुविधायें (तकनीकी ज्ञान, कृषि वित्त तथा सामग्री पूर्ति) एक साथ उपलब्ध कराई जाये। इसलिए सभी सुविधाजनित होने पर इसको 'पैकेज प्रोग्राम' भी कहा जाता है।

प्रारम्भ में वर्ष 1960-61 में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत केवल सात जिलों का ही चुनाव किया गया, बाद में प्राय: सभी राज्यों में वह कार्यक्रम चलाया गया परन्तु इस कार्यक्रम से अधिक भाग लेने से सरकार की ऋण, बाजार मूल्य, उद्योग, यातायात तथा भूमि सम्बनधी नीति उपयुक्त सिद्ध नही हुई।

13.03.03 सघन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम :-

तृतीय पंचवर्षीय योजना के मध्यावधि मूल्यांकन में यह अवलोकन किया गया है कि देश की 20-25 प्रतिशत जोत पर वैज्ञानिक कृषि विकास हेतु सघन रुप से प्रयास हो जिसको कृषि उत्पादन बोर्ड (1964) ने स्वीकार किया तत्पश्चात यह कार्यक्रम मार्च 1964 में इस उद्देश्य के साथ शुरूआत हुआ कि सघन रूप से अन्तर सम्बन्धित कारकों (भौतिक, सामाजिक तथा संस्थात्मक) को ध्यान में रखकर समन्वित रुप में प्रयोग करना जिससे कृषि उत्पादन पर अधिक से अधिक विशेष प्रभाव पड़ सके। इसमें मुख्यत: उन्नत बीज, सिंचाई, उन्नत कृषि यन्त्र, फसल सुरक्षा पर विशेष जोर देना था।

13.03.04 कमांडएरिया विकास कार्यक्रम :-

कृषि व अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों के समग्र विकास के उद्देश्य से पहली बार चौथी योजना के दौरान 10 नई घाटी विकास प्राधिकरणों का गठन वर्ष 1966-69 में किया गया तथा पांचवी योजना में सिंचाई परियोजनाओं को चलाने हेतु वृहत कार्यक्रम बनाया गया। इस योजना का लक्ष्य 51 कमांडएरिया को विकसित करने के लिए निर्धारण किया गया किन्तु 38 कमांड एरिया में ही कार्यक्रम चल पाये और वह भी केवल 13 राज्यों के विशेष क्षेत्रों में ही चलाया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य यह रहा कि रिसाव व अत्यधिक सिंचाई से होने वाले जल को नष्ट होने से बचाना एवं अधिक उपज प्राप्ति हेतु पानी, भूतल तथा मृदा के प्रकार के अनुसार फसल योजना तैयार करना ताकि प्रति इकाई /यूनिट पानी से सिंचित भूमि से फसलोत्पादन के साथ-साथ सिंचित भूमि के क्षेत्र में वृद्धि हो सके।

13.03.05 कृषि ज्ञान केन्द्र :-

प्रारम्भ में हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा कृषकों को कृषि तकनीकी सहायता हेतु हरियाणा प्रदेश के प्रत्येक जनपद मुख्यालय पर 'कृषि सलाहकार सेवा केन्द्र' की स्थापना की गयी जो बाद में 2 फरवरी, 1970 से ये केन्द्र 'कृषि ज्ञान केन्द्र' के नाम से लोकप्रिय हो गये। इन केन्द्रों पर कृषि सम्बन्धी सलाह की आव"यकता की पूर्ति हेतु स्नातकोत्तर/विधावाचस्पति डिग्री धारकों की टीम का गठन किया गया। इस टीम में मुख्यतया सस्य विज्ञान, कृषि अर्थशास्त्र (प्रक्षेत्र प्रबन्ध), कृषि अभियंत्रण, कीट विज्ञान, पौध रोग विज्ञान, मृदा विज्ञान, उद्यान विज्ञान, सब्जी विज्ञान, पशु - विज्ञान तथा गृह विज्ञान के विशेषज्ञ सम्मिलित किये गये तथा उनको जिला प्रसार अधिकारी का नाम दिया गया। इस केन्द्र की सबसे बड़ी विशेषता यह रह कि कृषकों को एक ही स्थान पर उनकी विभिन्न समस्याओं का निदान हो जाता है। जब भी किसान इन केन्द्रों पर सम्पर्क स्थापित करते है तो उन्हें विशेषज्ञों की सलाह एक मित्र एवं पथ प्रदर्शक

के रुप में प्राप्त होती है। कृषकों को मुख्यत: संतुलित उर्वरकों का प्रयोग, कीट एवं रोग नियंत्रण, क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत बीजोपचार, कटाई उपरान्त प्रबंधन तकनीकी, पशुओं में गुणवत्ता सुधार, मत्स्य, मधुमक्खी एवं कुकुट पालन सम्बन्धी सलाह की जानकारी मिलती है।

तत्पश्चात इन केन्द्रो को और प्रभावी बनाने हेतु कृशकों के कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव के आधार पर उनको प्रदर्शन प्रक्षेत्र हेतु आव”यक बीज की मात्रा उपलब्ध कराना, फसलोत्पादन सम्बन्धी कार्यशाला का आयोजन, बुवाई के समय अधिक उपज देने वाली उन्नत प्रजातियों के बीज रियातीदर पर उपलब्ध कराना, आवश्यक कृषि यंत्रों को उपलब्ध कराना, प्रदेश की सभी पंचायत घरों पर कृषि परामर्श पत्रों की व्यवस्था करना, समयानुसार उर्वरक, कीटनाशी खरपतवारनाशक दवाओं को उपलब्ध कराना तथा आवश्यता पड़ने पर कृषकों को केन्द्रों पर ठहरने की व्यवस्था करना।

13.03.06 अधिक उपज देने वाली प्रजाति कार्यक्रम :-

यह कार्यक्रम वर्ष 1970-71 में चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में उन्नतिशील जातियों को अपनाकर खाद्यान्न क्षेत्र में आत्मनिर्भर होना था। यह कार्यक्रम उन क्षेत्रों में चलाया गया जहां पर शीघ्र कृषि उत्पादन वृद्धि हेतु आवश्यक संसाधनों जैसे-सिंचाई, जलनिकास, भूमि संरक्षण, उपयुक्त भूमि आदि मौजूद हों। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत धान, मक्का, ज्वार, बाजरा तथा गेहूँ मुख्य फसल ली गई। कार्यक्रम 19 लाख हेक्टेयर भूमि पर शुरू किया गया था परन्तु योजना का लक्ष्य 35 मिलियन हेक्टेयर निर्धारित था। इस कार्यक्रम के लिये अतिरिक्त या विशिष्ट कर्मचारी नियुक्त नही किये गये।

13.03.07 लघु तथा सीमान्त कृषकों एवं कृषि मजदूर विकास योजना :-

भारत सरकार ने चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में वर्ष 1970-71 में कमजोर वर्ग के कृषकों की दशा सुधारने हेतु 87 लघु तथा सीमान्त कृषक विकास योजनायें एवं कृषि मजदूर विकास योजनायें शुरू की। केन्द्रीय सरकार ने पांचवी पंचवर्षीय योजना में प्रान्तीय सरकार के अलावा इस पर 200 करोड़ रुपये खर्च करने करने की व्यवस्था रखी तथा परियोजना बढ़कर 87 से 160 हो गई। प्रत्येक लघु कृषक विकास योजना से 50,000 लघु कृषकों तथा प्रत्येक सीमान्त कृषक विकास योजना से 20,000 सीमान्त कृषकों एवं कृषि मजदूरों को लाभ पहुँचाने का लक्ष्य था। इस योजना के मुख्य उद्देश्य आधुनिक तकनीकों का प्रयोग कर कृषि उत्पादन में वृद्धि करना तथा कृषकों को वित्तीय संस्थाओं द्वारा कृषि ऋण देकर उत्पादन में वृद्धि तथा अनुदान द्वारा उनके कर्ज को कम करना था। इस योजना के अन्तर्गत कृषकों के लिये मुख्य कार्यक्रम- कृषि विकास, लघु सिंचाई, भूमि सुधार एवं भूमि संरक्षण, सूखी खेती करना तथा जल संरक्षण तथा सहायक कार्यक्रम- पशुपालन, भेड़, बकरी, साँड पालन, मुर्गी पालन आदि एवं कृषि मजदूरों के लिये दुधारु पशु भेड़ों तथा मुर्गियाँ आदि अनुदान पर उपलब्ध कराकर उनको लाभान्वित किया गया।

13.03.08 सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम :-

इस योजना का सम्बन्ध ग्रामीण काम तथा रोजगार देने से था परन्तु बाद में क्षेत्र विकास आधार पर पुनर्गठित होकर केन्द्रीय योजना में सम्मिलित हुई। इस योजना कि नीति में उक्त क्षेत्र की भूमि, जल, मानव साधन तथा पशुधन के उपयुक्त उपयोग से अर्थव्यवस्था एवं प्रक्षेत्र विकास करना था। इस योजना में कार्यक्रम सिंचाई साधनों का प्रबन्धन तथा विकास, असिंचित क्षेत्र का विकास, दुधारु पशुओं का

विकास, भेड़ों, चरागाह, वृक्षारोपन, उद्यान, मछली पालन, रेशम के कीड़े पालने के विकास से सम्बन्धित थे। इसका लक्ष्य प्रत्येक जिले में 10,000 परिवारों को लाभ पहुँचाने तथा 33 प्रतिशत अनुदान की व्यवस्था थी। सामुदायिक कार्यो में 50 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।

13.03.09 कृषि तकनीकी का स्थानान्तण :-

कृषि तकनीकी का स्थानान्तण विषय विशेषज्ञों के द्वारा कृषकों तक दो अवस्थाओं में पूर्ण होता है। प्रथम अवस्था में विषय विशेषज्ञों द्वारा प्रसारकर्त्ताओं को प्रशिक्षण देना तथा दूसरी अवस्था में प्रशिक्षण प्राप्त प्रसारकर्त्ता द्वारा कृषकों का बताना।

प्रसारकर्त्ता समय-समय पर कृषि शोध संस्थाओं अथवा कृषि विश्वविद्यालयों से सम्पर्क स्थापित करके हर पन्द्रहवें दिन पर एस.डी.ए.ओ. तथा विशय विशेषज्ञों की टीम द्वारा उपक्षेत्र में सभी प्रसारकर्त्ता (जिसमें सहायक प्रसार अधिकारी तथा किसान सहायक) 30 - 40 के समूह में प्रशिक्षण पाते रहते है। इस प्रकार के प्रशिक्षण सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक तथा स्थानीय फसलों से सम्बन्धित एक दिन की अवधि का होता है। विशय विशेषज्ञों द्वारा शोध वैज्ञानिकों की मदद से सावधानीपूर्वक पाठ्यक्रम तैयार करके प्रशिक्षण के दिन प्रसारकर्त्ताओं को वितरित कर दिया जाता है।

प्रशिक्षण सत्र के अन्त में सभी किसान सहायकों के क्षेत्र में निगतों (इनपुटस्) की उपलब्धता पर समीक्षा की जाती है इसके लिए निगत (इनपुटस्) अभिकरणों, जैसे एग्रो इण्डस्ट्रीज कॉरपोरेशन, बीज निगम, मार्केटिंग को-ऑपरेटिव आदि के प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण में भाग लेने के लिये आमंत्रित किया जाता है और आवश्यक निगत की समयानुसार उपलब्ध कराने हेतु व्यवस्था की जाती है।

13.03.10 कृषि विज्ञान केन्द्र :-

इन केन्द्रों को स्थापित करने का मुख्य ध्येय ग्रामीण युवकों व युवतियों तथा प्रौढ़ों को उपयुक्त व्यवसायिक प्रशिक्षण देना है जिससे वे अपनी सामाजिक व आर्थिक दशा सुधार सकें। ये केन्द्र राष्ट्रीय कृषि आयोग (1971-73) के सुझाव पर 1973 में डॉ0 मोहनसिंह मेहता की अध्यक्षता में समिति बनाकर शुरू किये गये तथा इन्ही की संस्तुति पर वर्ष 1974 में सर्वप्रथम पहला कृषि विज्ञान केन्द्र पाण्डिचेरी में स्थापित किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में प्राय: प्रत्येक जिले में कृषि विज्ञान खोलने की व्यवस्था थी। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद द्वारा चलाई गई यह परियोजना निम्न उद्देश्य की पूर्ति करती है -

1. कृषि, उद्यान, पशुपालन तथा मछली-पालन की उन्नत विधियों से किसानों, ग्रामीण महिलाओं, युवकों तथा प्रसार कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करना।
2. शिक्षित ग्रामीण युवकों को उक्त विषय में पत्राचार विधि द्वारा प्रशिक्षित करना।
3. विशेषकर खरीफ और रबी फसलों पर कृषि के लिये सेमीनार आयोजित करना।
4. प्रसार शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रर्दशनी, गोष्ठी, प्रक्षेत्र भ्रमण (कृषि एवं पशुपालन के नई विधियों के प्रसार के लिये) आदि का आयोजन करना।

13.03.11 प्रशिक्षण -

प्रशिक्षण प्रसार प्रशासन की आधार शिला है अत: प्रसारकर्त्ता अपने कार्यो को ठीक प्रकार से करे इस हेतु उन्हे व्यवस्थित व वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षित किया जाए। वर्तमान में प्रशिक्षण तकनीकी क्षेत्र में नित्य नये परिर्वतन होते रहते है अत: इन परिवर्तनों के अनुरुप प्रसारकर्मी को कार्य करना पड़ता है जिसके लिये प्रसारकर्त्ता के समय समय पर प्रशिक्षण देना आवश्क हो जाता है। एक प्रसारकर्त्ता के लिए प्रशिक्षण द्वारा अमुक कार्य संपादन हेतु ज्ञान, कुशलता तथा दृष्टिकोण का अर्जन करना है जबकि शिक्षा में सीमाबद्धता नही है और यह जन्म से मृत्यु तक सतत् चलती रहती है लेकिन प्रशिक्षण एक निश्चित समय तक ही आयोजित होता है प्रसारकर्त्ता में विचारों, क्रियाशीलता, ज्ञान, कुशलता तथा दृष्टिकोण विकसित करता है तथा प्रसारकर्त्ता के वर्तमान और भविष्य के कार्यो में सहायक होते है।

मुख्यत: प्रसार-कर्मियों की प्रशिक्षण व्यवस्था दो प्रकार से की गई है -

1- सेवा पूर्व प्रशिक्षण -वास्तविक कार्य में आने के पूर्व जो प्रशिक्षण प्राप्त किया जाए जैसे कृषि शिक्षा, वेटेरिनरी "शिक्षा एवं कृषि अभियंत्रण शिक्षा आदि प्राप्त करना।
2- सेवाकालिक प्रशिक्षण - सेवाकाल में प्रसारकर्मी को आवश्यतानुसार अमुक कार्य में दक्ष बनाने हेतु विभिन्न विधियों (आवागमन प्रशिक्षण, कार्य प्रशिक्षण एवं पुनरावृत्ति प्रशिक्षण आदि) द्वारा प्र प्रशिक्षित किया जाता है।

13.03.12 प्रशिक्षण एवं भ्रमण व्यवस्था :-

यह योजना शुरूआत में इटली से शुरू हुई किन्तु भारत में 1974 में कृषि प्रसार की नई विधि के रुप में राजस्थान एवं मध्य प्रदेश के चम्बल क्षेत्र में प्रयोग के अनुभव के आधार पर उपयोगी सिद्ध हुई। इसके उपरान्त यह योजना असम, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, हरियाणा, कर्नाटक एवं गुजरात आदि राज्यों में अपनायी गयी। प्राय: कृषकों के खेतों पर विभिन्न फसलों की उत्पादकता उतनी नही हो पा रही है जितनी कि होनी चाहिये अत: प्रसार शिक्षा एवं प्रदर्शन द्वारा नवीनतम कृषि तकनीकी को अपनाकर कृषक तीन से छ: गुना तक औसत उपज बढ़ाया जा सकता है। इसलिये फसल क्षेत्र की इकाई उत्पादकता बढ़ाने हेतु यह नीति लागू की गई है। इस व्यवस्था के तहत फसल बढ़वार की महत्तवपूर्ण अवस्था पर फसल क्षेत्र पर कृषकों को कृषि विशेषता द्वारा समय-समय पर सलाह मिलती रहती है।

13.03.13 सक्रियात्मक अनुसंधानपरियोजना :-

भारतीय कृषि अनुसंधान परिशद द्वारा 1975 में इस परियोजना की शुरूआत की गई है। इसके मुख्य उद्देश्य किसानों और प्रसारकर्त्ताओं को जल संभर आधार पर नई कृषि तकनीकों का प्रयोग करके दिखाना है जिससे आस-पास के लोग इन्हे अपना सके एवं नवीन तकनीकी व्यवहार में लाते समय कौन-कौन सी कठिनाइयां आ रही है, इसका मूल्यांकन किया जावे। देश में विशिष्ट समस्याओं को ध्यान में रखकर 152 परियोजनायें चलाई जा रही है। इनका मुख्य ध्येय फसल उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ पशुपालन पर भी ध्यान देकर कृषकों की आमदनी बढ़ाना है और जल संभर क्षेत्र के गांवों का सवार्ंगीण विकास करना है। इसके अतिरिक्त समाज के पिछड़े वर्ग, अनूसुचित जाति व जनजातियों के विकास के लिये भी यह योजना चलाई जा रही है। इसकी मुख्य विशेषता वैज्ञानिकों को किसानों में सीधा सम्बन्ध,

फार्म योजना के द्वारा पैदावार में शत प्रतिशत वृद्धि, स्थानीय संस्थाओं का सहयोग एवं स्थानीय संसाधन को पूर्ण रुप से इस्तेमाल करना है।

13.03.14 प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम :-

भारतीय कृषि अनुसंधान परिशद ने एक राष्ट्रीय परियोजना के रुप में अपने स्वर्ण जयन्ती (50 वर्ष) के शुभ अवसर पर प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम चलाने का निर्णय लिया। इस कार्यक्रम की प्रत्यात्मक और संगठनात्मक रुपरेखा तैयार करने हेतु 3 से 5 जनवरी तक 1979 में हैदराबाद में राष्ट्रीय कार्य गोश्ठी का आयोजन किया गया। इस सम्बन्ध में जो प्रस्ताव पारित किये गये, वे निम्नांकित है -

1. इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 50,000 लघु और सीमान्त कृषक व भूमिहीन कृषि मजदूर देश के विभिन्न भागों में चुने जायें तथा देश की विभिन्न अनुसंधानशालाओं द्वारा अंगीकार किये जाये।
2. ऐसी अनुसंधान शालायें तथा अन्य भा0 कृ0 अ0 परिषद परियोजना केन्द्र भाग ले जों किसी न किसी रुप में कृषि तकनीकी ज्ञान उत्पन्न करने तथा कृषकों परिवारों को अंगीकृत कर तकनीकी हस्तान्तरण में जुड़े हो।
3. इनके अतिरिक्त अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान कार्यक्रम केन्द्र, व्यावहारिक अनुसन्धान केन्द्र, प्रशिक्षण् प्रशिक्षक केन्द्र, कृषि विज्ञान केन्द्र सम्बद्ध कृषि महाविद्यालय और स्वयंसेवी संस्थायें आदि भाग लेकर तकनीकी सलाह दे।

इन प्रस्तावों को मानते हुए भा0 कृ0 अ0 परिषद ने जून 1979 में कार्यक्रम का श्री गणेश किया जिसमें 50,000 लघु एवं सीमान्त किसान, भूमिहीन कृषि मजदूर खासतौर से हरिजन, आदिवासी और पिछड़े वर्गो से ग्रामीणजनों को सम्मिलित करने का निर्णय लिया।

13.03.15 एकीकृत ग्राम विकास योजना :-

इस परियोजना का शुभारम्भ छठी पंचवर्षीय योजना में 2 अक्टूबर, 1980 को देशव्यापी स्तर पर बेरोजगारी व अर्द्धबेरोजगारी दूर करने तथा निर्धन वर्ग के जीवन स्तर में सुधार हेतु संचालित किया गया। इसमें राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं जैसे- लघु कृषक एवं सुखोन्मुख तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना आदि को एकीकृत करके क्रियान्वयन ग्रामीण पुनर्निर्माण मन्त्रालय, भारत सरकार के सहयोग से किया जा रहा है। इस योजना कि शर्त कि वे गरीबी की रेखा से नीचे ही जीवनयापन कर रहे हो एवं लघु कृषक, सीमान्त कृषक, कृषि मजदूर तथा ग्रामीण दस्तकार ही लाभ पा सकते है किन्तु शर्त यह ही है वे परिवार जिनकी संख्या 5 हो और पात्रता की श्रेणी में हो तथा जिनकी वार्षिक आमदनी 3,500 रु0 से कम हो। इस योजना का क्रियान्वयन दो भागों में विभक्त करके किया जा रहा है जो स्थानीय आव''यकताओं, साधन उपलब्धताओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बनायी जाती है। लाभान्वित लोगों के लिये निम्न योजनाओं के द्वारा सहायता दी जा रही है। कृषि उत्पादन योजनाये जैसे -कृषि यन्त्र, उर्वरक, अन्न भंड़ारण के पात्र, कृषि मेला, बैल तथा बैलगाड़ी आदि, दुग्ध उत्पादन, भेड़ पालन, कृक्कुट पालन, बकरी पालन, सूअर पालन एवं सामुदायिक सिंचाई योजनाये तथा ग्रामीण उद्योग एवं सेवायें जैसे- खादी, तेल, दाल, खड़सारी, साबुन, कुम्हारगीरी, बढ़ईगीरी, चूना उद्योग, गोद, चाक, बेंत का काम, कत्था बनाना, फल संरक्षण, तम्बाकू, कालीन उद्योग, चीनी मिट्टी के बर्तन तथा मत्स्य पालन आदि। इन

उद्योगों को चलाने के लिये पात्र लोगों को जनपदीय स्तर पर कुटीर उद्योग विभाग से प्रशिक्षणकी भी व्यवस्था है।

13.4 अनुसंधानस्कीम/परियोजनाएं

13.04.01 अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधानपरियोजना

इस प्रकार के 91 परियोजना आई. सी. ए. आर. के संस्थानों और कृषि वि''वविद्यालयों में चलाये जा रहे है। देश का प्रथम अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना मक्का की फसल पर सन् 1957 में शुरू किया गया। परिशद् का लगभग एक चौथाई बजट इन किया जाता है। परिषद और कृषि विश्ववविद्यालयों का परियोजनाओं पर खर्च का हिस्सा क्रमश: 75 : 25 रखा जाता है।

13.04.02 राष्ट्रीय कृषि अनुसंधानपरियोजना

विश्व बैंक की सहायता से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने सन् 1979 में इस परियोजना को शुरू किया। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय आधार पर विभिन्न जलवायुवीय जोन में कृषि अनुसंधान करना है। इस परियोजना में प्रत्येक राजय को जलवायु, मृदा, फसलोत्पादन एवं पारिस्थितिकी के आधार पर विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में बांटागया है।

13.04.03 प्रोफेसर ऑफ इमीनेन्स एंड़ नेशनल फेलो

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने सन् 1979 में एक विशेष योजना शुरू की जिसमें व्यक्तिगत लोगों की पहचान एवं नेतृत्व क्षमता प्रदान करना इसका मुख्य ध्येय रखा गया। इस योजना में आधारभूत कृषि अनुसंधान के द्वारा स्कूल ऑफ थॉटस् विकसित करना इसका मुख्य उद्देश्य रखा गया है।

13.04.04 तिलहन तकनीकी मिशन

देश को खाद्य एवं अखाद्य तेलों में आत्मनिर्भर बनाने के लिये अप्रैल 1986 में यह मिशन शुरू किया गया। तिलहन उत्पादन बढ़ाने के लिए अनुसंधान और तकनीकी सहयोग पर मुख्य ध्यान दिया गया।

13.04.05 राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना

कृषि अनुसंधान और प्रसार को शामिल करते हुये तकनीकी विकास, मूल्यांकन एवं स्थानान्तरण के द्वारा संसाधन उपयोग क्षमता को बढ़ाने के लिये विश्व बैंक की सहायता से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने सन् 1998 में राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना शुरू की। यह परियोजना सन् 2005 तक सफलतापूर्वक पूरी कर ली गई।

13.04.06 राष्ट्रीय कृषि नवेनोमेशी परियोजना

राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना के पूर्ण होने पर जो वित्त राशि शेष रही (विश्व बैंक पोषित), उसी के सहयोग से यह परियोजना सन् जुलाई 2006 में शुरू की गई। इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य नवेनोमेशी तकनीकी विस्तार रखा गया है।

13.5 सारांश

भारतीय युवकों एवं कृषकों को रोजगारोन्मुखी, कृषि एवं इनसे सम्बन्धित व्यवसाय को सूदृढ़ करके सामाजिक एवं आर्थिक के रूप से सक्षम बनाकर देश की उन्नित में बराबर के भागीदार बन सके एवं अपना जीविकोपार्जन आसानी से कर सके। इस हेतु सरकार ने समय-समय पर विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों को चलाकर युवको एवं कृषकों को आर्थिक दृष्टि से स्वालम्बी बनाया तथा प्रशिक्षण प्राप्त नव युवक अपना स्वयं का व्यवसाय करके आजिविका को सुचारू रूप से चला सके। अत: विभिन्न ग्रामीण एवं कृषि से सम्बधित कार्य योजनाओं को सरकार चलाती है।

13.6 अभ्यास प्रश्न

1- मार्थन्ड़म योजना का मुख्य उद्देश्य क्या था।

(क) बाल विवाह (ख) ग्रामोत्थान

(ग) फिजूल खर्च (घ) उपर्युक्त में कोई नही

2- सामुदायिक विकास योजना का मुख्य उद्देश्य क्या था।

(क) स्वास्थ्य सुधार (ख) विद्यालय खोलना

(ग) बहुमुखी विकास (घ) सड़क निर्माण

3- ग्रामीण युवक स्वत: रोजगार प्रशिक्षण किस वर्ष शुरू हुआ।

(क) 1975 (ख) 1980

(ग) 1979 (घ) 1969

4- स्पेशल कम्पोनेट प्लान कब से लागू हुई।

(क) 2 अक्टूबर, 1985 (ख) 12 अक्टूबर, 1980

(ग) 2 अक्टूबर, 1980 (घ) 5 सितम्बर, 1980

5- जवाहर रोजगार योजना कब से लागू हुई।

(क) 15 अप्रैल, 1989 (ख) 10 मई, 1980

(ग) 15 अप्रै्रल, 1995 (घ) 28 अप्रै्रल, 1989

13.7 प्रश्नों के उत्तर

2- (ख) 2. (ग) 3. (ग) 4. (ग़) 5. (घ)

13.8 संदर्भ ग्रन्थ

- जे. पी. श्रीवास्तव. 2000. प्रसारिका। अमन पब्लिशिंग हाउस, मेरठ (उ. प्र.)। पेज संख्या 51-118।

- एस. आर. कांटवा, सी. एम. परिहार, जे. पी. तेतरवाल, बी. एल. जाखड़ एवं एस. वी. साई प्रसाद. 2010. कृषि विज्ञान। न्यू विशाल पब्लिकेशन, दिल्ली। पेज संख्या 429-443।
- वी. के. दूबे एवं एस. सिंह. 1985. भारत में प्रसार शिक्षा। हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़। पृष्ठ संख्या-156-186।

इकाई -14

कार्यक्रम नियोजन एवं मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

14. 0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 कार्यक्रम नियोजन

14.3 कार्यक्रम मूल्यांकन

14.4 सारांश

14.5 अभ्यास प्रश्न

14.6 सन्दर्भ

14.0 उद्देश्य

किसी भी कार्यक्रम की सफलता हेतु यह पहली शर्त है कि उस कार्यक्रम से अधिकाधिक लोग लाभान्वित हो सकें। अच्छी योजना ग्रामीण कार्यकर्ता के लिए उसी प्रकार सहायक होती है जैसे नाविक के लिए दिशा-निर्देशन हेतु कम्पास उपयोगी होता है। लोगों की आवश्यकतायें क्या हैं? आवश्यकताओं की पहचान कैसे हो ? लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राथमिकताओं को कैसे निर्धारित किया जाये ? आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कौन से संसाधन आवश्यक हैं ? लोगों की आवश्यकता पूर्ति हेतु सहायक संसाधनों को किस प्रकार संगठित एवं निर्देशित किया जाये ? ये प्रश्न ग्रामीण कार्यक्रम नियोजन हेतु समुचित औचित्य प्रदान करते हैं।

अत: इस इकाई में कार्यक्रम नियोजन एवं मूल्यांकन का अर्थ एवं उददेश्य तथा इनका प्रसार में महत्व की जानकारी। कार्यक्रम नियोजन प्रक्रिया एवं कार्यक्रम नियोजकों के लिए आवश्यक योग्यताएं तथा इनके लिए आवश्यकताओं की अवधारणा । कार्यक्रम नियोजन के लक्षण एवं सिद्धान्तों के साथ-साथ इनके मुख्य अंग एवं आधार के बारे में जानकारी। कार्यक्रम नियोजन एवं मूल्यांकन की मुख्य विधियों का विवरण। भारत में कार्यक्रम नियोजन की रूपरेखा एवं कार्य-प्रणाली तथा इसमें विभिन्न संगठनों की सहभागिता की महत्ता।

14.1 प्रस्तावना

प्रसार कार्य में कार्यक्रम नियोजन एक धुरी के समान है जिस पर प्रसार सेवा आश्रित हैं क्योंकि बिना कार्यक्रम नियोजन के प्रसार कार्य दिशाविहीन रहता है। प्रसार शिक्षा का कार्य-क्षेत्र दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है इसलिये कार्यक्रम नियोजन का प्रयोग भी बढ़ता जाना स्वाभाविक है। कृषि विकास के अतिरिक्त पशु चिकित्सा, दुग्ध विज्ञान, गृह विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान तथा औद्योगिक विकास के क्षेत्रों में प्रसार

शिक्षा की उपयोगिता दिनों दिन बढ़ती जा रही है। अत: जीवन के हर पहलू में कार्यक्रम नियोजन दिशा-निर्देशन देता है। इसलिये कार्यक्रम नियोजन की मदद लेकर घर, प्रक्षेत्र तथा उद्योग का विकास किया जा सकता है। इस प्रकार कार्यक्रम नियोजन का क्षेत्र व्यापक है।

लोगों की जीवन-शैली एवं जीवन में परिवर्तन लाने हेतु प्रभावित करने के उद्देश्य से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को निर्मित एवं प्रतिपादित किया जाता है। ये कार्यक्रम ग्रामीणो की वर्तमान दशा क्या है तथा क्या होनी चाहिए पर आधारित होते हैं। क्या है तथा क्या होना चाहिए में कुछ अन्तर होना आवश्यक है तथा जिसे वांछनीय दिशा में उपयुक्त कार्यवाही द्वारा ही पूरित किया जा सके। इसी परिकल्पना के आधार पर किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह (सरकारी तथा गैर-सरकारी) या दोनों के प्रयास से कुछ साधनों की सहायता से इस उद्देश्य की प्राप्ति होती है। इस प्रकार ग्रामीण विकास की सम्पूर्ण नियोजन की प्रक्रिया परिवर्तन की आवश्यकता पर आधारित होती है।

इसके साथ-साथ मूल्यांकन भी प्रसार शैक्षिक क्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। मूल्यांकन प्रक्रिया के द्वारा ही निष्कर्ष पर पहँुचा जा सकता है जो निर्णय लेने में सहायक होता है। विभिन्न शब्दों को स्पष्ट करने में भी मदद मिलती है। विभिन्न विकल्पों में चुनाव करना निर्णय कहलाता है तथा विकल्पों का मूल्य निर्धारण करना मूल्यांकन कहलाता हैं जो वर्तमान कार्यक्रम को पुनर्निदेशन, पुनर्महत्व तथा निरन्तर करने या नए कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता पर निर्णय लेने में मदद करती है। इस प्रकार मूल्यांकन सभी शिक्षण कार्यक्रम नियोजन का एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग हैं।

14.2 कार्यक्रम नियोजन :

परिभाशा एवं अर्थ :- कार्यक्रम नियोजन दो शब्दों से मिलकर बना हैं। कार्यक्रम + नियोजन। कार्यक्रम; विभिन्न क्रियाकलापों की क्रमबद्ध सम्बद्धता है जो क्या और क्यों प्रश्नों के लिये उत्तरदायी है तथा नियोजन; एक क्रिया है जो कैसे, कहाँ तथा किसके द्वारा प्रश्नों का उत्तर देता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कार्यक्रम नियोजन क्या है तथा क्या होना चाहिये, दोनों के बीच पुल का कार्य करता है। प्रसारशास्त्रियों ने प्रसार कार्यक्रम नियोजन को निम्नवत् परिभाषित किया है -

- केल्से तथा हार्ने के अनुसार (1949), ''प्रसार कार्यक्रम स्थिति, उद्देश्यों, समस्याओं तथा समाधानों का प्राक्कथन है।''
- लोरेन्स (1965) के अनुसार ''प्रसार कार्यक्रम प्रसार संस्थान के सभी कार्यों का योग है। जिसमें कार्यक्रम नियोजन प्रक्रम लिखित, कार्यक्रम प्राक्कथन, कार्य योजना, कार्य सम्पादन तथा मूल्यांकन सम्मिलित हैं।''

इस प्रकार प्रसार कार्यक्रम ''मौजूदा परिस्थिति, समस्याओं, प्राथमिकता निर्धारण करने, उद्देश्यों तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति में प्रयुक्त साधनों का वर्णन है। इस क्रिया-कलाप में प्रसारकर्ता एक निश्चित अवधि के लिये कार्यरत होते हैं।''

कार्यक्रम नियोजन की प्रकृति एवं भूमिका :- भारत की राष्ट्रीय प्रसार सेवा का मुख्य उद्देश्य लोगों में ऐसी योग्यता विकसित करना है जिससे लोग व्यक्तिगत एंव पारिवारिक सदस्य के रूप में सामुदायिक तथा राष्ट्र के एक सुयोग्य नागरिक की हैसियत से अपने जीवन को बेहतर ढंग से व्यतीत कर सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति कार्यक्रम नियोजकों के लिए कठिन समस्या होती है। नियोजन की आवश्यकता किसी कार्य को सम्पादन करने के उद्देश्य पर निर्भर करती है। किसी कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में नियोजन एक आवश्यक कदम है। नियोजन का उपयोग किसी क्रिया-कलाप की सम्पन्न करने में आवश्यक विधि को निश्चित एवं तैयार करने में किया जाता है। नियोजन किसी क्रियाकलाप को व्यवस्थित करने से संदर्भित है जो भविष्य की कार्यवाही को निश्चित करती है। इस प्रकार प्रभावी कार्यक्रम एक इच्छानुकूल प्रयास है जो पूर्व निर्धारित महत्वपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सावधानीपूर्वक बनाया जाता है।

प्रगति हेतु परिवर्तन की आवश्यकता को ध्यान में रखकर कार्यक्रम नियोजन का उपयोग किया जाता है। यह परिवर्तन लोगों को प्रभाव में लाने के लिए एक निश्चित दिश में होना चाहिए। इस प्रकार नियोजन कार्यक्रम में ही निहित होता है जो लोगों को बेहतर जीवन जीने के प्रयास में सहायक होता है। इसमें से यदि एक की भी कमी अतीत में हुयी हो तो वह भविष्य तथा वर्तमान की गतिविधि को असफल कर सकती है। नियोजन हेतु निम्न योग्यताएँ आवश्यक है -

- नियोजन प्रक्रिया का प्रारूप तैयार करने में दक्षता।
- नियोजन की प्रकृति एवं कार्य की समझदारी।
- महत्वपूर्ण उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को निर्धारित करने की योग्यता।
- समस्याओं तथा आवश्यकताओं की पहचान करने में दक्षता।
- नियोजन प्रक्रिया में प्रमुख नेतृत्व की भागीदारी कराने में दक्षता।
- उपयुक्त विधियों का निर्णय करने की योग्यता तथा उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समुचित कार्यवाही करने की योग्यता।

कार्यक्रम नियोजन का महत्व :- कार्यक्रम नियोजन का महत्व निम्न प्रकार है-

- सार्वजनिक उपयोग के लिये प्रसार कार्यक्रम की एक लिखित रूपरेखा उपलब्ध हो जाती है।
- क्या होना है तथा क्यों होना है का सावधानीपूर्वक विचार सुनिश्चित हो जाता है।
- नए प्रस्तावों का निर्णय लेने में तथा शैक्षिक उद्देश्यों के निर्माण में दिशा-निर्देशन का कार्य करता है।
- उद्देश्य निश्चित हो जाने से प्रगति का मूल्यांकन हो जाता है।
- लक्ष्य प्राप्ति के साधनों में होने वाली त्रुटियों से बचाता है तथा अनुभूत एवं बिना अनुभूत आवश्यकताओं को विकसित करता है।
- अस्थायी परिवर्तनों से उत्पन्न आकस्मिक तथा स्थायी महत्वपूर्ण समस्याओं के चुनाव में सहायक होता है।

- क्रियाकलापों की निरन्तरता बनी रहती है।
- नेतृत्व के विकास में मदद करता है।
- सार्वजनिक संगठनों द्वारा न्यायोचित धन के उपयोग किये जाने में मदद करता है।
- समय तथा धन के दुरूपयोग होने से बचाता है तथा सामान्य कौशल या दक्षता विकसित करता है।

कार्यक्रम नियोजन प्रक्रिया :- कार्यक्रम अपेक्षित व्यवहार में निश्चित समय में प्राप्तव्य, स्पष्ट एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन की ओर इंगित करता है। कथन मे विशेष रूप से निम्न बिन्दु सम्मिलित किये जाते हैं -

- क्षेत्र विशेष में कार्यक्रम द्वारा संचालित प्रत्येक विषय या समस्या से सम्बन्धित प्राथमिक सूचनायें, क्षेत्र विशेष में कार्यक्रम द्वारा चयनित विषय तथा समस्या से सम्बन्धित परिस्थिति विश्लेषण द्वारा प्राप्य प्राथमिक सूचनाएँ।
- महत्त्वपूर्ण आवश्यकतायें या समस्यायें।
- समस्याओं या आवश्यकताओं को प्राप्त करने हेतु प्रमुख साधन।
- प्राप्त किए जाने वाले दीर्घकालीन उद्देश्यों का कथन।

दीर्घकालीन कार्यक्रम के लिखित कथन का आधार निम्नवत् होना चाहिए -

- क्षेत्र के मुख्य विषयों या समस्याओं के विषय में प्राथमिक सूचनायें परिस्थिति को परिलक्षित करें।
- कार्यक्रम प्रक्रिया में स्टॉफ तथा जनता द्वारा महत्वपूर्ण समस्यायें एवं आवश्यकताओं की पहचान।
- लिखित कार्यक्रम सम्बन्धित स्टाफ, नियोजन समूह तथा दूसरे व्यक्तियों या समूहों द्वारा उपयोग हेतु उपयुक्त हों।
- एक निश्चित समय में कार्यक्रम द्वारा अपनाये गए विषय या समस्या से सम्बन्धित दीर्घ तथा अल्पकालीन उद्देश्यों की व्याख्या।
- कार्यक्रम के उद्देश्य-अपेक्षित वांछनीय दशा, स्टाफ तथा जनता के लिए अर्थपूर्ण एवं कार्यक्रम क्रियान्वयन में उपयोगी सिद्ध हो सकने के रूप में व्याख्यायित हों।
- उद्देश्य से सम्बन्धित विषय वस्तु स्पष्ट हों तथा लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हों।
- तैयार दीर्घकालीन कार्यक्रम का सारांश जनता में वितरित करने हेतु उपयुक्त हों।
- ये संक्षिप्त रूप में योजना समिति के सभी सदस्यों एवं व्यावसायिक कर्मी के लिए उपलब्ध हों।
- यह उपयुक्त साधन द्वारा परिचालित हो ताकि असके उद्देश्य एवं प्रकृति को सामान्य लोग भी आसानी से समझ सकें।

- इसका उपयोग आधार के रूप में कार्यक्रम की वार्षिक योजना को विकसित कने में किया जाये।

कार्यक्रम नियोजकों के लिए आवश्यक योग्यताएं :- सामुदायिक विकास हेतु प्रभावी कार्यक्रम नियोजन में बहुत ही उच्चस्तरीय पेशेवर दक्षता आवश्यक है। आवश्यक योग्यता में निम्नलिखित क्षेत्रों की समझ एवं दक्षता अपेक्षित है -

- कार्यक्रम में उपयोग की जाने वाली विषय-वस्तु की समझ एंव ज्ञान।
- राष्ट्रीय प्रसार सेवा संगठन की प्रकृति एवं भूमिका की समझ।
- कार्यक्रम के उद्देश्यों की सुस्पष्ट व्याख्या करने की योग्यता जो कार्यान्वयन में उपयोगी सिद्ध हो सके।
- सिद्धान्तों एवं अभ्यासों के बीच सम्बन्धों को परखने की दक्षता।
- लोगों को तथा संसाधनों को संगठित करने की योग्यता।
- मानवीय सम्बन्धों की समझ में दक्षता।
- जाँच करने की दक्षता।

कार्यक्रम नियोजन के लक्षण :- कार्यक्रम नियोजन के लक्षण निम्नवत् होना चाहिए -

- केन्द्रीय, राज्य तथा जनपदीय स्तर से प्राप्त संस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए कार्यक्रम नियोजन ग्रामीण नेता तथा प्रसार कर्मियों के भाग लेने की क्रिया पर विकसित होना चाहिए।
- जनता की अनुभूत आवश्यकताओं तथा अभिरूचि पर प्रकाश डालना चाहिये।
- सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकताओं पर प्रकाश डाल सके।
- स्थानीय, राज्य तथा केन्द्रीय आवश्यकताओं को समन्वित कर सकें।
- कार्यक्रम नियोजन में लचीलापन के साथ, स्थायित्व तथा निरन्तरता भी बनाये रखने के लिये मेरूदण्ड की तरह की भूमिका होनी चाहिये।
- इसे स्थानीय आवश्यकताओं, अभिरूचियों तथा साधनों के प्राथमिकता की व्यवस्था करनी चाहिये।
- इसके उद्देश्य लोगों के आर्थिक, सामाजिक तथा बौद्धिक क्षमता के अनुसार हों तथा कम-से-कम सरकारी सहायता की आवश्यकता हो।
- यह सन्तुलित होना चाहिये जिससे विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, आयु तथा लिंग समूहों को लाभ पहुँचा सके।
- गाँव के लोगों के लिये आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक मूल्य का महत्व होना चाहिये।
- इसमें भाग लेने वाले सभी सन्तुष्ट हो सकें।
- तकनीकी अनुसंधान की उपलब्धियाँ प्रयोग हो सकें।

- इसका विकास समझ, प्रबन्ध तथा निर्णय एवं शैक्षिक माध्यम के रूप में करना चाहिये जिसका उपयोग लोगों की सहायता के लिये इस रूप में किया जाये कि लोग ''अपनी सहायता स्वयं'' करना सीखें।

कार्यक्रम नियोजन के सिद्धान्त :- कार्यक्रम नियोजन का सिद्धान्त निम्नवत् है -

- स्पष्ट उद्देश्य हों तथा उनका समाधान हो।
- वास्तविक आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों पर आधारित हों।
- प्रजातांत्रिक आधार हो।
- सविस्तार वर्णित हो।
- शैक्षिक आधार हो।
- एक निश्चित कार्य की योजना हो।
- कार्यक्रम के मूल्यांकन का आधार हो।
- वैज्ञानिक समरूपता हो।
- संस्कृति के अनुरूप हो।

कार्यक्रम नियोजकों के लिए आवश्यकताओं की अवधारणा :- आवश्यकताओं से तात्पर्य लाचारी, दरिद्रता, कष्ट आकांक्षा, माँग आग्रह, पूर्वाकांक्षित, रिक्तता, दुर्लभता, न्यूवता, स्वल्पता, अभाव तथा अनिवार्यता की दशा को इंगित करने से है। लोगों की आवश्यकताओं की प्रकृति तथा भूमिका को समझने की मान्य अवधारणाओं की जानकारी रखना आवश्यक है। ये अवधारणायें निम्नवत् व्याख्याचित की जा सकती है -

- लोगों की वास्तविक, सम्भावित, महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पहचान कार्यक्रम नियोजन प्रक्रिया द्वारा होती है। यह क्या है, क्या हो सकती है तथा क्यों होनी चाहिए के अध्ययन से ज्ञात किया जाता है। इसमें वास्तविकता क्या है, सम्भावना क्या हो सकती है तथा महत्वपूर्ण आवश्यकतायें क्या होनी चाहिए, से भी व्याख्यायित किया जा सकता है। इनके चुनाव में जिस पर कार्यक्रम को दर्शाया जाता है इन्हीं उक्त दशाओं तथा सम्भावनाओं का विश्लेषण किया जाता है। अन्तत: महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को प्राथमिकता के आधार पर चुनाव किया जाता है। इस सन्दर्भ में लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया गया विश्लेषण एवं निर्णयन ही मूलत: कार्यक्रम नियोजन कहलाता है।
- मनुष्य एक स्वतंत्र जैविक प्राणी है जो विभिन्न परिस्थितियों में रहता है और उन्हीं से सतत् अंत : सम्बन्ध बनाये रखता है। जब दोनों के बीच संतुलन बिगड़ जाता है तब संतुलन बनाये रखने की आवश्यकता महसूस की जाती है।

- वांछित दिशा में परिवर्तन के उद्देश्य से प्रेरित किए जाने के पूर्व लोगों को वास्तविक, सम्भावित तथा वांछनीय स्थिति में अन्तर का अनुभव करना आवश्यक है। साथ ही वांछनीय स्थिति को प्राप्त करने के महत्व को भी समझना होगा।
- मानवीय व्यवहार तथा वस्तु-स्थिति का कुछ प्रमाण के सन्दर्भ में ही विचार करना होगा तथा और ये प्रमाण प्राप्य, महत्वपूर्ण एवं वांछनीयता की अवधारणाओं से ही जाना जा सकता है।
- आवश्यकताओं का अर्थ क्या है, क्या हो सकता है तथा क्या होना चाहिए, की स्थिति में पाया जाने वाला अन्तर है।
- कार्यक्रम में बहुत सावधानी से ही आवश्यकताओं का चुनाव अथवा अस्वीकृति का अन्तिम निर्णय किया जाय - लोगों की आवययकताओं की पूर्ति हेतु कार्यक्रम नियोजन प्रक्रिया में बहुत से निर्णय किए जाते हैं जो वास्तविक, सम्भव तथा महत्वपूर्ण दशाओं से सम्बन्धित होते है। इसी आधार पर अंतिम रूप से कार्यक्रम में कौन विषय सम्मिलित किये जाएँ अथवा स्वीकृत किये जाएं, का निर्णय होता है। वास्तव में यही आवश्यकतायें कार्यक्रम की विषय-वस्तु बनाती हैं तथा कार्यक्रम के उद्देश्य या लक्ष्य के रूप में परिभाषित होती है जिसे एक निश्चित समय में प्राप्त करने का प्रयास होता है।
- लोगों की आवश्यकताओं को स्वरूप एवं स्तर के अनुसार वर्गीकृत किया जाये तथा इन आवश्यकताओं को जैविक, सामाजिक, शैक्षिक, मानवीय - विशिष्ट तथा उद्भूत स्वरूपों में समझा जा सकता है। सामान्यतया व्यावहारिक दृष्टि से इन आवश्यकताओं को निम्नवत् वर्गीकृत किया जा सकता है -
  - ✓ भौतिक आवश्यकतायें : भोजन, वस्त्र, मकान आदि की आवश्यकता।
  - ✓ सामाजिक आवश्यकतायें : सामाजिक स्तर, प्रेम, स्नेह की भावना से जुड़े रहने आदि की आवश्यकता।
  - ✓ पूर्णता प्रदान करने की दार्शनिक आवयकतायें : अपने को बड़ों से जुड़ने की तथा जीवन-दर्शन समझने की आवश्यकता।

कार्यक्रम नियोजन के मुख्य अंग :-कार्यक्रम नियोजन के मुख्य अंग निम्न प्रकार है-

- जनता।
- जनता की आवश्यकताऐं एवं अभिरूचियां।
- उपयोगी तकनीकी।
- शैक्षिक विधियों एवं परिस्थितियों का विश्लेषण।
- क्या करना चाहिए का निर्णय।
- कार्य का निर्धारण।
- भविष्य के लिये वांछित प्रारूप तैयार करना।

कार्यक्रम बनाने की विधि एवं अभ्यास का आधार :- लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्यक्रम नियोजन प्रक्रिया में चार मुख्य तत्वों का समावेश किया जाता है। इन तत्वों को महत्वपूर्ण सोपान भी समझा जा सकता है। विकास कार्मिको को इन तत्वों पर ध्यान देना अपेक्षित है क्योंकि ये तत्व नियोजन हेतु महत्वपूर्ण तथा व्यावहारिक है जो इस प्रकार है -

1- नियोजन प्रक्रिया में स्थानीय जनता को सम्मिलित करने की योजना हो - मूलत: ग्रामीण कार्यक्रम नियोजन एक क्षेत्र विशेष में प्राप्त किये जाने वाले महत्वपूर्ण उद्देश्यों के निर्णय की एक प्रक्रिया है। लोगों की आवश्यकताओं तथा अभिरूचियों पर आधारित कार्यक्रम के उद्देश्य का निर्णय लेना ग्रामीण विकासकर्ताओं के सम्मुख एक महत्वपूर्ण समस्या होती है। इसे दक्षता पूर्वक कैसे किया जाये, प्रत्येक पेशेवर कार्यकर्ता के सामने एक प्रश्नचिन्ह होता है। अच्छा कार्यक्रम उद्देश्य, जनता एवं सरकारी कार्मिकों के संयुक्त प्रयास से ही बन सकता है। स्थानीय जनता का ग्रामीण कार्यक्रम में योगदान संगठन के रूप में ही प्रभावी बन सकता है। अनुसंधान परिणाम से यह ज्ञातव्य है कि कार्यक्रम के लिए एक ही प्रकार का संगठन सभी परिस्थितियों में कारगर सिद्ध नहीं हो पाता।

2- कार्यक्रम नियोजन की प्रणाली/विधि- कार्यक्रम नियोजन प्रणाली का अर्थ उस प्रक्रिया/कार्यवाही करने की विधियों अथवा प्रमुख सोपान से है जो किसी क्षेत्र के लिए उपयुक्त कार्यक्रम विकसित करने में प्रयोग किये जाते हैं। इस संदर्भ में प्रसार कर्मियों के अनुभव एवं ग्रामीण विकास हेतु उपयुक्त विधियों के सम्बन्ध में शोधों से प्राप्त परिणामों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गए हैं -

   - उत्तम कार्यक्रम विकास हेतु बहुत से सोपान आवश्यक हैं।
   - स्थानीय स्थिति में दशा विशेष की प्राप्ति में प्राथमिक सोपानों का समायोजन के साथ उपयोग किया जाता है।
   - सोपानों के प्रयोग करने के उपरान्त कार्यक्रम विकास में प्रमुख सिद्धान्तों को उपयोग में लाते है।
   - प्रत्येक सोपान के कार्यान्वयन के लिए विस्तृत विधियों का प्रयोग किया जाता है जो प्रत्येक सोपान की प्राप्ति में कुछ सीमा तक बदलती रहती है।

3- कार्यक्रम नियोजन का उत्पाद/परिणाम।

4- कार्यक्रम की वार्षिक योजना।

अत: समक्ष ग्रामीण कार्यक्रम को विकसित करने हेतु उक्त आधार, दशाओं, विधियों अथवा अभ्यासों को व्याख्यायित करने में सहायक होते हैं।

कार्यक्रम नियोजन का आधार :- एक अच्छा कार्यक्रम, बहुसंख्यक लोगों की आवश्यकताओं एवं अभिरूचियों को संतुष्ट करने वाला होता है तथा उन्हें आवश्यक परिवर्तन हेतु अभिप्रेरित करता है। प्र्रभावी कार्यक्रम की शुरूआत लोगों की वर्तमान दशा के अनुसार की जाती है जो अच्छे पारिवारिक

जीवन व्यतीत करने हेतु प्रेरित करती है। प्रसार कार्यकर्त्ता के लिए कार्यक्रम नियोजन की तैयारी में पहला कदम अपने कार्य के प्रति उन्मुख होना है जिसका आधार निम्नवत् है -

- अनुभूत आवश्यकताओं पर आधारित समस्याओं का चुनाव एवं प्राथमिकतायें निर्धारित करना।
- कार्यक्रम, विशेष परिस्थिति की व्याख्या पर आधारित हो।
- उद्देश्य एवं लक्ष्य की प्राप्ति लोगों को संतुष्टि प्रदान कर सके।
- अच्छा कार्यक्रम महत्व के साथ संतुलन स्थापित करता है।
- अच्छा कार्यक्रम कार्यान्वयन के साथ स्थायी बने।
- कार्य योजना तैयार करना।
- कार्यक्रम सतत् प्रक्रिया है।
- कार्यक्रम एक शैक्षिक प्रक्रिया है।
- कार्यक्रम बनाना एक समन्वय प्रक्रिया है।
- कार्यक्रम नियोजन प्राप्त परिणामों के मूल्यांकन हेतु अवसर प्रदान करता है।

कार्यक्रम नियोजन के सोपान या विधियाँ :- कार्यक्रम को नियोजित करने तथा उसे सफलतापूर्वक सम्पादित करने में निम्न सोपानों से गुजरना पड़ता है -

1- तथ्यों का एकत्रीकरण।
2- परिस्थितियों का विश्लेषण।
3- समस्याओं की पहचान।
4- उद्देश्यों का निर्धारण।
5- कार्य योजना का विकास।
6- योजना कार्य सम्पादन।
7- प्रगति का मूल्यांकन।
8- पुनर्विचार।

इसमें क्रमश: चार सोपान कार्यक्रम को नियोजित करने में तथा शेष चार सोपान कार्यक्रम के क्रियान्वयन में सहायक होते हैं।

प्रसार कार्यक्रम नियोजन प्रक्रिया :- प्रसार कार्यक्रम नियोजन एक निरन्तर प्रक्रिया है। इसलिये यह न्यायसंगत है कि प्रथम सोपान से चलें और अन्तिम सोपान तक (बिना किसी सोपान के अन्तराल) पहुंचे। प्रसार कार्यक्रम नियोजन प्रक्रिया निम्न प्रकार है :-

1- तथ्यों का एकत्रीकरण - यह कार्य आधारशिला की भाँति है जिस पर सामुदायिक नेता तथा समूह समिति कार्यक्रम की रचना तथा कार्यान्वयन करते है। इसका उत्तरदायित्व 'परिवर्तन अभिकर्त्ता' (प्रसारकर्त्ता) पर है वह तथ्यों को एकत्र कर सामुदायिक नेता के प्रयोग हेतु प्रस्तुत करे। तथ्य स्थानीय दशाओं में प्राप्त नतीजों, अनुभवों पर आधारित हो। इससे लागों मे विश्वास उत्पन्न होगा और कार्यक्रम की आधारशिला मजबूत होगी। इन तथ्यों का एकत्रीकरण प्रतिदिन प्रसारकर्त्ता अपनी डायरी में किया करें

जिसमें अन्तिम रूप से कार्यक्रम रजिस्टर में दर्ज किया जा सके। इसके अतिरिक्त तथ्यों को रेवेन्यू बोर्ड, पंचायत समिति रिकार्ड, स्थानीय समाचार-पत्रों या मैगजीन द्वारा, व्यक्तिगत भ्रमण द्वारा प्राप्त तथ्य, प्रदर्शन अभिलेख, सर्वेक्षण, नेताओं की आख्या द्वारा, कॉन्फ्रेंस, मीटिंग या अन्य और स्त्रोतों से तथ्यों को एकत्र करते है। ये तथ्य समस्या सन्दर्भ से सम्बन्धित होने चाहिए।

2- परिस्थिति विश्लेषण - स्थानीय तथ्यों के एकत्रीकरण के पश्चात् उसका विश्लेषण इस प्रकार हो कि पता चल सके कि ये तथ्य व्यक्तिगत स्तर के लिये अथवा सामुदायिक स्तर पर लाभकार होंगे। इन तथ्यों का प्रस्तुतीकरण स्थानीय भाषा में हो जिससे सभी लोग अवगत हो सकें। तथ्यों का प्रस्तुतीकरण तार्किक, न्यायसंगत तथा अनुभवों के आधार पर हो। इसके लिये प्रसारकर्त्ता विशेषज्ञों तथा समिति के अनुभवी किसानों की मदद लेते हैं।

3- समस्या की पहचान - तथ्यों का एकत्रीकरण तथा तार्किक विश्लेषण स्पष्ट रूप से परिस्थिति का बोध करा देते हैं। इससे लोगों में रूचियाँ पैदा होती हैं जिससे वे वास्तविक समस्याओं, आवश्यकताओं तथा संसाधनों की खोज करने में समर्थ हो जाते है। इससे कमियों तथा समस्याओं के स्वरूप का भी पता लग जाता है।

4- उद्देश्यों का निर्धारण - लक्ष्यों की अभिव्यक्ति ही उद्देश्य है जिसके लिये प्रयास की दिशा निर्धारित होती है। उद्देश्य का एक निश्चित अर्थ होता है। उद्देश्य तक पहुंचने हेतु किये जाने वाले प्रयास में अत्यधिक विचार और नियोजन की आवश्यकता पड़ती है। किसी निश्चित योजना या कार्यक्रम की सफलता या विफलता उद्देश्य की प्राप्ति पर निर्भर करती है। उद्देश्य की सफलता दूसरे कार्यों को प्रभावित करती है और जिसका संचयी प्रभाव परियोजना की उपलब्धियों पर पड़ता है। जैसे - एक किसान अपना उद्देश्य यह बनावें कि उसे 50 कुन्टल प्रति हेक्टेयर गैहुँ की उपज लेना है और यदि वह फसल न हो सकी तब इसका प्रभाव उस क्षेत्र के कुल गैहुँ उत्पादन पर पड़ेगा और अन्तत: राष्ट्रीय आय प्रभावित होगी। यदि अधिकतर किसान अपने वांछित उद्देश्य गैहुँ की उपज बढ़ाने में असफल हुए तब इसका संचयी प्रभाव क्षेत्र में गैहुँ की उपज पर पड़ेगा।

5- कार्य योजना का विकास - कार्य योजना प्रसार कार्यक्रम की विभिन्न समस्याओं के समाधान की विधि की एक निश्चित रूपरेखा है। इस प्रकार की योजना उन विभिन्न कार्यों को निश्चित करती है जिन्हें होना है। वे साधन, वे विधियाँ तथा वे योजना के विशिष्ट कार्य जिन्हें उद्देश्यों की पूति हेतु सम्पादित करना है। कार्य योजना का सविस्तार लिखित विवरण होना चाहिये। इसमें कार्यक्रम की विभिन्न अवस्थाओं के लिये शिक्षण निर्देशन होना चाहिये। यह सामाजिक लोगों तथा प्रसारकर्त्ता के लिये रूपरेखा का कार्य करें । सामान्यताया कार्य योजना एक वर्ष के लिये होती है इसलिये इसे 'वार्षिक कार्य योजना' कहते हैं । कार्य योजना को विकसित करते समय प्रसारकर्मी, स्थानीय नेताओं तथा उपयुक्त विषय-विशेषज्ञों को सम्मिलित किया जाना चाहिये।

6- वार्षिक कार्य योजना तैयार करना - सामान्यतया दीर्घकालीन कार्यक्रम की विभिन्न गतिविधियों से सम्बन्धित संचालित किये जाने वाले कार्यों के लिए विधि की निश्चित रूपरेखा तैयार करना ही वार्षिक कार्य योजना है। इसमें स्पष्ट रूप से उपयोग किये जाने वाले साधन एवं विधियाँ इंगित होनी चाहिए। इसका मुख्य कार्य वर्षभर में सुनियोजित ढंग से विकास कार्यक्रमों को संचालित करने के

लिए सही दिशा-निर्देशन करना है। वार्षिक कार्य योजना बनाते समय क्या, कहाँ, कैसे तथा किसके द्वारा का समायोजन होना चाहिये। जैसे - 'क्या' का अर्थ विभिन्न क्रिया-कलाप, 'कहाँ' से तात्पर्य किस स्थान पर, 'कब' का आशय तिथि, महीना तथा समय से है, 'कैसे' का मतलब किन सार विधियों द्वारा तथा 'किसके द्वारा' का अर्थ उत्तरदायी व्यक्तियों से है। इसके अतिरिक्त उन सभी संगठनों; जैसे स्थानीय संगठनों, संस्थाओं दलो तथा नेतृत्व को भी सम्मिलित करने की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिये जो कार्यक्रम में सम्मिलित किये जाने हैं। साथ ही साथ उपलब्ध साधन; जैसे कार्यकर्ता की कुशलता, धन, प्रसार शैक्षणिक साधन तथा स्थानीय एवं सरकारी सहायता का भी विधिवत अनुमान कर लेना अपरिहार्य है उपर्युक्त सभी तथ्यों पर विचार-विमर्श के पश्चात् कार्यक्रम योजना की संक्षिप्त परन्तु स्पष्ट कई प्रतिलिपि तैयार कर लेना चाहिये। इस प्रकार की लिखित कार्यक्रम योजना का ब्यौरा बाद में मूल्यांकन में सहायक सिद्ध होता है।

7- योजना कार्य सम्पादन - जब कार्य नियोजित हो जाता है और कार्य योजना विकसित कर ली जाती है तब यह समझा जाता है कि कार्यक्रम सम्पादन हेतु आधार तैयार हो गया है। कार्य सम्पादन में सर्वप्रथम प्रसार सेवा के अन्तर्गत दूसरी एजेन्सी तथा संगठनों का समन्वय हो; योजनाबद्ध पंचांग के क्रियाकलापों तथा घटनाओं का अनुपालन हो। सुनियोजित ढंग से विविध उपयुक्त शैक्षिक तकनीके, विधियों तथा सामग्रियों का उपयोग हो। विषय-वस्तु उद्देश्यों की प्राप्ति के उपयुक्त हो और सम्बन्धित लोग शिक्षण योजना में सुनियोजित ढंग से उपयोग किये जायें। कार्य सम्पादन में स्वीकृत उत्तरदायित्व निभाने के लिये नेताओं को समुचित सहायता एवं प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

कार्यक्रम कार्यान्वयन की योजना में भाग लेने वाले प्रसारकर्मी, दूसरे पेशेवर लोग तथा स्थानीय जनता को अपने उत्तरदायित्व का अनुपालन करना चाहिये। निर्णयानुसार ही योजना कार्य सम्पादन होना चाहिये। आवश्यक परिर्वतन नहीं करना चाहिये। यदि समायोजन करना है तो पुनर्मूल्यांकन , पुनर्नियोजन तथा निर्णय के आधार पर हो और वह सभी सम्बन्धित लोगों द्वारा मान्य हो।

14.3 कार्यक्रम मूल्यांकन

परिभाषा : प्रसार कार्यक्रमों के अधीन प्रशिक्षित कृषकों के व्यवहार परिवर्तनांक निर्धारण प्रक्रिया को ही प्रसार शिक्षा-मूल्यांकन कहते है। कार्यक्रम मूल्यांकन को निम्नवत् परिभाषित किया है -

- क्लीनवर्ग के अनुसार - प्रशिक्षार्थियों पर किसी कार्यक्रम का इसके दौरान तथा इसके बाद क्या प्रभाव पड़ा तथा होने वाले परिवर्तनों में इस कार्यक्रम का क्या योगदान रहा यह जानकारी ही मूल्यांकन हैं।
- एल. मोस के अनुसार - एक पूर्व निर्धारित उद्देश्य प्राप्ति की दिशा में पाई गयी सफलता का नाप ही मूल्यांकन है।
- जहोदा एवं वारनीत के अनुसार - ऐसी प्रक्रिया जिससे प्रशासक अपने कार्यक्रम के प्रभावों का उल्लेख कर सकता है, साथ ही अपने लक्ष्य को अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त करने के लिए कार्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन कर सकता है।

मूल्यांकन के उद्देष्य :- प्रसार कार्य में, मूल्यांकन का प्रथम उद्देश्य इस बात का पता लगाता है कि हम प्रसारकर्त्ता की हैसियत से अधिक-से-अधिक कैसे प्रभावी हो सकते हैं ? हम पूरे कार्यक्रम का मूल्यांकन करते हैं तथ अधिकांश हिस्से का पता लगाते हैं कि कार्यक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त करने में किस सीमा तक सफलता मिली है। कार्यक्रम मूल्यांकन के मुख्य उद्देष्य निम्न प्रकार है-

- प्रगति के सबूतों को एकत्र करना।
- समय-समय पर प्रगति की दिशा ज्ञात करना।
- प्रसार शिक्षण विधियों का चुनाव करना।
- कार्यक्रमकर्त्ताओं तथा नेतृत्व में विश्वास विकसित करना।
- कार्यक्रम के विभिन्न चरणों में प्रशिक्षण योजना तैयार करना।
- वैज्ञानिकों की सुरक्षा प्रदान करना।

मूल्यांकन का महत्व :- मूल्यांकन प्रसार शैक्षिक क्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। मूल्यांकन प्रक्रिया के द्वारा ही निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है जो निर्णय लेने में सहायक होता है। विभिन्न शब्दों को स्पष्ट करने में भी मदद मिलती है। विभिन्न विकल्पों में चुनाव करना निर्णय कहलाता है तथा विकल्पों का मूल्य निर्धारण करना मूल्यांकन कहलाता हैं जो वर्तमान कार्यक्रम को पुनर्निदेशन, पुनर्महत्व तथा निरन्तर करने या नए कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता पर निर्णय लेने में मदद करती है। इस प्रकार मूल्यांकन सभी शिक्षण कार्यक्रम नियोजन का आवश्यक एवं अभिन्न अंग है तथा मूल्यांकन के मुख्य महत्व निम्न प्रकार से है -

- मूल्यांकन सघन प्रयास हेतु आवश्यकताओं की पहचान के लिये आवश्यक है।
- कार्य सुधार हेतु सुदृढ़ आधार के लिये मूल्यांकन विश्लेषण आवश्यक है।
- विवेकपूर्ण तथ्यों का प्रस्तुतीकण जनता में विश्वास उत्पन्न करता है।
- इससे सम्बन्धित लोगों में विश्वास उत्पन्न होता है।
- प्रयुक्त शिक्षण विधियों तथा सामग्रियों की उपयोगिता निर्धारण में मदद मिली है।
- शिक्षण योजना में उत्तम साधनों एवं सामग्रियों के चुनाव में सहायक होता है।
- प्रसारकर्त्ता द्वारा उद्देश्यों को स्पष्ट करने हेतु प्रसार शिक्षण के लिये दिशा-निर्देशन करता है।

मूल्यांकन का उचित समय :- वैसे तो कार्यक्रम के अन्त में मूल्यांकन सभी स्तरों पर एक साथ ही होता है । फिर भी कुछ मामलों में कार्य योजना प्रक्रिया विकसित करते समय ही सभी स्तर पर मूल्यांकन करना अच्छा होता है, कोई आवश्यक नहीं है कि उद्देश्यों के मूल्यांकन हेतु कार्यक्रम के अन्तिम नतीजों का इन्तजार किया जाये; पूर्व मूल्यांकन से समायोजन का अवसर मिल जाता है जिनसे सफलता की प्राप्ति प्रभावशाली ढंग से होती है। मूल्यांकन कार्यक्रम के अन्त में या निरन्तर प्रक्रिया रूप में हो किन्तु संस्था द्वारा मूल्यांकन की व्यवस्था कार्यक्रम नियोजन तथा कार्यक्रम क्रियान्वयन दोनों अवस्थाओं पर हो।

सूचनायें एकत्रित करना :- मूल्यांकन हेतु आवश्यक सूचनायें विभिन्न तैयार प्रमाण प्रलेखों; जैसे लिखित प्रलेख, अभिलेख तथा आख्यान इत्यादि। प्रमाण प्रलेख इस ढंग से तैयार किये जायें जिससे मूल्यांकन के लिये महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त हो सकें। जो लोग कार्यक्रम से प्रत्यक्ष सम्बन्धित हैं उनसे भी सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। सूचनाएँ प्रसार-कर्मियों, समिति के सदस्यों तथा स्थानीय नेताओं से मौखिक या लिखित रूप में प्राप्त की जा सकती है।

स्वीकृति तथ्य एकत्रित करने के तरीके :- स्वीकृति तथ्य एकत्रित करने के तरीके निम्न प्रकार है-

- व्यक्तिगत भेंट करना।
- समूह भेंट करके।
- डाक द्वारा प्रश्नोत्तर प्राप्त करना।
- मत व्यक्त हेतु प्रश्नोत्तर तथा जाँच पत्र उपयोग में लाना।
- निरीक्षण के क्रमबद्ध तरीके से।
- कारणों का अध्ययन करके।
- टेपरिकार्डर द्वारा भेंट वार्तालाप द्वारा।
- प्राप्त ज्ञान तथ्यों का अध्ययन करके।

कार्यक्रम मूल्यांकनकी विधियाँ :- प्रसार शिक्षा में मूल्यांकन की निम्न विधियाँ हैं -

1. स्वयं मूल्यांकन - प्रसारकर्त्ता अथवा संस्था द्वारा।
2. राजकीय संस्थाओं द्वारा मूल्यांकन - कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (पी. ई. ओ.)।
3. तदर्थ समिति द्वारा मूल्यांकन।
4. विश्वविद्यालय द्वारा मूल्यांकन।
5. व्यक्तिगत अध्ययन (छात्रों व शिक्षकों द्वारा)।

कार्यक्रम मूल्यांकनसंगठन :- ग्रामीण विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों के सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन कार्य हेतु भारत सरकार ने 1952 में योजना आयोग के अधीन कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (पी. ई. ओ.) की स्थापना की। इस संगठन ने 1953 में अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन के कुछ विशेष कार्य निम्न है -

- कार्यक्रमों के उद्देश्यों की दिशा निश्चित करने के लिये योजनाओं द्वारा की गई प्रगति का सही मूल्यांकन करना।
- कार्यक्रम की सफलता हेतु प्रभावकारी विधियों को सुझाना व प्रभावहीन विधियों की कमजोरियों को स्पष्ट करना।
- सामुदायिक योजनाओं के प्रभाव का ग्रामीण सामाजिक, आर्थिक पहलुओं पर मूल्यांकन करना अथवा लाभार्थियों के सामाजिक, आर्थिक जीवन पर योजनाओं के प्रभाव का विश्लेषण करना।
- विभिन्न परिस्थितियों एवं स्थानों हेतु उपयुक्त कार्यो एवं प्रयोगों को सुझाव देना।

प्रसार कार्यक्रम की मूल्यांकनप्रक्रिया :- हम कितना अच्छा कर रहे हैं ? हम क्या करने की कोशिश कर रहे है ? वास्तव में हमने क्या प्राप्त किया ? कौन-सी प्रसार विधि सबसे अधिक प्रभावी रही ? कुछ कम क्यों प्रभावी रही ? भविष्य में कार्यक्रम नियोजन प्रक्रियाओं को हम कैसे बेहतर बना सकते हैं ? बहुधा ये प्रश्न प्रसारकर्ता के मस्तिष्क में आते हैं। ऐसी प्रक्रिया जो कार्य कैसा कर रहे हैं अथवा करने की कोशिश कर रहे हैं, का निर्धारण करे, मूल्यांकन कहलाती है। हम मूल्यांकन सदैव ही करते रहते हैं। जब भी हम कुछ करते है तो सोचते हैं कि हमने कैसा किया और करने को क्या निर्धारित किया था ? पूर्व निर्धारित उद्देश्यों से सम्बन्धित साक्ष्यों को देखते हैं तब हम एकत्रित साक्ष्यों के आधार पर अपने शैक्षणिक प्रयासों की गुणवत्ता का अनुमान करते है, जिसके फलस्वरूप हम शैक्षणिक कार्यक्रम के नियोजन एवं कार्यान्वयन को बेहतर करने में सक्षम हो पाते हैं।

प्रसार कार्य में, मूल्यांकन का प्रथम उद्देश्य इस बात का पता लगाता है कि हम प्रसारकर्त्ता की हैसियत से अधिक-से-अधिक कैसे प्रभावी हो सकते हैं ? हम पूरे कार्यक्रम का मूल्यांकन करते हैं तथ अधिकांश हिस्से का पता लगाते हैं कि कार्यक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त करने में किस सीमा तक सफलता मिली है।

- **कार्यक्रम सुधार -** मूल्यांकन शैक्षणिक प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। इस प्रक्रिया में यह सुधार लाता है। मूल्यांकन द्वारा शैक्षणिक प्रयासों को सुधारने हेतु उन सभी तरीकों का पता लगाते है।
- **कार्यक्रम सम्पूर्णता -** किसी भी कार्य अथवा क्रिया कलाप की सफलता निर्धारित करने में मूल्यांकन मदद करता है। मूल्यांकन द्वारा शैक्षणिक प्रयासों की भी सफलता निर्धारित की जाती है।
- **जनता के समक्ष आख्या प्रस्तुत करने में -** जनता के समक्ष वास्तविक सूचना की आख्या प्रस्तुत करने में मूल्यांकन सहायक होता है। प्रसार कार्यक्रम के बारे में समुदाय के संगठनों, व्यक्तियों व पेशेवर समूहों को बराबर सूचना देने की आवश्यकता की पूर्ति होती रहती है; इसके माध्यम से सरकार जनता को कार्यक्रमों से प्रभावित कर सकती है।
- **व्यावसायिक वृद्धि -** मूल्यांकन द्वारा ज्ञान वृद्धि होती है। हम सीखते हैं कि हम जिनके साथ कार्य करते हैं वह हमें एक प्रकार से चुनौती देता है। हम कैसा कर रहें हैं, इसके निमित्त पेशेवर की हैसियत से निर्देशन सिद्धान्त प्रदान करता है।
- **पेश की सुरक्षा -** मूल्यांकन द्वारा जो नतीजे प्राप्त होते हैं उनसे हमें सन्तुष्टि मिलती है, सफलता का भान होता है तथा प्रसार कार्य में आत्मविश्वास प्राप्त होता है। इससे सहयोगियों, नेताओं तथा अन्य कर्मचारियों को भी सन्तुष्टि होती है।
- **प्रभावी कार्य शैली -** मूल्यांकन, प्रसारकर्मी की हैसियत से एक साथ कार्य करने का अवसर प्रदान करता है जिससे शैक्षणिक कार्यक्रम की प्रभाविकारिता निर्धारित होती है।

- **हम क्या मूल्यांकन कर सकते हैं ? -** प्रसार शैक्षणिक कार्यक्रम के तहत मूल्यांकन का कहाँ समावेश हो सकता है ? मूल्यांकन प्रसार कार्य के सभी पहलुओं का एक अभिन्न अंग है। मूल्यांकन में केवल हमारे कार्यो की प्रगति का ही मापन नहीं है बल्कि परिणाम प्राप्त करने की दिशा में लगे सभी क्रियाकलापों का विश्लेषण भी सम्मिलित है। निम्नलिखित को मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है -

1. कार्यक्रम नियोजन 2. कार्यक्रम कार्यान्वयन 3. कार्यक्रम का परिणाम

सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य कार्यक्रम के सभी पहलुओं की प्रभावकारिता का निर्धारण करना है। यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण बात है कि कार्यक्रम के कार्यान्वयन के बाद ही केवल मूल्यांकन करना है तो यह अधूरी बात है क्योंकि कार्यक्रम की सफलता या असफलता कार्यक्रम के नियोजन व कार्यान्वयन पर भी निर्भर करती है। इसलिये तीनों स्थितियों पर प्रसार कार्यक्रम का मूल्यांकन होना चाहिये।

कार्यक्रम नियोजन का मूल्यांकन:- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विकास तथा प्रसार कार्य को बढ़ावा देने के साथ ही प्रसार कार्यक्रम के वैज्ञानिक नियोजन की आवश्यकता पड़ने लगी है। यह प्रश्न प्रसारकर्त्ता के लिये महत्वपूर्ण हुआ जब प्रभावकारी प्रसार कार्यक्रम के विकास में कार्यक्रम नियोजन एक आवश्यक अंग के रूप में समझा जाने लगा; इसके लिये प्रमाणों की सूची बनाने में शोध कार्यों से प्राप्त परिणामों तथा प्रसारकर्ताओं के महत्वपूर्ण अनुभवों को भी उपयोग में लाया जाने लगा। ये प्रमाण कार्यक्रम नियोजन करने में अपनाई गई विधियों से तुलना करने में आदर्श का काम करते हैं। प्रमाणों के तीन सामान्य स्तर है; जैसे - समिति का संगठन, समिति का कार्य तथा कार्य की वार्षिक योजना का सुझाव।

कार्यक्रम कार्यान्वयन का मूल्यांकन:- प्रसारकर्ता की हैसियत से बैठकर यह सोचना कि बैठक कैसी रही ? प्रसार कार्यक्रम के कार्यान्वयन के विशेष पहलू के मूल्यांकन की दिशा में प्रसारकर्त्ता की सजग सक्रियता दर्शाती है। बैठक वास्तव में अच्छी रही, इसके लिये किस प्रकार का साक्ष्य प्रयोग किया गया ? यदि ध्यान दें तो निश्चिय ही बैठक के दौरान लोगों की अभिरूचियों का बना रहना ही एक आधार प्रमाणित होगा। बैठक समाप्त होने पर लोगों का देर तक रूकना तथा समूहों में आपसी चर्चा करना ही प्रमुख कारण सिद्ध होगा। बैठक के बारे में क्या बातें सिद्ध हुई - इन क्रियाकलापों का अवलोकन ही साक्ष्य के रूप में प्राप्त होगा जो बैठक के गुण-दोष के निर्णय में उपयोग किय गये।

मूल्यांकन में साक्ष्यों का एकत्रित करना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि प्रसार कार्यक्रम का कार्यान्वयन ही सफलता नहीं होती। कार्यक्रम के क्रियान्वयन में हम क्या कर रहे हैं, इसका निर्धारण करने हेतु वैध, विश्वसनीय एवं उद्देश्यपूर्ण साक्ष्य को एकत्रित करते हैं। प्रसार कार्यक्रम में मूल्यांकन का औचित्य बहुधा लोग कार्यक्रम समाप्ति के बाद ही मानते है। प्रसार कार्यक्रम का कार्यान्वयन नियोजित क्रियाकलापों की क्रियान्वयन प्रक्रिया द्वारा होती है जिसमें कार्य योजना में विशेष सीख अनुभव सम्मिलित होते हैं। ये सीख अनुभव विभिन्न शिक्षण-विधियों व तकनीकों (जैसे प्रदर्शन, बैठक, रेडियो तथा दूरदर्शन वार्ता, समाचार-पत्र, लेख तथा व्यक्तिगत सम्पर्क आदि) द्वारा प्राप्त होते हैं। उपलब्ध साहित्य से प्रमाणों की निम्नवत् सूची तैयार की गई है जो कार्यक्रम क्रियान्वयन की प्रभावकारिता का मापन करती हैं -

- प्रसारकर्त्ता द्वारा स्वयंसेवी स्थानीय नेताओं का प्रशिक्षण जिससे वे अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकें।
- कार्यक्रम क्रियान्वयन में उपयुक्त समूह तथा संगठनों का समन्वय एवं सहभागिता।
- कार्यक्रम के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विषय-वस्तु का उपयुक्त होना।
- प्रत्येक कार्यक्रम उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु समन्वित एवं एकीकृत विधियों का विकास।
- प्रशिक्षित किये जा रहे लोगों के शैक्षित स्तर के अनुसार विषय-वस्तु के प्रस्तुतीकरण हेतु विधियों एवं सामग्रियों का इस्तेमाल।
- विषय-वस्तु प्रस्तुतीकरण में प्रयुक्त श्रव्य-दृश्य सामग्रियाँ सुस्पष्ट, चुस्त तथा प्रभावी हों।
- कार्यक्रम क्रियान्वयन में क्षेत्रीय तथा उच्चस्तरीय कर्मचारी अपनी-अपनी जिम्मेदारी का निष्ठापूर्वक निर्वाह करें।
- कार्यक्रम क्रियान्वयन में मानवीय तथा भौतिक संसाधनों का उपयुक्त उपयोग।

कार्यक्रम नियोजन में विभिन्न संगठनों की सहभागिता :

कार्यक्रम नियोजन के लिये उत्तरदायी परिषद् या समिति आवश्यक रूप से ग्राम स्तर पर स्वैच्छिक संख्याओं तथा प्रसार संगठन का समन्वय अवश्य करें। विभिन्न स्तरों पर संस्थायें कार्यक्रम नियोजन का कार्य करती है। ये निम्नवत् हैं -

ग्राम स्तर पर	-	ग्राम पंचायत
|		|
ब्लॉक स्तर पर	-	क्षेत्र समिति
|		|
जिला स्तर पर	-	जिला परिषद्
|		|
राज्य स्तर पर	-	राज्य विकास परिषद् (राज्य नियोजन आयोग)
|		|
केन्द्रीय स्तर पर	-	राष्ट्रीय विकास परिषद् (योजना आयोग)

भारत में कार्यक्रम नियोजन की रूपरेखा एवं कार्य-प्रणाली : भारत में कार्यक्रम नियोजन मुख्य रूप से पाँच स्तरों पर किया जाता है -

1- राष्ट्रीय स्तर पर :- इस स्तर पर कार्यक्रम का नियोजन राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा किया जाता है। प्रधानमन्त्री इसका अध्यक्ष होता है। सदस्य के रूप में राज्य के मुख्य मन्त्री एवं योजना आयोग के सदस्य होते हैं। केन्द्रीय मन्त्री-कृषि, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, मानव संसाधन, युवक कल्याण तथा सिंचाई अपने-अपने प्रसार तथा विकास कार्यक्रमों के प्रभारी होते है। इस प्रकार से जुड़ा योजना आयोग एक महत्वपूर्ण संगठन है जो इन कार्यक्रमों का मार्गदर्शन करता है तथा पंचवर्षीय योजनाओं का

अनुमोदन करता है। इसके अलावा केन्द्रीय तथा राज्यों की परियोजनाओं की स्वीकृति प्रदान करता है। इस योजना आयोग का अध्यक्ष भी प्रधानमन्त्री एवं उपाध्यक्ष योजना मन्त्री होता है। इसके अतिरिक्त 4 पूर्णकालिक सदस्य होते हैं। इनका मुख्य कार्य विभिन्न परियोजनाओं और क्रियाकलापों की देख-रेख करना है। अत: कृषि मंत्रालय ही सामुदायिक विकास और कृषि प्रसार कार्यक्रमों की देखरेख करता है। इसके अधीन कृषि, खाद्य, सामुदायिक विकास और सहकारिता विभाग आते हैं।

कृषि विकास कार्यक्रमों को नेतृत्व तथा मार्गदर्शन देने का कार्य-कृषि आयुक्त, विभिन्न संयुक्त, निदेशक एवं विशेषज्ञ करते हैं। इसी से सम्बन्धित दो निदेशालय हैं।

- प्रसार प्रशिक्षण निदेशालय - जो विभिन्न स्तरों के प्रसार अधिकारियों के प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण देता है।
- फार्म सूचना निदेशालय - यह निदेशालय विभिन्न अनुसंधान संस्थाओं से उपलब्ध परिणाम एकत्र करता है तथा उपयुक्त रूप में केन्द्रीय एवं राज्य के कृषि के विभिन्न विभागों को उपलब्ध कराता है।

कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा का समन्वय तथा वित्तीय सहायता का कार्य भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् करता है जो कृषि मंत्रालय के कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग से संचालित होता है। इन संगठनों के अलावा अन्य मन्त्रालयों तथा तकनीकी विभागों की मदद हेतु अनेक केन्द्रीय स्तर की समितियों का गठन किया गया है।

2- राज्य स्तर पर :- राज्य स्तर के कार्यक्रमों को तैयार करने तथा विभिन्न क्षेत्रों और जनपदों हेतु लक्ष्य निर्धारित करने के लिये राज्य विकास समिति का गठन किया गया है, जिसका अध्यक्ष मुख्यमंत्री होता है और सम्बन्धित मन्त्री इसके सदस्य होते हैं। इस समिति के अतिरिक्त राज्य सलाहकार समिति होती है जो विभिन्न विकास कार्यक्रमों में समन्वयन का अतिरिक्त कार्य करती है। इस समिति के सदस्य सरकारी तथा गैर-सरकारी व्यक्ति होते हैं वैसे सर्वोच्च अधिकारी कृषि उत्पादन आयुक्त होता है, जो विभिन्न विकास कार्यक्रमों का निर्देशन, समन्वय तथा मार्गदर्शन करता है। इसके अतिरिक्त विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित अन्य विभागों से समन्वय करता है और अन्तर-विभागीय समिति की अध्यक्षता भी करता है। इनके अधीन सचिव व तकनीकी विभागों के अध्यक्ष तथा अन्य सलाहकार भी कार्य करते हैं। विकास विभाग का अध्यक्ष तकनीकी व्यक्ति होता है जो नीतियों के निर्धारण, समन्वयन व निर्देशन करने का दायितव वहन करता है। राज्य स्तरीय विकास विभाग में कृषि तथा पशु पालन, ग्राम्य विकास, पंचायत तथा सहकारिता प्रमुख हैं तथा विद्युत व सिंचाई उपविभाग भी सम्मिलित हैं।

3- जिला स्तर पर - जिला स्तर के विकास कार्यक्रमों के निर्धारण, समन्वयन तथा निर्देशन हेतु जिला विकास या जिला नियोजन समिति का गठन किया गया है। इसका अध्यक्ष जिलाधीश/उपायुक्त होता है। अन्य सदस्य के रूप में विकास विभागों के अध्यक्ष, जिला परिषद के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, स्वयं सेवी संस्थाओं के प्रतिनिधि, स्थानीय प्राधिकारी तथा क्षेत्रीय संसद एवं विधान सभा के सदस्य होते हैं। इनके अतिरिक्त विभिन्न विभागों के तकनीकी अध्यक्ष जो जिलाधीश व अपने विभाग के राज्य स्तरीय अध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

4- प्रखण्ड स्तर पर

5- ग्राम स्तर पर

14.4 सारांश

प्रसार कार्य में कार्यक्रम नियोजन एक धुरी के समान है जिस पर प्रसार सेवा आश्रित हैं क्योंकि बिना कार्यक्रम नियोजन के प्रसार कार्य दिशाविहीन रहता है। प्रसार शिक्षा का कार्य-क्षेत्र दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है इसलिये कार्यक्रम नियोजन का प्रयोग भी बढ़ता जाना स्वाभाविक है। लोगों की आवश्यकतायें क्या हैं? आवश्यकताओं की पहचान कैसे हो ? लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राथमिकताओं को कैसे निर्धारित किया जाये? आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कौन से संसाधन आवश्यक हैं? लोगों की आवश्यकता पूर्ति हेतु सहायक संसाधनों को किस प्रकार संगठित एवं निर्देशित किया जाये? ये प्रश्न ग्रामीण कार्यक्रम नियोजन हेतु समुचित औचित्य प्रदान करते हैं। जीवन के हर पहलू में कार्यक्रम नियोजन दिशा-निर्देशन देता है। इसलिये कार्यक्रम नियोजन की मदद लेकर घर, प्रक्षेत्र तथा उद्योग का विकास किया जा सकता है। इस प्रकार कार्यक्रम नियोजन का क्षेत्र व्यापक है।

इसके साथ-साथ मूल्यांकन प्रसार शैक्षिक क्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। मूल्यांकन प्रक्रिया के द्वारा ही निष्कर्ष पर पहँुचा जा सकता है जो निर्णय लेने में सहायक होता है। वर्तमान कार्यक्रम को पुनर्निदेशन, पुनर्महत्व तथा निरन्तर करने या नए कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता पर निर्णय लेने में मदद करती है। इस प्रकार मूल्यांकन सभी शिक्षण कार्यक्रम नियोजन का एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग हैं। प्रसार कार्य में, मूल्यांकन का प्रथम उद्देश्य इस बात का पता लगाता है कि हम प्रसारकर्त्ता की हैसियत से अधिक-से-अधिक कैसे प्रभावी हो सकते हैं ? हम पूरे कार्यक्रम का मूल्यांकन करते हैं तथ अधिकांश हिस्से का पता लगाते हैं कि कार्यक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त करने में किस सीमा तक सफलता मिली है।

14.5 अभ्यास प्रष्न

1 प्रसार कार्यक्रम स्थिति, उद्देश्यों, समस्याओं तथा समाधानों का प्राक्कथन कहलाता है ?

(अ) कार्यक्रम नियोजन (ब) कार्यक्रम मूल्यांकन

(स) कार्यक्रम नियोजन एवं मूल्यांकन (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

2 ऐसी प्रक्रिया जिससे प्रशासक अपने कार्यक्रम के प्रभावों का उल्लेख कर सकता है**,** साथ ही अपने लक्ष्य को अधिक प्रभावी ढंग से प्राप्त करने के लिए कार्यक्रम में आवश्यक परिवर्तन कर सकता है कहलाता है **?**

(अ) कार्यक्रम नियोजन (ब) कार्यक्रम मूल्यांकन

(स) कार्यक्रम नियोजन एवं मूल्यांकन (द) उपरोक्त में से कोई नही

3 कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन कि स्थापना कब हुई हैं **?**

(अ) **1932** (ब) **1942** (स) **1952** (द) **1962**

4 कार्यक्रम नियोजन के मुख्य अंग हैं **?**

(अ) जनता (ब) उपयोगी तकनीकी

(स) जनता की आवश्यकताऐं एवं अभिरूचियां (द) उपरोक्त सभी

5 ग्राम स्तर पर कार्यक्रम नियोजन के लिये उत्तरदायी संस्था होती हैं ?

(अ) जिला परिषद (ब) क्षेत्र समिति

(स) ग्राम पंचायत (द) राज्य विकास परिषद

उत्तर 1. (अ) 2. (ब) 3. (स) 4. (द) 5. (स)

14.6 सन्दर्भ ग्रंथ

- जे. पी. श्रीवास्तव. 2000. प्रसारिका। अमन पब्लिशिंग हाउस, मेरठ (उ. प्र.)।
- एस. आर. कांटवा, सी. एम. परिहार, जे. पी. तेतरवाल, बी. एल. जाखड़ एवं एस. वी. साई प्रसाद. 2010. कृषि विज्ञान। न्यू विशाल पब्लिकेशन, दिल्ली।
- वी. के. दूबे एवं एस. सिंह. 1985. भारत में प्रसार शिक्षा। हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़।

इकाई -15

संचार एवं प्रसार की विधियां

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 संचार के उद्देश्य
15.3 संचार की अवधारणा
15.4 संचार की प्रक्रिया
15.5 संचार में आने वाली बाधाएं
15.6 संचार की विधियां
15.7 विभिन्न संचार विधियों की आवश्यकता
15.8 सारांश
15.9 प्रसार की विधियां
15.10 प्रसार के उद्देश्य
15.11 प्रसार की अवधारणा
15.12 प्रसार की प्रक्रिया
15.13 प्रसार में आने वाली बाधाएं
15.14 प्रसार की विधियां
15.15 विभिन्न प्रसार विधियों की आवश्यकता
15.16 सही विधि का चयन
15.17 सारांश
15.18 अभ्यास प्रश्न
15.19 सन्दर्भ ग्रन्थ

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पड़ने के पश्चात आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे:

- संचार के उद्देश्य
- संचार की प्रक्रिया
- संचार में आने वाली बाधाएं

- संचार की विधियां
- प्रसार की विधियां
- प्रसार के उद्देश्य
- प्रसार की प्रक्रिया

15.1 प्रस्तावना

हम सभी अपने रोजमर्रा की जिन्दगी में संचार के महत्व को जानते हैं। संचार के साधनों के बिना अपने उद्देश्यों अथवा ध्येय व्यक्त करना मुश्किल है अर्थात स्वयं को व्यक्त करने के लिये किसी भी व्यक्ति को संचार के उपयुक्त साधनों की आवश्यकता होती है। खासतौर पर हमारी व्यवसायिक जिन्दगी जहां बहुत से पक्ष आप से जुड़े होते हैं वहां संचार के साधनों का अत्यधिक महत्व बढ़ जाता है। विभिन्न पक्ष जैसे किसान, साथी, कर्मचारी, ग्राहक, मीडिया इत्यादि से हर समय महत्वपूर्ण सूचनाएं आदान प्रदान करनी होती हैं।

इसलिये लगातार एक दूसरे को सूचनाएं आदान प्रदान करने के लिये संचार के विभिन्न साधनों का उपयोग किया जाता है। वर्तमान मे उपलब्ध विभिन्न इन संचार की विधियों के उपयोग के बिना रोजमर्रा की जिन्दगी, व्यवसाय, खेती इत्यादि में सफलता सम्भव नहीं है। इसलिये संचार के उद्देश्य तथा इसके विभिन्न तरीकों को जानना आवश्यक है। इसके साथ साथ यह जानना भी आवश्यक है कि इसकी अवधारणा व आवश्यकता क्या है, इसकी प्रक्रिया, इसमें आने वाली बाधाएं तथा सही संचार की विधि का चयन कैसे किया जाये जानना भी अत्यन्त आवश्यक है।

15.2 संचार के उद्देश्य

संचार के उद्देश्य निम्न प्रकार व्यक्त किये जा सकते हैं:

- विचारों का आदान प्रदान
- व्यक्ति की विचारों को व्यक्त करने की क्षमता में सुधार
- संचार कौशल में सुधार करना
- व्यवसाय में सुधार करना

15.3 संचार की अवधारणा

संचार की अवधारणा लोगों के मध्य सूचनाओं के आदान प्रदान करने से है। अर्थात आपस में एक दूसरे की बातों को समझना। संचार को विभिन्न विद्वानों द्वारा परिभाषित किया गया है जिनमें से कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएँ निम्न प्रकार हैं जैसे:

- न्यूमेन तथा समर के अनुसार: दो अथवा अधिक व्यक्तियों के मध्यतथ्यों, विचारों, राय अथवा भावनाओं को आदान प्रदान ही संचार है।

- एलन लूइस के अनुसार: संचार उन सभी बातों का योग है जिनकी सहायता से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के दिमाग में समझ का निर्माण करना चाहता है।
- हॉबन के अनुसार: सोच अथवा विचारों का मौखिक आदान प्रदान ही संचार है।
- बैलनसर तथा स्टीनीयर के अनुसार: प्रतीक, शब्दों, चित्रों, आकृति, ग्राफ आदि के माध्यम से सूचनाओं, विचारों, भावनाओं, कौशल आदि का आदान प्रदान ही संचार है।

इन सभी परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि संचार में निम्नलिखित विशिष्टताएं होती हैं:

- यह अपरिहार्य है: संचार न करना असम्भव है क्योंकि हम अनजाने में हर समय बल्कि बिना शब्दों के उपयोग किये बिना भी अपनी शरीर की भाषा, पहनने के तरीके, समय पर पहुंचकर, व्यवहार से, वातावरण जिसमें हम कार्य करते हैं से भी दूसरों को कुछ आवश्यक संदेशों का आदान प्रदान होता है।
- यह दोनों ओर से सूचनाओं के विनमय का तरीका है: दो अथवा अधिक व्यक्तियों के मध्य सूचनाओं का आदान प्रदान है।
- यह एक प्रक्रिया है: प्रत्येक सूचना प्रक्रिया का हिस्सा है तथा इसको अलग रखकर नहीं देखा जा सकता। अर्थात सूचना के साथ क्या जुड़ा है यह वर्तमान के परिपेक्ष्य में भूतकाल में क्या घटित हुआ है पर निर्भर करता है। उदाहारण के तौर पर आप पर किसान का विश्वास आपके व्यवहार एवं उससे आपके कैसे सम्बन्ध हैं पर निर्भर करता है।
- इसमें सूचना देने वाला एवं सूचना प्राप्त करने वाला शामिल होते हैं: कोई भी संचार सूचना देने वाले से प्रारम्भ होता है तथा इस सूचना के अर्थ को जानने के लिये सूचना प्राप्त करने वाले की आवश्यकता होती है।
- यह मौखिक अथवा गैर मौखिक हो सकता है: संचार में मौखिक अथवा लिखित शब्दों का उपयोग तो होता ही है इसके साथ ही शारिरिक भाषा के संकेत तथा चेहरे की अभिव्यक्ति से भी संचार होता है।
- संचार तभी सफल है जब सूचना देने वाले के अनुसार ही सूचना प्राप्त करने वाला व्यक्ति इसके अर्थ को समझे अर्थात सूचना प्राप्त करने वाला उस सूचना को उसी के अनुसार समझता है तथा उसको व्यक्त करता है।
- संचार परिवर्तनशील प्रक्रिया है।
- संचार से समझ में बढ़ोत्तरी होती है।

15.4 संचार की प्रक्रिया

संचार की प्रक्रिया को निम्न मॉडल से समझा जा सकता है:

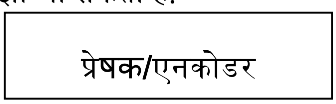

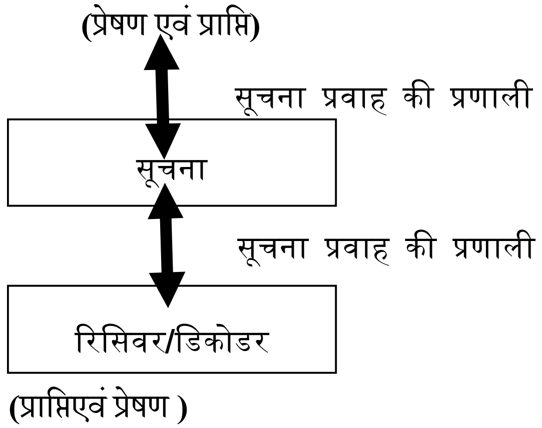

संचार में जो तत्व शामिल होते हैं वह निम्न प्रकार हैं:

प्रेषक/एनकोडर**:** वह व्यक्ति है जो सूचना प्रतिशत करता है उदाहारण के तौर पर कृषि विशेषज्ञ कृषकों के समक्ष खेती करने के आधुनिक विधियों के विषय में प्रस्तुतीकरण करता है। यहां कृषि विशेषज्ञ एक प्रेषक/एनकोडर है।

रिसिवर/डिकोडर**:** वह व्यक्ति है जो सूचना प्राप्त करता है, उक्त उदाहारण में कृषक रिसिवर/डिकोडर हैं।

सूचना**:** प्रतीक, शब्दों, चित्रों, आकृति, ग्राफ आदि के माध्यम से किया गया प्रस्तुतीकरण सूचना है।

सूचना प्रवाह की प्रणाली**:** जिस माध्यम से कृषि विशेषज्ञ से कृषकों को तथा कृषकों से कृषि विशेषज्ञ के मध्य सूचना/जानकारी का विनमय हो रहा है उसे सूचना प्रवाह की प्रणाली कहा जाता है उदाहारण के तौर पर मौखिक, पत्र, ई-मेल, टेलीफोन इत्यादि।

फीडबैक**:** आमतौर पर संचार दोनो तरफ से होता है, सूचना प्राप्तकर्ता आमतौर पर सूचना प्राप्त करने के बाद उस पर अपनी प्रतिक्रिया प्रश्न के रूप में करता है। उदाहारण के तौर पर कृषक कृषि विशेषज्ञ की राय सुनने के बाद उससे अपनी जिज्ञासा प्रतिक्रिया के रूप में कृषि विशेषज्ञ के समक्ष रख सकता है। कृषि विशेषज्ञ उसकी जिज्ञासा शान्त करने के लिये उसके प्रश्न का जवाब देगा अथवा कृषि विशेषज्ञ कृषकों की राय अथवा सलाह के आधार पर अपनी सूचना में सुधार कर सकता है तथा साथ ही सूचना देने के तरीके में भी सुधार कर सकता है।

परिपेक्ष्य**:** इससे आश्य है कि सूचना का आदान प्रदान कब किया जा रहा है तथा किस प्रकार किया जा रहा है। संचार पर भौतिक, सामाजिक, वरिष्ठता तथा सांस्कृतिक परिपेक्ष्य का काफी प्रभाव पड़ता है। अर्थात इसकी सफलता अथवा विफलता इसके परिपेक्ष्य पर काफी हद तक निर्भर करती है।

- मानलो यदि कोई गलत व्यक्ति संदेश देता है जैसे किसी संगठन में निचले स्तर का अधिकारी किसी संगठन को पत्र लिखकर किसी नीतिगत निर्णय की सूचित करता है तो यह मान्य नहीं है।
- यदि पत्र अथवा संदेश की भाषा उपयुक्त नहीं है अथवा स्पष्ट नहीं है तो भी इसका गलत प्रभाव पड़ेगा एवं भ्रम पैदा होगा।

- इसी प्रकार यदि संदेश देने का तरीका अथवा प्रणाली का चयन गलत हो जाता है तो इसका भी गलत प्रभाव पड़ेगा जैसे यदि शराब का विज्ञापन किसी धार्मिक पत्रिका में दे दिया जावे।
- कई बार संदेश प्राप्तकर्ता संदेश का गलत अर्थ निकाल लेता है तो भी संदेश का प्रभाव उलटा हो जाता है।

15.5 संचार में आने वाली बाधाएं

यदि भेजे गये संदेश का अर्थ सही रूप में लेने के बजाय उसका अर्थ गलत निकाल लिया जाता है तो इसका मतलब है कि संचार उपयुक्त रूप में नहीं हो पाया है। अथवा ऐसे बहुत से कारण अथवा कारक हैं जिनसे संदेश के आदान प्रदान में बाधाएं उत्पन्न हो जाती हैं तथा संदेश का अर्थ उलटा निकाल लिया जाता है। इनके जो कारण हो सकते हैं निम्न प्रकार दिये जा रहे हैं:

- भौतिक कोलाहल**:** विचलित करने वाली आवाज, कम आवाज, अथवा आवश्यकता से अधिक सूचना के कारण सुनने की प्रक्रिया में बाधा आती है।
- शारिरिक कोलाहल**:** सुनने अथवा अन्य अक्षमता, थकावट, अथवा शारिरिक बीमारी के कारण भी बोलने एवं सुनने में बाधा आती है।
- मनौवैज्ञानिक शोरगुल: कभी-कभी संदेश देने वाले अथवा संदेश प्राप्त करने वाले में भावनात्मक बदलाव जैसे पूर्वअवधारणा, विरोधाभाव, डर अथवा दिलचस्पी में कमी के कारण बोलने व सुनने की प्रक्रिया में बाधा आती है।

इनके अलावा कुछ और भी बहुत से कारण हैं जिनकी वजह से संदेश देने व प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न होती है वो बाधाएं निम्न प्रकार हैं:

- पर्यावरणीय बाधाएं
- व्यक्तिगत बाधाएं
- संगठनात्मक बाधाएं

संचार की सफलता के लिये इन बाधाओं को दूर करना अनिवार्य है। इन बाधाओं को दूर करने के लिये कुछ कदम उठाने आवयश्क हैं जो निम्न प्रकार हैं:

संगठनात्मक उपाय

किसी भी संगठन में उसकी कार्य क्षमता अथवा उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिये कुछ उपाय हो सकते हैं जिनको अपनाने से निश्चित तौर पर सफलता मिलेगी जिनका विवरण निम्न प्रकार है:

- फीडबैक का बढ़ावा देना**:** संगठन को कर्मचारियों से फीडबैक लेकर आपसी संचार को बढ़ावा देना चाहिए जिसके तहत प्रबन्धन को लगातार कर्मचारियों से फीडबैक प्राप्त किया जाना चाहिए तथा फीडबैक के अनुसार संगठन के प्रबन्धन में यथासम्भव सुधार करना चाहिए। अच्छा फीडबैक देने वाले को सम्मानित किया जा सकता है।

- **खुलेपन का माहौल पैदा करना:** संगठन में आपसी विश्वास तथा खुलेपन का माहौल संचार में आने वाली बाधाओं को दूर कर सकता है। सभी वरिष्ठ तथा कनिष्क कर्मचारियों को अपनी राय खुलकर देने की आजादी दी जानी चाहिए तथा राय यदि सुधारात्मक/रचनात्मक है तो उसकी सराहना होनी चाहिए जिससे वे सभी संगठन के हित में रचनात्मक राय देने में गौरान्वित महसूस करें ना कि उनके मन में कोई नकारात्मकता की कुंठा पैदा हो।
- **दोनों तरह के संचार के साधनों का उपयोग:** संगठन में दोनों तरह के संचार के साधनों जैसे मौखिक, लिखित संचार के साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। इसके तहत शासकीय/सरकारी/व्यक्तिगत आपसी औपचारिक अथवा अनौपचारिक संदेशों का आदान प्रदान करने का माहौल बनाना चाहिए जिससे कर्मचारी एक दूसरे को अच्छी तरह जान सकें तथा संगठन में रचनात्मक भूमिका निभा सकें।

व्यक्तिगत उपाय

किसी भी संगठन में संगठनात्मक उपायों के साथ-साथ व्यक्तिगत उपाय भी आवयक होते हैं जिनका विवरण निम्न प्रकार है:

- **सक्रिय रूप से सुनना:**निष्क्रिय होकर सुनना एक तरह से संचार की प्राप्ति में बाधा है। इसलिए सुनने के लिये व्यक्ति को सुनने के लिये सक्रिय होना चाहिए जिससे वक्ता जो भी संदेश दे रहा है उसके संदेश का सही अर्थ प्राप्त किया जावे। सक्रिय/अच्छा सुनने वाला बना जावे इसके लिये प्रशिक्षण आयोजित किये जा सकते हैं।
- **संदेश में स्पष्ट शब्दों का समावेश:** संदेश तैयार करते समय यह ध्यान रखा जावे कि संदेश में स्पष्ट एवं सही शब्दों का समावेश किया जावे जिससे संदेश प्राप्तकर्ता को संदेश को समझने में कोई कठिनाई न हो।
- **संचार के सही तरीके का उपयोग:** संदेश देते समय इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि संचार के किसे तरीके को अपनाया जा रहा है। उदाहारण के तौर पर संदेश यदि किसानों को दिया जाना है तो संचार का तरीका मौखिक के साथ-साथ व्यवहारिक भी होना चाहिए। अर्थात संचार के तरीके के चयन करते समय लक्ष्य समूह जिसको संदेश/जानकारी दी जानी है उसका, स्थान, परिस्थितियां आदि को ध्यान में रखकर करना चाहिए।
- **तकनीकी भाषा का समावेश नहीं करना:** संदेश बनाने एवं देते समय ध्यान में रखा जाना आवश्यक है कि संदेश में तकनीकी भाषा का उपयोग नहीं होना चाहिए तथा ध्यान रहे कि संदेश देते समय स्थानीय भाषा का उपयोग किया जाना उचित होता है।

15.6 संचार की विधियां

संदेशों के आदान प्रदान के लिये विभिन्न प्रकार के संचार के तरीके/विधियां उपलब्ध हैं जिनसे लोगों तक संदेशों का आदान प्रदान प्रभावी तरीके से किया जा सकता है जिनमें से कुछ निम्न प्रमुख हैं:

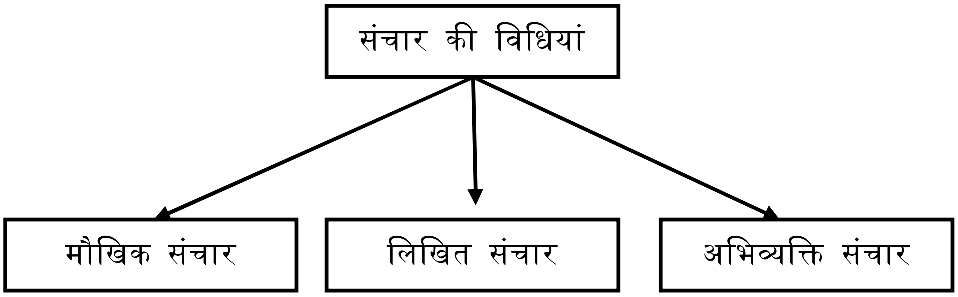

1. **मौखिक संचार विधि**

मौखिक संचार एक ऐसा संचार का तरीका है जिसका उपयोग संदेशों के आदान प्रदान में सबसे अधिक किया जाता है। भले ही साथियों के समक्ष तथा विभिन्न स्तर की बैठकों में महत्वपूर्ण आंकड़े प्रस्तुत करने हों तथा किसी विषय पर बहस करनी हो, इसके साथ ही किसानों को कृषि की उन्नत तकनीकें पहुंचाने की बात हो आमतौर पर मौखिक संचार का ही उपयोग किया जाता है। यहां यह महत्वपूर्ण है कि मौखिक संचार में अपने संदेश का लक्ष्य समूह तक पहुंचाने का कौश्ल/योग्यता अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

आमतौर पर बैठकों के समय, किसानों से बात करते समय अथवा सरकार द्वारा घोषित योजनाओं को किसानो तक पहुंचाने के लिये अथवा अन्य सूचना पहुंचाने के लिये मौखिक संचार का उपयोग करते हैं। इसमें इस बात का विशेषरूप से ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि लक्ष्य समूह संदेश के आश्य सही रूप से समझ सकें। संचार कौशल की इसमें विशेष आवश्यकता होती है।

संदेश को लक्ष्य समूह तक सही रूप में व्यक्त करना तथा इस संदेश को लक्ष्य समूह का सही तरह से समझना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिये संदेश देने वाले को ध्यान रखना होगा कि संदेश सरल एवं स्थानीय भाषा में हो तथायह भी ध्यान रखा जावे कि संदेश में तकनीकी एवं जटिल शब्दों का अधिक उपयोग नहीं किया जावे। इसी प्रकार सुनने वाला भी उसे ध्यान से सुने तथा उसके अर्थ को सही रूप में समझे तभी संचार का उद्देश्य पूरा होता है।

2. **लिखित संचार विधि**

आमतौर पर मौखिक संचार द्वारा दिये गये संदेशों का प्रभाव प्राप्तकर्ता के स्मृति में अधिक समय तक नहीं रह पाता है। इसलिये मौखिक संचार स्थायी रूप से उपयोगी नहीं होता। यदि अधिक समय तक संदेशों को स्मृति में याद रखना है तथा भवि’’य में भी इसका उपयोग करना है तो लिखित संचार विधि का उपयोग किया जाना ज्यादा उपयुक्त होता है।

लिखित संचार विधि में विस्तृत रूप से सूचनाएं जैसे आंकड़े, तथ्य आदि को विस्तार से प्रस्तुत करने होते हैं तथा उनको लक्ष्य समूह तक सही रूप में पहुंचाने होते हैं। इसके तहत सामान्यत: लिखित रूप में महत्वपूण सामग्री लक्ष्य समूह तक पहुंचायी जाती है जिससे भविष्य में इसका उपयोग किया जा सके। इसके अन्र्तगत महत्वपूर्ण दस्तावेजों में कृषि के विषय में आधुनिक तकनीकों पर प्रशिक्षण सामग्री अथवा अन्य जैसे हैण्डबुक, प्रशिक्षण सामग्री, पम्पलेट, लीफलेट, पोस्टर, पत्र, ई-मेल आदि हो सकते हैं।

विभिन्न क्षेत्रों में सूचना प्रोद्योगिकी का बड़े पैमाने पर उपयोग देखा जा सकता है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति आपस में, संगठनों अथवा कार्यालयों में, व्यक्ति संगठन से अथवा संगठन व्यक्ति से पत्राचार ई-मेल के माध्यम से किया जा रहा है। ई-मेल के जरिये सूचनाओं का संचार द्रुत गति से होता है अर्थात बिना देरी के सूचना का संचार हो जाता है। यदि प्राप्त करने वाले का उस पर कोई फीडबैक/राय/सुझाव होता है तो वह भी अपना फीडबैक/राय/सुझाव तुरन्त भिजवा सकता है। यहां यह बताना भी आवश्यक है कि इस ई-मेल के माध्यम से बड़े से बड़ा प्रिजेन्टेशन,हैण्डबुक, प्रशिक्षण सामग्री, पम्पलेट, लीफलेट, पोस्टर, पत्र आदि भी तुरन्त भिजवाया जा सकता है।

सूचना प्रोद्योगिकी के तहत वीडियों कोन्फ्रेंसिग के माध्यम से भी हजारो मील दूर बैठकर अपनी बात/संदेश/जानकारी/फीडबैक/राय/सुझाव आदि लक्ष्य समूह को भिजवायी जा सकती है। इसके अलावा किसानों को व्यवहारिक ज्ञान भी इसके माध्यम से दिया जा सकता है। इसके साथ ही खेती करने की आधुनिक तरीकों की व्यवहारिक ज्ञान वीडियो क्लिप के माध्यम से सफल कहानी के रूप में किसानों तक पहुंचाया जा सकता है।

इसके तहत लक्ष्य समूहों को अत्यधिक फायदो पहुंचाया जा सकता है अत: लिखित संचार विधि संचार के क्षेत्र में बहुत ही उपयोगी है।

3. **अभिव्यक्ति संचार विधि**

यद्यपि मुख्यत: संदेशों का संचार मौखिक अथवा लिखित अथवा दोनों के द्वारा ही किया जाता है परन्तु अभिव्यक्ति अथवा बॉडी लेंग्वेज को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। बल्कि यहां यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि मौखिक एवं लिखित संचार विधियां अभिव्यक्ति के बिना अधूरी है। जब प्रबन्धन तकनीकों की बात की जाती है तो अभिव्यक्ति अथवा बॉडी लेंग्वेज का महत्व और भी बढ़ जाता है।

जब भी अपनी बात को लक्ष्य समूह तक पहुंचाया जाता है तो चेहरे के हावभाव, मुस्कराहट, हाथों के एक्शन, आंखों की भाषण अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। संचार की सफलता बॉडी लेंग्वेज को कौशल प्रशिक्षण के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है।

भले ही मौखिक संचार करना हो अथवा लिखित संचार करना हो अभिव्यक्ति अथवा बॉडी लेंग्वेज संचार विधि से और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

15.7 विभिन्न संचार विधियों की आवश्यकता

विभिन्न संचार की विधियों की आवश्यकता क्यों है? संचार की किसी भी संगठन अथवा व्यक्ति के उत्थान में विधियों/तरीकों की प्रमुख भूमिका होती है। सूचनाओं/जानकारी/तथ्यों/आंकड़ों इत्यादि का लक्ष्य समूह तक पहुंचाना होता है जिससे इनका लाभ मिल सके। संचार के साधनों के बिना व्यक्ति अथवा संगठन की क्षमता बढ़ाना असम्भव है। अर्थात उत्पादकता बढ़ाने के लिये संचार की अत्यधिक आवश्यकता है इसके साथ ही संचार की विधि की भी अत्यन्त आवश्यकता है। किसी संगठन अथवा

व्यक्ति के पास इन्टरनेट अथवा ई-मेल की सुविधा आज के समय में एक आवश्यकता बनती जा रही है। भले ही सरकारी हो अथवा गैरसरकारी, सूचना प्रोद्यौगिकी की सुविधा से संगठन/व्यक्ति की क्षमता में और भी सुधार होता है।

सही विधि का चयन

यह महत्वपूर्ण है कि संचार की उस विधि का उपयोग किया जाना चाहिए जा अत्यधिक प्रभावी तथा उसमें लागत भी कम आवे। संचार की उपयुक्त विधि के चयन में निम्न बिन्दु अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। इनको ध्यान में रखते हुए संचार की विधियों का चयन किया जाना चाहिए।

- लक्ष्य समूह कौन है?
- इसके अन्तर्गत बजट का कितना प्रावधान है?
- क्या यह कर्मचारियों की उत्पादकता में वृद्धि करेगी?
- आमतौर पर किस तरह की सूचनाओं का आदान प्रदान किया जाता है?

इनके अतिरिक्त भी प्रश्न हो सकते हैं जिनके आधार पर संचार की सही विधि/तरीके का चयन किया जा सकता है। यहां यह बताना आवश्यक है कि कोई भी एक संचार का साधन उपयुक्त नहीं हो सकता अपितु आवश्यकता के हिसाब से अलग - अलग संचार के साधनों का उपयोग करना होगा।

15.8 सारांश

अन्त में यह कहा जा सकता है कि सूचनाएं आदान प्रदान करने के लिये संचार के विभिन्न साधनों का उपयोग किया जाता है। वर्तमान मे उपलब्ध विभिन्न इन संचार की विधियों के उपयोग के बिना रोजमर्रा की जिन्दगी, व्यवसाय, खेती इत्यादि में सफलता सम्भव नहीं है।

यदि किसी संगठन अथवा व्यक्ति ने संचार का सही तरीके का चयन नहीं किया है तो उनके आपसी रिश्ते पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा इसलिये यह आवश्यक है कि संचार की सही विधि/तरीके का चयन किया जावे।

अर्थात आवश्यकता के हिसाब से अलग - अलग उपयुक्त संचार के साधनों का उपयोग करने से किसी भी संगठन अथवा व्यक्ति की उत्पादकता/क्षमता में निश्चित ही वृद्धि होगी।

15.9 प्रसार की विधियां

प्रस्तावना

हम सभी जानते हैं कि ज्ञान तथा निर्णय लेने की क्षमता का उत्पादकता कर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है तथा कृषि के क्षेत्र में प्रसार का महत्व बढ़ जाता है क्योंकि कृषकों को कृषि के क्षेत्र में आधुनिक ज्ञान का दिया जाना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। कृषि के क्षेत्र अब तक जो भी अनुसंधान हुए हैं उनका प्रसार किसानों तक किया जाना आवश्यक है जिससे उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

यहां कृषि के क्षेत्र में प्रसार के क्या उद्देश्य, अवधारणा, इसकी प्रक्रिया, इसमें आने वाली बाधाएं, इसकी विधियां, आवश्यकता आदि की जानकारी आवश्यक है इसलिये इनका विवरण विस्तार से यहां वर्णित किया जा रहा है।

15.10 प्रसार के उद्देश्य

प्रसार के उद्देश्य निम्न प्रकार व्यक्त किये जा सकते हैं:

- समस्याओं का पता करने तथा उनकी आवश्यकताओं विश्लेषण करने में लोगों की सहायता करना।
- लोगों में नेतृत्व का विकास करना तथा समूह बनाकर अपनी समस्याओं के निवारण में उनकी सहायता करना।
- विभिन्न प्रकार के ज्ञान एवं जानकारियों को लोगों तक पहुंचाना।
- फीडबैक का संकलन तथा समस्याओं के निवारण के लिये इसको लोगों तक पहुंचाना।

15.11 प्रसार की अवधारणा

विस्तार शब्द का उपयोग सर्वप्रथम विश्वविद्यालय विस्तार प्रणाली के तहत सन् 1866 में इंग्लैण्ड में किया गया था। यहां से इस शब्द को सर्वप्रथम केम्ब्रिज तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयों द्वारा लिया गया तथा तत्पश्चात इंग्लेण्ड एवं अन्य देशों के संस्थानों में इसका उपयोग किया गया।

प्रसार को विभिन्न विशेषज्ञों/विद्वानों ने अलग- अलग तरह से परिभाषित किया है जो निम्न प्रकार है:

इतिहास के अनुसार प्रसार का अर्थ ग्रामीण लोगों के लिये कृषि तथा घरेलू आर्थिक मामलों में शिक्षा देना है। अर्थात कृषि तथा घरेलू आर्थिक मामलों में सुधार के लक्ष्य के साथ व्यवहारिक शिक्षा देना है।

एन्समिन्गर **(1957)** के अनुसार प्रसार एक शिक्षा है तथा इसका उद्देश्य लोगों के उस रूख एवं उनकी क्रियाओं में बदलाव लाना है जिनके द्वारा कार्य किया जाता है।

जीवन में निरन्तर सुधार के लिये प्रसार को लोगों की क्षमता के विकास के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

प्रसार की अवधारणा निम्न आधारभूत बातों पर निर्भर करती है:

- लोगों में व्यक्तिगत प्रगति एवं विकास की अपार सम्भावनाएं हैं।
- यदि सीखने का उपयुक्त अवसर दिया जावे तो लोगों के जीवन में किसी भी स्तर पर सुधार/विकास किया जा सकता है।
- लोग सिर्फ सीखने के लिये नहीं सीखते हैं बल्कि नये आयामों एवं उन्नति के लिये उनको प्रेरित किया जाता है।
- इस तरह की सीख खास तौर पर गांव के लोगों को दिया जाना बहुत ही महत्वपूर्ण है।
- आवश्यक ज्ञान एवं कौशल देने से लोगों की क्षमता में वृद्धि होती है।

15.12 प्रसार की प्रक्रिया

प्रसार शिक्षा एक भागीदारी की प्रक्रिया है जिसके पांच आवश्यक एवं एक दूसरे से जुड़े हुए चरण हैं। इन चरणों का क्रम लीगन्स (1967) द्वारा विकसित की गयी अवधारणा के आधार पर निम्न प्रकार वर्णन किया जा रहा है:

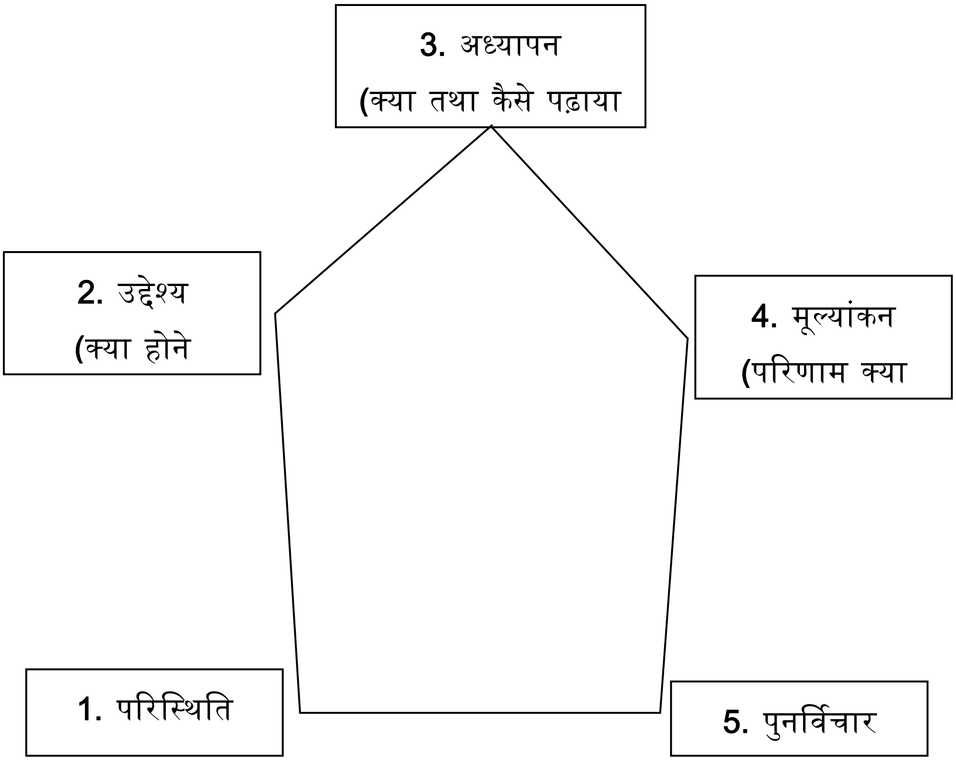

उक्त से स्पष्ट है कि प्रथमत: सूचनाओं एवं तथ्यों का संकलन कर परिस्थितियों का विश्लेषण किया जावे। द्वितीय चरण में उद्देश्य क्या होने चाहिए का निर्धारण आवश्यक है। तृतीय चरण में निर्धारित उद्देश्यों के अनुसार अध्यापन किया जाना चाहिए जिससे लोगों को जानकारी/शिक्षा दी जा सके। शिक्षा देने के उपरान्त इसका मूल्यांकन चतुर्थ चरण में किया जाना चाहिए कि अध्यापन का परिणाम क्या रहा अर्थात जिन उद्देश्यों को लेकर चले थे वे पूरे हुए अथवा नहीं यदि नहीं अथवा आंशिक रूप से उद्देश्यों की पूर्ति हुई है तो इस पर पुनर्विचार किया जाना उचित होगा।

15.13 प्रसार में आने वाली बाधाएं

संचार के समान ही प्रसार में भी बाधाएं आना स्वाभाविक है यदि प्रसार का सही तरीका नहीं अपनाया जाता है तथा साथ ही प्रसार की यदि सामग्री की गुणवत्ता अच्छी नहीं है तो भी प्रसार का उद्देश्य पूरा नहीं सकता।

प्रसार की सामान्य बाधाएं जैसे अपर्याप्त प्रशिक्षण एवं वित्तीय उपलब्धता, संचार कौशल की कमी, प्रेरणा की कमी, तथा प्रशासनिक ढ़ांचे तथा प्रसार सेवाओं में कमियों के कारण प्रसार में बाधाएं आती हैं।

इन बाधाओं को दूर करने के लिये पर्याप्त प्रशिक्षण एवं वित्तीय उपलब्धता होनी चाहिए, संचार करने का कौशल/कुशलता होनी चाहिए, उत्साही व्यक्तियों का चयन करना आवश्यक है, तथा संगठन का प्रशासनिक ढ़ांचा तथा प्रसार सेवाओं पर्याप्त होनी चाहिए जिससे लक्ष्य समूह तक तकनीकों का आसानी से प्रसार किया जा सके।

15.14 प्रसार की विधियां

संदेशों के आदान प्रदान के लिये विभिन्न प्रकार के संचार के तरीके/विधियां उपलब्ध हैं जिनसे लोगों तक संदेशों का आदान प्रदान प्रभावी तरीके से किया जा सके जिनमें कुछ निम्न प्रकार हैं:

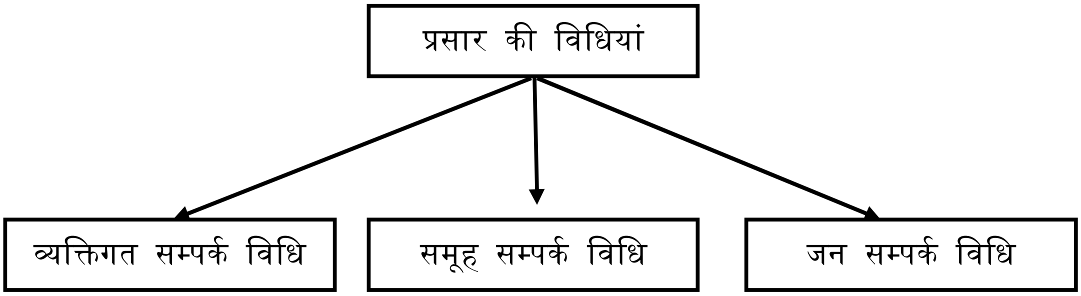

1. **व्यक्तिगत सम्पर्क विधि**

इसमें प्रसार कार्यकर्ता लोगों से व्यक्तिगत सम्पर्क करता है तथा लोगों को व्यक्तिगत जानता है। यह विधि तभी अपनायी जाती है जब लोगों की संख्या कम होती है तथा प्रसार कार्यकर्ता से इनकी दूरी भी कम होती है। उदाहारण के तौर पर खेत एवं घर पर मुलाकात, किसान को बुलाना, व्यक्तिगत पत्र, ग्राहय अथवा मिनिकिट परीक्षण तथा फार्म क्लीनिक आदि।

व्यक्तिगत सम्पर्क विधि के लाभ:

- प्रसार कार्यकर्ता से घनिष्ठता बनाने में अधिक सहायक है।
- खेत एवं परिवार की प्रथम जानकारी प्राप्त करने में सहायक है।
- स्थानीय नेतृत्व के चयन में सहायक है।
- लोगों के रवैये में बदलाव के लिये उपयोगी है।
- पेचीदी बातों/जानकारियों को भी आसानी से समझाया जा सकता है।
- तकनीकों को प्रभावी तरीके से स्थानान्तरित करने में उपयोगी है।

व्यक्तिगत सम्पर्क विधि की सीमायें:

- यह विधि अधिक खर्चीली तथा इसमें समय अधिक लगता है।
- कम लोगों से सम्पर्क किया जा सकता है।

- प्रसार कार्यकर्ता का किसी विशेषके प्रति झुकाव हो सकता है।

2. समूह सम्पर्क विधि

कम लोगों के झुण्ड को समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो सामूहिक हित के लिये परस्पर जुड़े हुए हों। इस विधि में प्रसार कार्यकर्ता अपनी बात को व्यक्तिगत सम्पर्क के बजाय लोगों के समूह को पहुंचाता है। यह तरीका तभी अपनाया जाता है जब सूचना/जानकारी एक साथ तुलनात्मक अधिक लोगों तक पहुंचानी हो। यह तभी सम्भव है जब लक्ष्य समूह प्रसार कार्यकर्ता से ज्यादा दूर नहीं रहते हों तथा उसके प्रसार कार्यकर्ता के पास तुलनात्मक अधिक समय उपलब्ध नहीं हो। उदाहारण के लिये छोटे समूह में प्रशिक्षण, फसल प्रदर्शन तथा शैक्षणिक भ्रमण आदि।

समूह सम्पर्क विधि के लाभ:

- प्रसार कार्यकर्ता से एक समय में तुलनात्मक अधिक लोगों के साथ सम्पर्क कर सकता है।
- चयनित लक्ष्य समूह तक आसानी से पहुंचा जा सकता है।
- लोगों के अनुभवों तथा जानकारियों का पारस्पिरिक विनमय भी सम्भव है जिससे अधिक लाभ मिलता है।
- सामाजिक सम्पर्क के लिये लोगों के मूल मुद्दों का हल सम्भव है।
- सामूहिक प्रेरणा से लोग एक चुनौती स्वीकार करने में तत्पर रहते हैं।
- व्यक्तिगत सम्पर्क विधि से कम खर्चीली है।

समूह सम्पर्क विधि की सीमायें:

- अधिक विविधता होने के कारण सीखने में बाधा उत्पन्न हो सकती है।
- जाति समूह, गांव में लोगों के टकराव सामने आने से सीखनें में बाधा आ सकती है तथा निर्णय लेने में भी बाधा आ सकती है।

3. जन सम्पर्क विधि

इस विधि में प्रसार कार्यकर्ता एक विजातीय/विविध तथा बड़े समूह को अपनी बात पहुंचाता है जिसमें उनके समूह अथवा व्यक्तिगत जान पहचान सम्भव नहीं है। इसको तभी अपनाया जाता है जब प्रसार कार्यकर्ता को कम से कम समय में अधिक से अधिक लोगों तक अपनी बात को पहुंचाना हो इसमें एक साथ 100 से 1000 लोगों तक विषय विशेषज्ञ जानकारी को पहुंचा सकता है। उदाहारण के तौर पर अखबार, रेडियो तथा दूरदर्शन के माध्यम से अधिक से अधिक लोगों तक जानकारी को पहुंचाना, जनचेतना शिविर, पम्पलेट अथवा लीफलेट अथवा पोस्टर छपवाकर क्षेत्र में बटवाना, प्रदर्शनी आदि के माध्यम से कम से कम समय में अधिक से अधिक लोगों तक अपनी बात को पहुंचाना।

जन सम्पर्क विधि के लाभ:

- इस विधि के द्वारा लोगों में जन चेतना पैदा किया जाना आसान है तथा एक साथ काफी लोगों तक इस विधि के माध्यम से पहुंचा जा सकता है।
- यह लोगों तक तकनीकी जानकारी पहुंचाने तथा लोगों की राय बदलने में सहायक है।
- कम से कम समय में अधिक से अधिक लोगों तक अपनी बात पहुंचाने में अति उपयोगी है।
- इस विधि में भी लोगों के अनुभवों तथा जानकारियों का पारस्पिरिक विनमय सम्भव है जिससे अधिक लाभ मिलता है।
- आपात स्थिति में इस विधि के माध्यम से किसी भी जानकारी को पहुंचाया जा सकता है।
- अधिक लोगों को एक साथ लाभान्वित करने के कारण यह विधि से काफी कम खर्चीली है।

जनसम्पर्क विधि की सीमायें:

- अधिक लोगों को शामिल करने के कारण लोगों तक अपनी बात पहुंचाने में अधिक कारगर नहीं है।
- अधिक विविधता होने के कारण व्यक्तिगत राय छिप जाती है।
- लोगों की राय पर अधिक ध्यान दिया जाना सम्भव नहीं है।
- लोगों से फीडबैक की सूचना तथा परिणामों का मूल्यांकन किये जाने में कठिनाई आती है।

15.15 विभिन्न प्रसार विधियों की आवश्यकता

संचार की तरह ही यहां यह जानना आवश्यक है कि प्रसार की विभिन्न विधियों की आवश्यकता क्यों है? प्रसार की विधियों के बिना प्रसार कार्यकर्ता उपलब्ध जानकारी, तथ्यों, आंकड़ों इत्यादि को लक्षित समूह पहुंचाना सम्भव नहीं है अर्थात प्रसार के बिना प्रगति सम्भव नहीं है। इसलिये प्रसार कार्यकर्ता उपलब्ध जानकारी को किसानों अथवा लक्षित समूह तक पहुंचाने के लिये सक्षम होना चाहिए तथा उसको सक्षम बनाने के लिये पर्याप्त प्रशिक्षण की आवश्यकता है क्योंकि जब तक उपलब्ध जानकारी, तथ्यों, आंकड़ों इत्यादि को लक्षित समूह तक नहीं पहुंचाया जाता है तब तक विकास/प्रगति की कल्पना करना सम्भव नहीं है। कृषि के क्षेत्र में किसानों को सक्षम बनाने के लिये प्रभावी प्रसार शिक्षा होने की अपार आवश्यकता है।

15.16 सही विधि का चयन

संचार के समान ही यहां भी यह महत्वपूर्ण है कि प्रसार करने का कौन सा तरीका अपनाया जाना है जिससे जानाकारी भी लक्षित समूह को मिल जावे तथा ज्यादा खर्चा भी न हो। सही विधि के चयन के लिये कुछ बिन्दू उल्लेखित किये जा रहे हैं जो निम्न प्रकार हैं:

- लक्षित समूह में कौन-कौन हैं तथा इनकी संख्या कितनी है एवं इस कार्य को करने के लिये समय सीमा क्या है?
- इसके अन्तर्गत बजट का कितना प्रावधान है?
- किस तरह की जानकारी लक्षित समूह/लोगों को दी जानी है?

इनके अतिरिक्त भी प्रश्न हो सकते हैं जिनके आधार पर प्रसार के तरीके का चयन किया जा सकता है। यहां यह बताना भी आवश्यक है कि कोई भी एक प्रसार की विधि उपयुक्त नहीं हो सकती अपितु आवश्यकता/समय/लक्षित समूह/बजट आदि के अनुसार उपयुक्त प्रसार की विधि का उपयोग करना होगा।

15.17 सारांश

किसानों अथवा अन्य लक्षित समूह अथवा लोगों को उपलब्ध तकनीक/सूचना आदि की जानकारी दिया जाना महत्वपूर्ण है। चूंकि सही एवं सभी लोगों तक जानकारी उपलब्ध कराना प्रसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है इसलिये प्रसार कार्यकर्ता अथवा विषय विशेषज्ञों का सक्षम होना आवश्यक है। प्रसार कार्यकर्ता अथवा विषय विशेषज्ञों को सक्षम बनाने के लिये प्रशिक्षणों का आयोजन भी किया जाना आवश्यक है।

प्रसार कार्यकर्ता अथवा विषय विशेषज्ञों को सक्षम बनाने के साथ-साथ प्रसार के सही तरीके का चयन किया जाना भी महत्वपूर्ण है अन्यथा कृषि के विकास पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिये यह आवश्यक है कि प्रसार की सही विधि/तरीके का चयन परिस्थितियों को देखने के बाद ही किया जावे।

15.18 अभ्यास प्रश्न

1. संचार में कौन- से तत्व शामिल होते हैं -

   (अ) प्रेषक/एनकोडर (ब) रिसिवर/डिकोडर

   (स) सूचना व सूचना प्रवाह की प्रणाली (द) उक्त सभी

2. संचार में आने वाली बाधाएं हैं -

   (अ) पर्यावरणीय बाधाएं (ब) व्यक्तिगत बाधाएं

   (स) संगठनात्मक बाधाएं (द) उक्त सभी

3. संचार की विधियां हैं -

(अ) मौखिक संचार विधि (ब) लिखित संचार विधि

(स) अभिव्यक्ति संचार विधि (द) उक्त सभी

4. प्रसार की प्रक्रिया में कौन-कौन से चरण हैं -

(अ) परिस्थिति (ब) उद्देश्य व अध्यापन

(स) मूल्यांकन व पुनर्विचार (द) उक्त सभी

5. प्रसार की विधियां हैं -

(अ) व्यक्तिगत सम्पर्क विधि (ब) समूह सम्पर्क विधि

(स) जन सम्पर्क विधि (द) उक्त सभी

15.19 सन्दर्भ ग्रन्थ

- बिजनिस कॉम्यूनीकेसन (एम.बी. 0039/एम.बी.एफ. 102), सिक्किम मणीपाल विश्वविद्यालय, संशोधित प्रकाशन, स्प्रंग-2010।
- शैक्षणिक सामग्री, पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा इन एग्रीकल्चरल एक्टेन्सन मेनेजमेंट, (ए.ई.एम. 101), मैनेज हैदराबाद।

इकाई - 16

प्रसार प्रशिक्षण

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 परिभाषा

16.3 प्रशिक्षण के उद्देश्य

16.4 आवश्यकता

16.6 सिद्धांत

16.6 विधियां

16.7 सारांश

16.8 अभ्यास प्रश्न

16.9 संदर्भ ग्रन्थ

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप निम्न ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे:-

- प्रशिक्षण की परिभाषा, उददेश्य, आवश्यकता, सिद्धांत एवं विधियां
- व्याख्यान, समूह चर्चा, सेमिनार, सिम्पोजियम, पैनल, फोरम,कार्यशाला आदि के बारे में
- माइक्रोवेब, बजट सत्र, मस्तिष्क प्रवात विधि, सभा तिथि, फिश बाऊल एक्सरसाइज, कान्फ्रेंस, इत्यादि के बारे में

16.1 प्रस्तावना

प्रसार की उत्पतित सर्वप्रथम ग्रेट ब्रिटेन में हुई थी। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में, प्रसार कार्यकर्ता जो या तो प्रशासनिक कार्यो में कार्यरत है अथवा स्वयं सेवकों के रूप में कार्य कर रहे हैं, दोनों ही सिथतियों में संबंधितप्रशिक्षण अति आवश्यक है।

16.2 परिभाषा

कृषि प्रसार वह शिक्षा है, जिससे ग्रामीण जनता के ज्ञान, कार्य करने की क्षमता, समझ, और मनोवृतित में इस आशय से परिवर्तन लाया जाये कि वह प्रयत्नशील होकर अपने जीवन - स्तर में स्थायी उन्नति ला सके, क्योंकि बिना जनता के स्वयं प्रयत्नशील हुये उनके जीवन - स्तर में स्थायी उन्नति नही आ सकती है, जैसा के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन ने कहा है -

"जो वस्तु स्वयं नहीं चुनी जाती, वह अच्छी नहीं होती है और वह निर्णय जो स्वयं नहीं लिया जाता निरर्थक होता है"

"प्रशिक्षण वह प्रक्रिया है कि व्यकित अथवा कार्यकर्ता अपने उपयुक्त विचार, क्रिया, कार्यक्षमता, ज्ञान तथा अभिवृतित के द्वारा अपने वर्तमान या भविष्य के कायोर्ं को ठीक ढंग से पूर्ण कर सकें।

-डा. मिल्टन हाल

16.3 प्रशिक्षण के उद्देश्य

(i) प्रशिक्षण व्यकितयां को अपने कार्य संबंधीकार्यक्षमता का विकास करने में मदद करता है।

(ii) प्रशिक्षण, व्यकितयों में आत्म जागरूकता पैदा करता है।

(iii) नई जानकारी सीखने के लिये प्रेरित करता है।

(iv) प्रशिक्षण, व्यकितयों को अपने कत्र्तव्यों को अधिक दक्षतापूर्वक करने योग्य बनाता है।

(v) व्यकितयों को भविष्य में उच्चतर उत्तरदायित्वों को निभाने योग्य भी बनाता है।

(vi) प्रशिक्षण, प्रसार कार्यकर्ताओं के दृषिटकोण को विस्तृत करता है तथा राष्ट्रीय उददेश्यों से अवगत कराके उनकी प्रापित में योगदान देती है।

(vii) प्रशिक्षण, कार्यकर्ताओं को इस योग्य बनाता है कि वे बदलती हुई दुनिया को समझ सकें, और तदनुकूल उसकी सेवा कर सकें।

उपरोक्त, प्रशिक्षण के उददेश्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य उददेश्य भी हैं जिनकी विशेषता एक शब्द SMART से की जा सकती है।

S	-	Specific	-	उददेश्य विशिष्ट होने चाहिये।
M	-	Measurable	-	उददेश्य मापनीय होने चाहिये।
A	-	Action oriented	-	कार्य रूपेण हों।
R	-	Realistic	-	उददेश्य वास्तविकता में विश्वास रखने वाला होने चाहिए।
T	-	Time bound	-	उददेश्य समय सीमा में कार्य करने वाले होने चाहिए।

16.4 आवश्यकता

i. सामुदायिक विकास के उददेश्यों व दर्शन को समझना।

ii. यह समझना कि प्रसार का क्या अर्थ है ?

iii. प्रसार शिक्षा के सही प्रयोग से क्या हासिल हो सकता है?

iv. यह जानना कि प्रसार को कैसे किया जाए और अंतत: यह जानना कि प्रसार की विधियों का उनके प्रमाणनुसार कैसे मूल्यांकन किया जाये।

16.5 सिद्वांत

i. एक अच्छे प्रशिक्षण के लिये अनुप्रेरणा आवश्यक है। अनुप्रेरणा का स्त्रोत कुछ भी हो सकता है। धन का मिलना, वेतन वृद्धि होना, सिथति परिवर्तन होना अथवा पदोन्नति होना आदि अच्छे प्रेरक रूप में सहायक हो सकते हैं। जितनी प्रबल प्रेरणा उतना ही प्रशिक्षण फलदायक होगा।

ii. अच्छा प्रशिक्षण, प्रसार कार्यकर्ताओं की हिस्सेदारी पर निर्भर करता है। कार्यक्षमता बढाने के लिये हिस्सेदार बनना आवश्यक है।

iii. अच्छे प्रशिक्षण के लिये अच्छी सीखने की सिथति बनाने की आवश्यकता है।

iv. वो व्यक्ति जो अपने बारे में अच्छा सोचते हैं, अच्छा प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

v. वास्तव में प्रशिक्षण तबआसान हो जाता है जब प्रशिक्षण लेने वाला प्रशिक्षण की योग्यता अनुरूपता अपनी प्रस्थितियों में देख पाता है। अत: प्रयोगात्मक प्रशिक्षण अधिक प्रभावी होता है।

vi. प्रभावी प्रशिक्षण के लिये, प्रशिक्षण के उददेश्यों की जानकारी का विस्तृत विवरण प्रशिक्षण लेने वालों को होना चाहिये।

vii. निष्पक्ष मूल्यांकन अच्छे प्रशिक्षण की कुंजी है।

16.6 विधियां

किसी भी कार्य पद्वति को प्रभावी ढंग से करना, प्रशिक्षण का मूल उददेश्य है। प्रशिक्षण के लिये हमें अनेक प्रशिक्षण विधियों की आवश्यकता होती है। सभी विधियों के अपने अपने लाभ व हानि हैं। इनका चयन प्रशिक्षण की आवश्यकता व परिसिथति पर निर्भर करता है। प्रसार कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण हेतु मुख्य रूप से प्रयोग होने वाली विधियां निम्न है।

1. कार्यशाला (Workshop)

कार्यशाला विधि का आयोजन 'देख कर विश्वास करना तथा 'करके सीखना के सिद्वांत पर आधारित है। कार्यशाला विधि का आयोजन एक दिन से लेकर एक सप्ताह तक हो सकता है। इस विधि में सभी सहभागी, अपने अनुभवों विचारों व कार्यक्षमताओं का किसी विशेषज्ञ की उपसिथति में आदान प्रदान करते हैं, सीखने हैं व कार्य करके देखते हैं।

लाभ -

i. प्रशिक्षण लेने वालों की कार्य कुशलता बढती है।

ii. प्रशिक्षण लेने वालों की मनोवृतित में सकारात्मक परिवर्तन होता है।

हानि -

i. अधिक समय की आवश्यकता होती।

ii. धन भी अधिक खर्च होता है।

iii. प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है।

2. **समूह चर्चा (Group Discussion)**

यह विधि प्रसार कार्य के प्रशिक्षण हेतु अति महत्वपूर्ण है। इस विधि में किसी सार्वजनिक हित के विषय पर दो अथवा अधिक व्यकितयों के बीच सूचनाओं का आदान - प्रदान करने और किसी समस्या को हल करने के उददेश्य से बातचीत करने का तरीका है। यह विधि व्याख्यान विधि से ज्यादा प्रभावी होती है, चूंकि इसमें वक्ता और श्रोता साथ साथ क्रियाशील रहते हैं। किसी एक व्यकित के पास तमाम जबाब नहीं होते हैं।

लाभ -

i. प्रत्येक को बराबर अवसर प्रदान करना

ii. विचार विमर्श का प्रजातानित्रक तरीका है।

iii. रूचि पैदा करता है।

iv. कार्य टीम के रूप में करने की आदत डालता है।

v. समूह का आत्म बल बढ़ाता है।

vi. सोच ज्ञान व अवलोचनात्मक में अभिवृद्धि करता है।

सीमायें -

i. पार्टीबाजी (गांव में) बाधक है।

ii. समूह की सर्वसम्मति प्राप्त करना कठिन कार्य है।

iii. नये विषयों पर विचार-विमर्श करना कठिन है।

3. **सेमिनार (Seminar)**

समूह चर्चा के लिये यह एक उत्तम विधि है। इस विधि में प्रसार कार्यकर्ता व्याख्यान देने से पहले विषय संबंधी गहन विस्तृत अध्ययन करता है। विषय विशेषज्ञों से भी चर्चा करता है और तभी बोलने के लिये आलेख तैयार करता है। आलेख प्रस्तुति के बाद श्रोता उस विषय पर चर्चा करते है व अपने सुझाव देते हैं। मूल्यवान प्रयोगिक सुझावों को आलेख में संकलित कर लिया जाता है केवल तभी इस आलेख को कार्यवाही हेतु प्रस्तुत किया जाता है।

लाभ -

i. विषय पर शिक्षित श्रोताओं द्वारा गहन चर्चा होती है, अन्तत: आलेख पूर्णरूप से ठीक तैयार हो जाता है।

ii. इस विधि का अधिक लाभ नये कायोर्ं को आरंभ करने के लिये अधिक होता है।

हानि -

1. समय अधिक लगता है।
2. अधिक धन की आवश्यकता होती है।
3. सभी सदस्यों की मन से भागीदारी संभव नहीं हो पाती है।

4. सिम्पोजियम (Symposium)

यह एक संपर्क विधि है। इसमें भाषण एक ही विषय तक सीमित रहता है। विषय को वक्ताओं की संख्या के अनुसार विभिन्न पहलुओं में बांट लिया जाता है। उदाहरणार्थ, कृषि प्रसार विषय को, अर्थ व परिभाषा उत्पतित, सिद्वांत, क्षेत्र कार्यक्रम नियोजन आदि विभिन्न भागों में बांट लिया जाता है। वक्ता भिन्न भिन्न विचार भिन्न भिन्न पहलुओं पर बोलते हैं। वक्ताओं की संख्या दो से पाचं तक होती है, तीन अच्छी संख्या मानी जाती है। इसे संक्षिप्त व्याख्यान माला भी कह सकते हैं।

5. पैनल (Panel Discussion)

इसमें चार से छ सदस्य अद्र्ववृत्ताकार रूप में बैठकर किसी दिये गये विषय पर आपस में चर्चा करते हैं। सदस्यों का चयन उनकी जानकारी, उत्साह व स्वभाव के आधार पर किया जाता है। नेता सभी वक्ताओं का परिचय कराता है। साथ ही अपनी बात संक्षिप्त में रखने क लिये प्रेरित करता है। अपनी अपनी बारी आने पर सदस्य अपने विचार रखते हैं। विचार विमर्श के अंत में संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है, इस प्रकार यह एक लघु वाद विवाद समूह जिसका एक अभिन्न अंग श्रोतागण है। इस विधि में एक विषय पर विभिन्न प्रकार के विचार सुनने को मिलते हैं, तथा प्रश्न उत्तर के माध्यम से प्रशिक्षाणार्थी को सभी शंकाओंका समाधान हो जाता है।

6. फोरम (Forum)

इसका रूप छोटी सभा की तरह होता है। इसमें श्रोताओं में से अधिकतर दो कार्यकर्ताओं को विषय वस्तु पर चर्चा के लिये छांट लिया जाता है। यह कुछ समय के लिये व्याख्यान माला का रूप ले लेता है। यह समू सम्पर्क के लिये अच्छा साधन है। इस विधि की सफलता बोलने वाले सी समय सीमा पर निर्भर करती है। ताकि यह भाषण का यप न ले सके। फोरम के लिये उत्तम विधि में वक्ता सदस्यों से प्रश्न करने के लिये आग्रह करता है तथा स्वयं उनके उत्तर देता है। कभी कभी वक्ता प्रश्न को उलटे सदस्यों के बीच ही उत्तर खोजने के लिये प्रेषित कर देता है। वक्ता केवल नई जानकारी ही उपलब्ध कराता है। फोरम विधि का मुख्य उददेश्य सदस्यों श्रोताओं में रूचि पैदा करना है।

7. व्याख्यान विधि (Lecturer Method) -

व्याख्यान विधि, शिक्षण व प्रशिक्षण के लिये बहुत ही पुरानी व मूलविधि हैं। इस विधि में शिक्षक सक्रिय व श्रोता निष्क्रिय भूमिका में होते हैं। इस व्याख्यान विधि में यह नियोजन करना होता है कि कौन विषय, कितने समय में, किस उददेश्य के साथ, किन श्रोताओं को पढाना है।

लाभ -

i. जब प्रशिक्षित होने वाले सदस्यों की संख्या अधिक होती है, व शिक्षण साधनों की कमी व सीमित समय होता है, तो व्याख्यान विधि ही प्रशिक्षण के लिये उत्तम साधन मानी जाती है।

ii. अगर प्रशिक्षण का प्राथमिक उददेश्य सूचनाओं को श्रोताओं तक पहुंचना मात्र होता है, तब व्याख्यान विधि लाभदायक होती है।

iii. प्रशिक्षण पाने वालों के लिये नई तकनीकी अनुसंधान के संचार का लाभकारी साधन भी व्याख्यान विधि ही है।

iv. किसी विधि के प्रयोगात्मक रूप से पहले उससे संबंधितसैद्वांतिक ज्ञान को व्याख्यान विधि द्वारा दिया जाना लाभदायक होता है।

हानियां -

1. व्याख्यान विधि, स्कूल, कालेजों के लिये, जहां श्रोताओं को कोई कार्य अनुभव नहीं होता है अधिक लाभ की विधि है परंतु जहां श्रोता कार्य अनुभव के साथ हिस्सेदारी करते हैं, यह विधि लाभकारी नहीं है।
2. यह विधि एक निषिक्रय विधि है, चूंकि यहां श्रोता केवल सुनता है। सवाल - जबाब का अभाव बना रहता है।
3. चूंकि इस विधि में श्रोता केवल सुनकर सीखता है, देखने व कार्य करके देखने का अभाव बना रहता है, अत: सीखना कम होता है।
4. व्याख्यान विधि वास्तविकता से दूर की विधि है।

16.8 भूमिका निवार्हन (Role playing)

प्रशिक्षण में प्रशिक्षार्थी अगर सक्रिय भूमिका निभाता है तो सीख, अधिक होती है। भूमिका निर्वाह विधि सक्रिय हिस्सेदारी की ही प्रशिक्षण विधि है। "काल्पनिक सिथति में मानवीय व्यवहार को मूर्त रूप में निभाकर अभिनय करने की प्रक्रिया को रोल प्लेइंग कहते हैं। इस विधि में सहभागियों को उनकी भूमिका व विशेष प्रकार की परिस्थितियों के बारे में समझाया जाता है कि अमुक कार्य कैसे करना है।

विशेषताएं -

i. इस रोल प्लेइंग तकनीकी में क्रिया कार्य और अभ्यास सममिलित होते है।

ii. रोल प्ले की उपयोगिता, नेतृत्व व प्रबंध विकस, संचार कुशलता, आपसी व्यवहार में सुधार, और टीम आदि में होता है।

iii. रोल प्ले एक ऐसा माध्यम हैं जो विभिन्न प्रकार के व्यवहार रूप को देखने व उनके असर को अनुभव व उसको मूल्यांकन करने में मदद करता है।

iv. रोल प्ले द्वारा सहभागियों को अपनी व दूसरों की भावना को समझने की संवेदनशीलता बढाने का सुअवसर मिलता है।

समस्याएं

i. प्रशिक्षक को रोल प्लेइंग केस का चयन ठीक करना चाहिये।

ii. रोल प्ले का उददेश्य प्रशिक्षक के दिमाग में अस्पष्ट होने से परिणाम अच्छे नहीं होंगें।

iii. प्रशिक्षर्थियों का रोल प्ले में कुछ छोड देना अथवा कुछ अपना जोड देने से नतीजे उल्टे हो सकते हैं।

iv. भूमिका निर्वाहन विधि तकनीकी विषयों के लिये प्रयोग नहीं की जा सकती है।

8. माइक्रोलेब (Microlab)

माइक्रोलेब, प्रशिक्षण से पहले की विधि है। इस प्रक्रिया में प्रशिक्षण के लिये आए सभी प्रशिक्षणार्थियों का आपस में ठीक प्रकार से परिचय कराया जाता है। जिससे कि वो प्रशिक्षण के दौरान अकेलापन न महसूस करें साथ ही मित्र बनकर एक दूसरे के विचारों से लाभ उठा सके।

माइक्रोलेब कार्यक्रम में असीमित प्रशिक्षणार्थी भाग ले सकते हैं इसकी समय अवधि कार्यक्रम के उददेश्य पर निर्भर करती है। सहभागियों का मानसिक स्तर, समय अवधि कम या ज्यादा कर सकता है। इस कार्यक्रम के लिये काफी खुला स्थान चाहिये ताकि प्रशिक्षणार्थी मुक्त रूप से घूम सकें। स्थान का सही आकलन प्रशिक्षण लेने वालों की संख्या पर निर्भर करता है।

9. बजट सत्र (Buzz Session)

इस प्रकार की प्रणाली का मुख्य उददेश्य प्रशिक्षार्थियों को अपनी सोच व धारणा को किसी भी विषय पर अपने सहभागियों के सामने प्रकट करना होता है। इस विधि को हम 'हडल विधि या 'फिलिप्स 66 फार्मेट भी कहते हैं। इससे तात्पर्य है कि 6 सहगामी 6 मिनिट तक दिये गये विषय पर विचार - विमर्श करते हैं।

बज सत्र की सफलता के लिये प्रशिक्षार्थियों को छोटे छोटे समूहों (5 - 10) में विभाजित कर दिया जाता है। इस प्रकार छोटे समूह में सहभागियों में संकोच कम हो जाती है, और दिये गये विषय पर खुलकर विचार - विमर्श करते हैं। अंत में समूह का नेता सभी विचार पूरे समूहों के सामने प्रस्तुत करता है।

इस ट्रेनिंग की तकनीकी, सम्मेलन सेमिनार, कार्यशाला व समूह चर्चा, करने में भी प्रयोग हो सकती है।

लाभ

त्वरित सही निर्णय लेने की क्षमता प्रशिक्षार्थियों के मस्तिष्क में विकसित होती है।

हानि

निर्धारित विषय के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर चर्चा संभव नहीं हो पाती है।

16.9 मस्तिष्क प्रवात विधि (Brain Storming Method)

यह किसी भी समस्या का समाधान एक निशिचत समय के अंदर ही तलाश कर व सामूहिक विचार करके भाव का विकास करती है।

इस विधि में प्रशिक्षणार्थियों को छोटे छोटे समूहों में बांट दिया जाता है। समूह की अधिकतम संख्या बीस तक हो सकती है। प्रत्येक समूह में एक या दो योग्य व्यकितयों को रखा जाता है। समूह को समस्या दी जाती है तथा समय अवधि भी बता दी जाती है। समूह के सदस्य आपसी विचार विमर्श कर दी गई अवधि में ही समस्या से संबंधितउत्तर देते हैं। इस विधि का मुख्य भाग यह होता है कि प्रशिक्षण में स्वेच्छा से मस्तिष्क में नये विचार उत्पन्न करने की क्षमता का विकास होता है। यह विधि व्यक्ति के स्वेच्छा से मानसिक विकास करने की विधि है।

16.10 सभा विधि (Syndicate Method)

सभा विधि, प्रसार प्रशिक्षण की एक सरल व प्रभावी विधि है। छोटे समूहों में कार्य करते हुये किसी विशेष उददेश्य की प्राप्ति केवल सभा विधि द्वारा ही संभव हैं। सक्षेप में सभा विधि वह पद्वति है जिससे सभी सहभागी एक दूसरे से मिलकर सीखते हैं व अपने तर्जुबों से लाभ उठाते हैं, इस विधि में सभी प्रशिक्षार्थियों को छोटे छोटे समूहों में बाट दिया जाता है, इस छोटे समूहों को ही 'सिंडिकेट कहा जाता है। प्रत्येक सिंडिकेट सभा में एक अध्यक्ष व सचिव बनाए जाते हैं, जो बदलते रहते हैं, इस प्रकार इस विधि में सीखने व सिखाने वाले की भूमिका एक साथ निभानी होती है, जिससे अनुशासन का वातावरण बनता हे।

प्रत्येक सभा सिंडिकेट को कोई समस्या विषय दिया जाता है। इस समस्या का निदान सिंडिकेट को करना होता है। सिंडिकेट को विस्तृत विवरण व निदेश दिय जाते हे। सिंडिकेट के सभी सदस्य समस्या का अध्ययन करते हैं, आपसी विचार विमर्श करते हैं, आंकड़े एकत्र कर तैयार रिपोर्ट सभी सदस्यों के सामने प्रस्तुत करते हैं। चर्चा कर किसी भी समस्या के हल करने तक सिंडिकेट पहुंचता है।

लाभ

i. समस्या पर गहन परिचर्चा होती है।

ii. समस्या का सर्वमान्य निकलता है।

iii. सभा में विषय विश्लेषक भाग लेते हैं।

iv. अध्यक्ष व सचिव बदलते रहने से सीखने व सिखाने दोनों स्थितियों का ज्ञान होता है।

हानि

i. समय अधिक लगता है, लगभग 10 - 12 बैठकों तक का आयोजन होता है जो लगभग 2 माह समय लेती हैं।

ii. धन की भी ज्यादा आवश्यकता होती है।

iii. विचारों की भिन्नता को सिंडिकेट में क्लेश होने के डर से भुला दिया जाता है।

iv. अगर सिंडिकेट का गठन ठीक प्रकार से नहीं हुआ हो, तो समय की बर्बादी तो होती ही है फ्रस्ट्रेशन का कारण भी बनता है।

फिश वाउल ऐक्सरसाइज (Fish Bowl Exercise)

इस विधि में समूह के सदस्यों को दो भागों में विभक्त किया जाता है। "इनर रिंग आंतरिक दायरे में चर्चा समूह होता है तथा "आउटर रिंग "बाहरी दायरे में ओबसर्वेशन गुरुप होता है। जो निरीक्षण करता है।

एक फिश वाउल एक्सरसाइज में 5 - 5 सीखने वाले गुरुप ऐ में तथा 4 - 5 सदस्य ग्रुप बी में रहते हैं। और यह प्रभावकारी भी रहता है चूंकि 10 - 11 सदस्यों के प्रत्येक "ऐ तथा "बी दायरों में यदि प्रतिभागी हो तो यह देखा गया है कि कुछ लोग कम भाग लेते हैं।

कान्फ्रेंस (Conferences)

कान्फ्रेंस का आयोजन प्रदेश, देश एवम्र अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर विशेष विषयों में आयोजित किया जाता है।

सफल कान्फ्रेंसस आयोजन करना आज के समय में विज्ञान एवम्र कला दोनों का समन्वय है तथा इनके आयोजनों के लिये नि.लि. बिन्दुओं का ध्यान रखना अनिवार्य है।

1. कान्फ्रैंस का ध्येय लक्ष्य, सर्वप्रथम यह निर्धारित करना है कि कान्फ्रेंस किस थीम पर है, तथा किस प्रक्षेत्र में इसका कितना महत्व है। क्या यह जिला स्तर की प्रांतीय राष्ट्रीय या अंतराष्ट्रीय महत्व रखती है।
2. आयोजकों को इसबात का ध्यान रखना चाहिये की कान्फ्रेरस के साथ लगते विषयों पर क्या उन्हीं दिनों या महीनों के आस पास कोई और कान्फ्रेस तो किन्ही और आयोजकों द्वारा तो आयोजित नहीं हो रही है।
3. कान्फ्रेंस में प्रतिभागियों का चयन तथा विभिन्न स्तरों में उच्चकोटि के व्याख्यान रखने वाले बुद्विजीवियों की कार्यक्रम में भागीदारिता विशेष महत्वपूर्ण है अत: कान्फ्रेंस आयोजकों को इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये।
4. कान्फ्रेंस में भाग लेने वाले प्रतिभागियों का 'विषय विशेष' की और रूझान तथा कितनी समय अविध तक कान्फ्रेंस में वह भाग ले सकते हैं, किसी भी कान्फ्रेंस की सफलता का आंकलन व मूल्यांकन करने का प्रतीक माना जाता है, अत: कान्फ्रेंस आयोजक इस का ध्यान रखें।
5. कान्फ्रेंस का स्थान, वहां पर उपलब्ध दृश्य व श्रवण उपकरणों की उपलब्धता, छापे जाने वाले शोध पत्रों की समयवद्वता भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है।
6. कान्फ्रेंस आयोजन के लिये धनराशि प्रयोजकों की भागीदारिता भी ध्यान देने योग्य है क्योंकि इसके बिना कान्फ्रैंस आयोजित नहीं हो सकती है।
7. इन सबके बाद प्रति प्रतिभागी को समय अनुसार सूचनाएं भेजकर सफल कान्फ्रेंस को आयोजित किया जा सकता है।

केस स्टडी (Case Study)

कृषि प्रसार विषय में किसी भी कार्यक्रम की उपलबिधयों को सफल गाथाओं एवम केस अध्ययन के द्वारा प्रस्तुत कर अन्य लोगों तक पहुंचाया जाता है ताकि पढने वाले पढने के उपरांत प्रेरित हो उन सफल गाथाओं या केस - अध्ययन द्वारा लाभानिवत हो।

केस स्टडी के सारांश या अंत मे लेखक द्वारा या प्रस्तुत करता द्वारा पाठकों या सुनने वालों को कोई सिफारिश नहीं की जाती है की वह उस केस को अपनाए या नहीं अपितु उन्हें सोचने पर बाध्य कर दिया जाता है, कि वह या तो इसे अपनाए या इस केस में कोई अन्य जानकारी जो उपलब्ध है उसे सूचित करे या अपने सामथ्र्य अनुसार इस केस में नवीनता ला कर अपनाए।

16.7 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि प्रसार प्रशिक्षण प्रसार कार्यकर्ताओं को नहीं होगा तो वह जनता से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकता और वह नये ज्ञान को जनता तक नहीं पहुंचा सकता और नये ज्ञान के अच्छे परिणाम भी नहीं दिखा सकता तथा न ही जनता को सहयोग प्राप्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में प्रसार कार्यकर्ता जनता की समस्याओं को समझ, उनका समाधान कर, प्रेरित नहीं कर सकता, जो उसका मुख्य कार्य है।

16.8 अभ्यास प्रश्न

1. प्रसार की उत्पतित सर्वप्रथम कहां हुई थी।

   (अ) भारत (ब) जापान (स) अमेरिका (द) ग्रेट ब्रिटेन

2. सिम्पोजियम विधि में कितनी वक्ताओं की संख्या अच्छी मानी जाती है।

   (अ) 8 (ब) 2 (स) 3 (द) 6

3. प्रशिक्षण की किस विधि को "टहत विधि था।

   "फिलिस 66 फार्मेट भी कहा जाता है -

   (अ) बजट सत्र (ब) फोरम (स) सेमिनार (द) कोई नहीं।

4. किस विधि का आयोजन "देख कर विश्वास करना करके सीखाना सिद्धांत पर आधारित है।

   (अ) फोरम (ब) केस स्टडी (स) कार्यशाला (द) सिम्पोजियम

उत्तर - 1 (द), 2 (स), 3 (अ), 4 (स)

16.9 संदर्भ ग्रन्थ

- एल. एन. अग्रवाल. 2008. भारत में कृषि विपणन एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार. राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर। पेज संख्या 387-413
- S. S. Acharya and N. L. Agarwal. 2007. Agricultural Marketing in India. Oxford & IBH Publications, Calcutta. pp. 205-255.

- S. Subba Reddy, P. Raghu Ram, T. V. Neelakanta Sastry and I. Bhavani Devi. 2006. Agricultural Economics. Oxford & IBH Publications, Calcutta. pp. 61-80.
- K. K. Dewett. 1999. Modern Economic Theory. pp. 97-105.